...ा-ग्रन्थमाला—१२

एकांकी नाटक

[हिन्दी के प्रमुख कलाकारों के एकांकी नाटकों का संग्रह]

सम्पादक
प्रोफ़ेसर अमरनाथ गुप्त एम० ए०
डूँगर कालिज, बीकानेर।

प्रकाशक
गयाप्रसाद एंड संस
शफ़ाख़ाना रोड, आगरा

[मूल्य २)

सजिल्द २॥) : अजिल्द २)

मुद्रक
जगदीशप्रसाद अग्रवाल, बी० कॉम०,
दी एज्यूकेशनल प्रेस, आगरा।

समर्पण

हिन्दी, अंग्रेजी और संस्कृत के प्रकांड पंडित

डा० सर सीताराम जी

प्रेसीडेण्ट लेजिस्लेटिव असेम्बली

के

कर कमलों में

समर्पित

अनुक्रम

मेरा विचार एकांकी नाटक पर समालोचनात्मक पुस्तक लिखने का बहुत दिनों से था। गत वर्ष इस विषय में मुझे प्रोत्साहन हिन्दी के प्रमुख कवि और समालोचक डा० रामकुमार वर्मा से भी मिला। इसी बीच में हिन्दी में एकांकी नाटक पर दो-एक संग्रह भी निकले। एक 'हंस' के मई और जून सन् '३८ वाले एकांकी नाटक-अंक वाले एकांकियों का पुस्तकबद्ध रूप और दूसरा श्री उदयशंकर जी द्वारा सम्पादित आधुनिक एकांकी नाटक। एकांकी नाटक की टेकनीक पर मेरी एक पुस्तक तैयार है। उसके प्रकाशन से पहले हिन्दी में एक ऐसे एकांकियों के संग्रह की आवश्यकता मैंने महसूस की जिसमें भूमिका आदि के अतिरिक्त कलाकारों के प्रमुख एकांकियों का ही संग्रह हो और जिसमें हिन्दी-साहित्य में प्रचलित एकांकियों के सभी टाईप आ जाएँ। कुछ इन्हीं बातों को ध्यान में रख मैंने इस पुस्तक का निर्माण किया है। हिन्दी-साहित्य में एकांकी नाटक की सर्व-प्रियता देखकर अनुमान किया जा सकता है कि इसका भविष्य उज्ज्वल है। इसका जन्म-काल कल ही की बात है। और इतने थोड़े समय में ऐसी आश्चर्यान्वित उन्नति। ध्यान देने से हिन्दी में इसके कई प्रकार दृष्टिगोचर होते हैं। ऐसे एकांकी जिनका कथानक ऐतिहासिक है,

और जो भारतवर्ष के भूतकाल की याद दिलाते हैं, कुछ ऐसे जिनका निर्माण अँग्रेजी साहित्य के सम्पर्क से हुआ है, विशेषकर "शा" और "इब्सन" के प्रभाव से जिनमें विद्रोह की अग्नि जल रही है और जिन्हें हम समस्या-मूलक एकांकियों के नाम से पुकारते हैं। अनुवाद भी हिन्दी में धड़ाधड़ निकल रहे हैं। अभी अनुवादों का युग समाप्त नहीं हुआ है। अच्छे अनुवादों की आवश्यकता है इस साहित्य-निर्माण-काल में। मैंने संग्रह में दो अनुवाद भी दिये हैं। इसलिए कि सुन्दर अनुवाद हिन्दी की उन्नति में बाधक नहीं वरन् वर्द्धक हैं। अनुवाद भी हिन्दी में दो प्रकार के देखने में आते हैं। एक तो रचना की कायापलट कर दी जाती है, और दूसरे वह जो बिना किसी बदले के सीधे-सादे अनुवाद हैं, "कलिङ्ग युद्ध की एक रात" और "हैट-वाला" ऐसी ही रचनाएँ हैं। दो प्रहसन के भी उदाहरण हैं, क्योंकि हिन्दी में इसका प्रचलन काफ़ी है। सामाजिक और प्रहसन एकांकियों के दूसरे प्रकार हैं। इन सबके उदाहरण इस संग्रह में मैंने संकलित किये हैं। इसके अतिरिक्त एकांकी का जन्म हिन्दी-साहित्य में अँग्रेजी साहित्य के सीधे प्रभाव से हुआ। इसलिए मैं दो-एक एकांकियों का, जिन पर अँग्रेज़ी का सीधा प्रभाव है, देना अनिवार्य समझता हूँ। 'ऊसर' और 'स्पर्द्धा' ऐसे ही एकांकी हैं। यह भी ध्यान रक्खा है कि हिन्दी-साहित्य में एकांकी नाटक सम्बन्धी प्रचलित टेकनीक के भी मुख्य-मुख्य प्रकार आ जायँ। एक एक्ट और कई दृश्य वाले एकांकी और केवल एक एक्ट और

एक सीन वाले एकांकी। 'टकराहट' पहले और 'ऊसर' दूसरे के उदाहरण हैं। संग्रह को भरसक representative बनाने की मैंने चेष्टा की ही है। इस कार्य में कहाँ तक सफल हुआ हूँ, मैं पाठकों पर छोड़ता हूँ। अपनी बुराइयाँ स्वयं नहीं मालूम पड़ा करतीं। भूमिका भी वृहद् है। पाठक इसे मेरी अप्रकाशित एकांकी नाटक पर पुस्तक का अंश ही समझें। वह कृति भी पाठकों के सम्मुख शीघ्र रख सकूँगा, मुझे पूर्ण आशा है।

अँग्रेजी साहित्य में एकांकी का जन्म बहुत पहले हो चुका है। इसलिए वहाँ एकांकी नाटकों की अनेकानेक मालाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं और होती जा रही हैं। प्रति वर्ष के प्रमुख एकांकियों के संग्रह निकल आते हैं। एकांकी की टेकनीक पर भी पुस्तकें निकल चुकी हैं। हिन्दी में भी कुछ ऐसी ही मालाओं की आवश्यकता है।

मेरी इस प्रथम पुस्तक के प्रकाशन का भार आगरा के प्रमुख प्रकाशक श्रीयुत रामप्रसाद जी अग्रवाल (गयाप्रसाद एण्ड संस) ने लिया है। पुस्तक की सजधज और उसका इतना शीघ्र प्रकाशन सब उन्हीं के कारण हैं। हिन्दी से उन्हें विशेष प्रेम है और उनकी 'साधना' उनकी निःस्वार्थ और निःस्पृह हिन्दी-सेवा का फल है। हिन्दी को ऐसे होनहार प्रकाशकों की विशेष आवश्यकता है।

अन्त में मैं उन कलाकारों और प्रकाशकों का विशेष रूप से आभारी हूँ, जिनके नाटक इस संग्रह में संकलित किए गए हैं।

डूंगर कालिज
बीकानेर

अमरनाथ गुप्त

सूची

प्रहसन

अनूदित

एकांकी नाटक

एकांकी-विषयक कतिपय भ्रांतियों का निवारण

एकांकी नाटक हिंदी में सर्वथा नवीनतम कृति है। इसका जन्म हिंदी-साहित्य में अंग्रेजी के प्रभाव से, कुछ ही वर्ष हुए, हुआ। यह कहना असं-गत न होगा कि पिछले दस वर्षों में इसने साहित्य-भंडार की पूर्ति के हेतु आश्चर्यजनक उन्नति की। अब अपने यहाँ एकांकियों की कमी नहीं है, और दिनोंदिन यह उन्नति करेगा, हमें पूर्ण आशा है। इसके थोड़े-से समय में इसका जो साहित्य दृष्टिगोचर होता है वह कम नहीं। फिर भी यह इसका शैशव काल है। इसके बचपन में स्वागत के साथ-साथ कुछ भ्रांतियों का आ जाना स्वाभाविक ही था, क्योंकि साहित्य के इतिहास, चाहे हमारे यहाँ के साहित्य अथवा पाश्चात्य, पर दृष्टि डालने से हमें मालूम होता है कि साहित्य में नये-नये वादों का जन्म होता है और उनका साथ मंडन और खंडन भी। एक समय जिस साहित्यिक शैली अथवा वाद ने मनुष्य को साहित्यिक क्षेत्र में आकर्षित किया, कल वही उसके प्रति

"अब रहस्यवाद के युग की समाप्ति हो रही है।"[1] अभी तक कविता-क्षेत्र में रहस्यवाद का बोलबाला था। तो साहित्य में किसी भी नई शैली की उत्पत्ति के समय कुछ झगड़ा खड़ा होना संभव ही है, क्योंकि पुरानी लीक के समालोचकों को उनकी ज्ञान की कमी के कारण अथवा किसी और कारण से नई बातें शीघ्र ही स्वीकृत नहीं हो जातीं। कुछ समालोचक हिंदी-साहित्य में आज भी दिखाई पड़ते हैं जिनके मतानुसार रहस्यवाद के आदि काल के समान एकांकी व्यर्थ हैं और शायद इनसे समाज या साहित्य की हानि, लाभ की बजाय ज़्यादा संभव है। ऐसे समालोचकों का ध्यान आते ही मुझे टामस हार्डी के कथन का तुरंत स्मरण हो आता है; उनके अनुसार 'समालोचक संसार के लिए हानिकारक है और क्या ही अच्छा होता कि संसार उनसे छुटकारा पा लेता'।[2]

दो स्कूल

हिंदी-साहित्य में एकांकी नाटक-विषयक भ्रांतियों का निवारण कम-से-कम ऐसे महानुभावों के लिऐ आवश्यक प्रतीत होता है और इसलिए भी कि हमें आगामी अध्यायों में एकांकी का साहित्य में क्या स्थान है, यह बताने में आसानी होगी, इन भ्रांतियों को हम दो स्कूलों में विभाजित कर सकते हैं:—

(१) प्रथम वह समालोचक जो चंद्रगुप्त विद्यालंकार के समान एकांकी को कहानी का एक छोटा संस्करण-मात्र[3] कहकर ही टाल देते हैं। उनके विचार से एकांकी का साहित्य में कोई भी स्थान नहीं है। एकांकी उनके अनुसार 'विज्ञापनीय वस्तु की खूबियाँ, प्रयोग, क़ीमत और

---

१. देखिये लक्ष्मीनारायणसिंह 'सुधांशु' का 'काव्य में अभिव्यंजनावाद' पृष्ठ १२८।

२. "He regarded professional critics no less noxious than autoggraph-hunters. He wished the world were rid of them." Robert Graves' "Good-Bye to all that".

३. देखिये 'हंस' का 'एकांकी नाटक-अंक' पृष्ठ ८०१।

मिलने का पता आदि सभी कुछ कर्ण-गोचर कर[१] देने का साधन-मात्र है। 'एकांकी नाटक की कोई निश्चित और निजी टेकनीक न तो अभी तक बन पाई है और न बन सकती है।[२] 'पात्रों के व्यक्तित्व का चित्रण अथवा विकास भी वहाँ नहीं किया जा सकता।[३] एकांकी का ध्येय सिर्फ मनोरंजक अथवा अर्थपूर्ण वार्तालाप है, बस इतना ही। इससे अधिक कुछ नहीं।[४] एकांकी नाटक लिखना बहुत आसान है। जो व्यक्ति मनोरंजक ढंग से थोड़ी-सी बातचीत लिख सकता है, वह एकांकी नाटक भी लिख सकता है।[५] भारतवर्ष में एकांकी नाटकों की लोकप्रियता कुछ अंश तक रेडियो के कारण से भी बढ़ रही है। साहित्य में एकांकी का स्थान बहुत नगण्य-सा है'।[६]

(२) दूसरे स्कूल के अंतर्गत हम उन समालोचकों को लेते हैं जो जैनेंद्र के समान एकांकी नाटक को साहित्य के बहुत-से रूपों में से एक रूप मानते हैं। इसकी स्थापना परिस्थितियों के कारण संभव हुई, यह उनका मत है। एकांकी नाटक कोई ऐसी चीज नहीं जिस पर विशेषांक निकाला जाय।[७] एकांकी नाटक कृत्रिम है, क्योंकि उसकी रचना काल्पनिक स्टेज को ध्यान में रखकर की जाती है। उनमें जो कोष्ठक लगते हैं वे तमाशा तक बन जाते हैं।[८] विलायतों में नाटक और एकांकी नाटक भी

---

१. वही, पृष्ठ ८०२।

२. वही, पृष्ठ ८०२।

३. ,, ,, ।

४. ,, ,, ।

५. ,, ८०३।

६. ,, ,, ।

७. ,, ,, ।

८. देखिये, 'हंस' में प्रकाशित जैनेंद्र का पत्र जो उन्होंने उपेंद्रनाथ को लिखा था। पृष्ठ ६६२, हंस-वाणी।

दिखाने के लिए लिखे जाते हैं। यदि ऐसा वहाँ नहीं, तो ग़लती है।[1] एकांकी नाटक, अगर वह छपता है, तो सुपाठ्य होना चाहिये और बस।[2]

तो जैनेंद्रकुमार और इनके विचारवाले समालोचक प्रथम वर्ग के समालोचकों से भिन्न एकांकी नाटक की साहित्य में स्थिति को स्वीकार तो करते हैं, वरन् कुछ सोच-विचार के बाद। इनका झगड़ा एकांकी की टेक्नीक तक ही है। यह ग्रुप एकांकी को बिलकुल निरर्थक नहीं मानता।

भ्रांतियाँ—उपसंहार चंद्रगुप्तजी के लेख से निम्नलिखित भ्रांतियाँ साहित्य में फैली हैं :—

(१) एकांकी की अपनी कोई टेकनीक नहीं है और इसलिये साहित्य में उसका कोई स्थान नहीं है।

(२) एकांकी केवल मनोरंजन की चीज़ है और संभाषण-मात्र ही है।

(३) एकांकी लिखना बहुत आसान है।

(४) एकांकी की लोकप्रियता रेडियो के कारण ही हुई है।

(५) एकांकी नाटक में क्लाइमैक्स का होना आवश्यक नहीं।

(६) पात्रों के व्यक्तित्व का चित्रण अथवा विकास वहाँ नहीं हो सकता।

जैनेंद्र के विचार एकांकी नाटक के विषय में इस प्रकार हैं :—

(१) एकांकी नाटक की व्याख्याओं और परिभाषाओं से पूरा काम नहीं होता। उससे हिंदी में लिखे जानेवाले एकांकी नाटक का परिष्कार नहीं होगा, वरन् लेखक कुछ विकल्प में पड़ जायगा। इसलिये एकांकी नाटक-साहित्य की सत्समालोचना अनुचित है।

---

१. वही, पृष्ठ ६६५।

२. ,, ,,

(२) एकांकी नाटक में व्यवहृत ब्रैकिट्स या कोष्टक फ़ैशन के हैं। वे ईमानदारी के ब्रैकिट नहीं हैं।

(३) एकांकी नाटक आज के लिए कृत्रिम चीज़ है। उसके अपनाये जाने का कारण फ़ैशन है, न कि आवश्यकता।

(४) जब हिंदी में अपना रंगमंच ही नहीं तब निर्देश्य की क्या आवश्यकता ?

(५) एकांकी नाटक, अगर वह छपता है, सुपाठ्य होना चाहिये।

उपर्युक्त दो स्कूलों के अतिरिक्त हिंदी-साहित्य में एक ऐसे समालोचकों का भी ग्रूप है जो, भ्रांतियों को एकांकी की उन्नति में बाधक व्यवधानों को दूर करने में तत्पर हैं और ऐसा करना अपना परम कर्त्तव्य समझते हैं। इन्हें हम एकांकी के शुभचिंतकों के नाम से पुकारेंगे। उपेंद्रनाथ अश्क ही इस मत के प्रवर्तक हैं। कुछ ऐसे भी जिनमें 'हंस' के संपादक श्रीपतिरायजी अग्रगण्य हैं, जो एकांकी नाटक के खिलाफ़ चंद्रगुप्तजी की शिकायतें अंशों में ही सही मानते हैं, पर उसकी उपयोगिता और उपादेयता में संदेह करना अनुचित ही समझते हैं।

एकांकी के शुभचिंतक

जैसा कि ऊपर कहा गया है, चंद्रगुप्तजी ने अपने लेख में लिखा है—"संसार के अनेक प्रामाणिक साहित्यिक आलोचकों के मतानुसार एकांकी नाटक कहानी का रंगमंच पर खेला जानेवाला संस्करण-मात्र है।" आलोचक ने एकांकी को कहानी के साथ रखकर जिस प्रश्न की उपज की है वह विचारणीय है। समझ में नहीं आता ऐसा क्यों किया गया, जब यह सर्वसम्मति से विदित है कि कहानी की अपनी ही टेकनीक है, कहानी को उपन्यास का भी छोटा संस्करण मानने को हम तैयार नहीं। उपन्यास और कहानी में अंतर तो हम स्वीकार करें और कहानी और एकांकी में नहीं, बड़े आश्चर्य की बात है! अब यह प्रश्न कि कहानी उपन्यास का स्थान ले लेगी असंगत

एकांकी और कहानी

और असामयिक है।[१] हाँ, उपन्यास और कहानी, उपन्यास और नाटक, निबंध और कविता, एकांकी और निबंध, एकांकी और नाटक, उपन्यास और कहानी, में साम्य अवश्य होता है वरन् हम एक को दूसरे का स्थान कभी नहीं दे सकते। यदि आलोचक एकांकी को नाटक का संक्षिप्त संस्करण कहकर संतोष कर लेते तो बात और थी। यद्यपि वह भी न्यायसंगत नहीं होता, परंतु एकांकी को रंगमंच पर खेले जानेवाली कहानी मानने को हम सर्वथा तैयार नहीं। कदाचित् एकांकी के शैशव-काल में उसकी टेकनीक से अनभिज्ञ होने के कारण हम उसे किसी नाम से पुकारें। पर क्या हमारे सामने पश्चिम का दृष्टान्त नहीं है जहाँ एकांकी का स्वतंत्र स्थान है, उसकी अपनी टेकनीक है, अपना रंगमंच है और अपने ही साधन। जैसा हम आगे चलकर बतायेंगे, नाटक और एकांकी भिन्न हैं, एक का स्थान दूसरा नहीं ले सकता, तब एकांकी कहानी का स्वरूप कैसे हो सकता है ?

उनके विचार से कहानी आसानी से एकांकी के रूप में बदल दी जा सकती है। ऐसा हुआ भी है। जान गैल्सवर्दी ने अपने 'The first and the last' नामक एकांकी को कहानी के रूप में और फिर उपन्यास के रूप में परिवर्तित किया है। Jacobs की कहानी 'Monkey's Paw' का एकांकी नाटक भी बन चुका है। चंद्रगुप्तजी की कहानी 'ताँगेवाला' 'काफ़िर' के एकांकी-रूप में आ गई है। परंतु इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि ऐसा करना आसान है और यदि यह परिवर्तन हो भी गया तो वह सफल ही होगा। 'ताँगेवाला' 'काफ़िर' के रूप में आकर इतनी दिलचस्प नहीं रही और न उतनी प्रभावोत्पादक। 'Monkey's Paw' का एकांकी नाटकवाला संस्करण कितना लोक-प्रिय हुआ इसको संसार जानता ही है।

---

१. 'Short Story will not displace the Novel' Hudson's Introduction to the Study of Literature chapter on 'The Short Story'.

कहानी और एकांकी के ध्येय भिन्न हैं। कहानी का निर्माण रंगमंच के लिये नहीं होता, वह केवल पढ़ने की ही सामग्री है और गल्पकार लिखते समय केवल पढ़नेवाले का ही ध्यान रख उसको लिखता है। उसके विपरीत एकांकी (यदि वह स्टेज के लिये लिखा गया है) रंगमंच का विचार कर लिखा जाता है। यदि एक में लेखक का व्यक्तित्व अधिक रहता है तो दूसरे में न्यून, कभी बिल्कुल ही नहीं। एकांकी में लेखक का ध्यान केवल घटनाओं तक ही सीमित न रहकर पात्रों के चरित्र-चित्रण और वार्तालाप की ओर भी रहता है। संक्षिप्त में दोनों के उद्देश्य भिन्न हैं। इस विषय में एक समालोचक का कथन है—"उपन्यास और कहानी का एक बड़े नाटक या एकांकी में परिणत करना उतना आसान नहीं, जितना वे समझते हैं और इसी तरह एक एकांकी का (जो खेले जाने के लिए लिखा गया है) उससे अच्छी कहानी में परिवर्तित करना सुगम नहीं। ऐसा करनेवाले के लिये स्टेज और कहानी का पूरा-पूरा ज्ञान होना अत्यावश्यक है।"[१]

लंदन-युनिवर्सिटी के हिंदुस्तानी के अध्यापक T. Graham Bailey ने भी यह कहकर कि 'हिंदी का कहानी-साहित्य संसार के किसी भी देश के कहानी-साहित्य से पीछे नहीं है यद्यपि उपन्यास-साहित्य अधिकतर निम्न श्रेणी का है', कहानी और उपन्यास के उद्देश्य में भिन्नता मानी है।[२] उसी प्रकार कहानी और एकांकी में भी।

चंद्रगुप्तजी ने[३] निम्नलिखित घटना लेकर यह बताने का भरसक प्रयत्न

---

१. देखिये उपेन्द्रनाथ अश्क का 'क्या एकांकी का साहित्य में कोई स्थान नहीं ?' 'हंस' मई सन् ३६, पृष्ठ ८६८।

२. देखिये T. Graham Bailey—'Recent Literature of Hindi'.

३. देखिये 'हंस', मई ३८, चंद्रगुप्तजी का एक पत्र 'एकांकी नाटक का साहित्य में कोई स्थान भी है ?' पृष्ठ ८०१।

किया है कि एकांकी नाटक महज़ संभाषण तक ही परिमित है, वह संभाषण

एकांकी और संभाषण

ही है, बस और कुछ नहीं। उनका कथन है कि 'लाहौर में विज्ञापनबाजी का एक अनोखा ढंग मैं बहुत दिनों से देख रहा हूँ। संभव है, कि वह ढंग और भी बहुत जगह बरता जाता हो, फिर भी, मैं उसे 'अनोखा' इसलिये कह रहा हूँ कि दो विशेष व्यक्तियों ने यहाँ उसे बहुत आकर्षक बना रखा है। कोई दो व्यक्ति हैं, एक बड़ी उम्र का लंबा-चौड़ा पुरुष और दूसरा एक बालक, संभव है, वे परस्पर सचमुच चचा-भतीजा हों, क्योंकि अपना परिचय वे इसी प्रकार देते हैं। जिस बेतकल्लुफ़ी का व्यवहार वे एक दूसरे से करते हैं, उसे देखकर यह कहा जा सकता है कि वे पिता-पुत्र तो हो ही नहीं सकते। और यह भी संभव है कि उनमें परस्पर केवल व्यावसायिक संबंध ही हो। अनारकली-बाज़ार में आप उन्हें प्रतिदिन एक दूसरे के सामने खड़े होकर बहुत ऊँची आवाज़ में बातें करते हुए पाएँगे। उनकी बातचीत का विषय भी प्रतिदिन क्या होता है? कभी वे जूतों के बारे में बातें कर रहे होते हैं, कभी कपड़ों के बारे में और कभी दवाइयों के बारे में हां। दोनों की पोशाक भी कुछ निराली-सी होती है। अपने चाचा से पाँच-छै क़दम की दूरी पर खड़ा होकर बालक सवाल करता चला जाता है और चचा साहब आवश्यक भावभंगी के साथ जवाब देते जाते हैं। इस बातचीत में विज्ञापनीय वस्तु की ख़ूबियाँ, प्रयोग, क़ीमत और मिलने का पता आदि सभी कुछ श्रोताओं के कर्णगोचर कर दिया जाता है।'[२] चंद्रगुप्तजी के विचार से एकांकी नाटक लगभग इसी प्रकार की चीज़ है।

एकांकी के बाल्यकाल में अँग्रेज़ी-साहित्य में भी इसी प्रकार का वाद-विवाद चला था और कुछ समालोचकों ने एकांकी को केवल संभाषण-मात्र ही कहकर वहाँ भी इसकी कला से पूर्ण अनभिज्ञता दिखलाई थी।

---

२. देखिये 'हंस' में प्रकाशित चंद्रगुप्त का 'एकांकी नाटक का साहित्य में कोई स्थान भी है?' । पृष्ठ ८०१—८०२.

और उनके विचारों का खंडन भी खूब हुआ था। William Archer ने अपनी 'नाटक किस प्रकार से लिखा जाय'? (Play-making) नामक पुस्तक में एकांकी की व्याख्या केवल संभाषण का एक अंग कहकर ही की थी।[१]

संभाषण एकांकी नाटक के लिये आवश्यक है, इसमें संदेह नहीं, संभाषण द्वारा ही नाटककार चरित्र का विकास और घटनाओं का घात-प्रतिघात प्रदर्शित करता है। परंतु संभाषण ही एकांकी है यह कहना सर्वथा अनुचित है, क्योंकि संभाषण के अतिरिक्त भी उसकी स्थिति और बातों पर भी निर्भर है। एकांकी के लिये आवश्यक है कि वह थोड़े समय में ही समाप्त हो सके और उसे देखकर पाठकों का मनोरंजन भी हो जाय और वे संतुष्ट भी हो जायँ। इसके लिए निहायत जरूरी है ऐक्य अथवा साम्य, चाहे वह उद्देश्य का हो अथवा प्रसंग का, अभिनय का और प्रभाव का हो। इसी ऐक्य की प्राप्ति पर ही, जितनी वह एक एकांकी में होगी एकांकी की सफलता अथवा अस फलता निर्भर है। इसके अतिरिक्त इन्हीं सब बातों के कारण तथा उसकी संक्षिप्तता, उसके साम्य और उद्देश्य के कारण एकांकी के लक्ष्य अथवा आधारभूत विचार तथा एकांकी में आनेवाली निम्न-से-निम्न घटना पर भी ध्यान रखना आवश्यक है। एकांकी नाटक क्या है, उसकी क्या टेकनीक है, यह विस्तार-पूर्वक हम आगामी अध्यायों में बताएँगे। यहाँ यह कह देना पर्याप्त होगा कि एकांकी नाटक वार्तालाप से कहीं अधिक है, वार्तालाप केवल उसका एक अंग है, जिसकी उसे समयानुसार आवश्यकता पड़ती है। परंतु वही सब कुछ नहीं है। यहाँ हमें उपेंद्रनाथ अश्क के

---

१. देखिये B. Roland Lewis का 'The Technique of the One-Act Play' पृष्ठ ११। William Archer का कथन इस प्रकार है :—"...a one-act play, a mere piece of dialogue."

किया है कि एकांकी नाटक महज संभाषण तक ही परिमित है, वह संभाषण ही है, बस और कुछ नहीं। उनका कथन है कि 'लाहौर में विज्ञापनबाजी का एक अनोखा ढंग मैं बहुत दिनों से देख रहा हूँ। संभव है, कि वह ढंग और भी बहुत जगह बरता जाता हो, फिर भी, मैं उसे 'अनोखा' इसलिये कह रहा हूँ कि दो विशेष व्यक्तियों ने यहाँ उसे बहुत आकर्षक बना रखा है। कोई दो व्यक्ति हैं, एक बड़ी उम्र का लंबा-चौड़ा पुरुष और दूसरा एक बालक, संभव है, वे परस्पर सचमुच चचा-भतीजा हों, क्योंकि अपना परिचय वे इसी प्रकार देते हैं। जिस बेतकल्लुफ़ी का व्यवहार वे एक दूसरे से करते हैं, उसे देखकर यह कहा जा सकता है कि वे पिता-पुत्र तो हो ही नहीं सकते। और यह भी संभव है कि उनमें परस्पर केवल व्यावसायिक संबंध ही हो। अनारकली-बाजार में आप उन्हें प्रतिदिन एक दूसरे के सामने खड़े होकर बहुत ऊँची आवाज़ में बातें करते हुए पाएँगे। उनकी बातचीत का विषय भी प्रतिदिन क्या होता है? कभी वे जूतों के बारे में बातें कर रहे होते हैं, कभी कपड़ों के बारे में और कभी दवाइयों के बारे में ही। दोनों की पोशाक भी कुछ निराली-सी होती है। अपने चाचा से पाँच-छै क़दम की दूरी पर खड़ा होकर बालक सवाल करता चला जाता है और चचा साहब आवश्यक भावभंगी के साथ जवाब देते जाते हैं। इस बातचीत में विज्ञापनीय वस्तु की ख़ूबियाँ, प्रयोग, क़ीमत और मिलने का पता आदि सभी कुछ श्रोताओं के कर्णगोचर कर दिया जाता है।'[२] चंद्रगुप्तजी के विचार से एकांकी नाटक लगभग इसी प्रकार की चीज़ है।

एकांकी और संभाषण

एकांकी के बाल्यकाल में अँग्रेज़ी-साहित्य में भी इसी प्रकार का वाद-विवाद चला था और कुछ समालोचकों ने एकांकी को केवल संभाषण-मात्र ही कहकर वहाँ भी इसकी कला से पूर्ण अनभिज्ञता दिखलाई थी।

---

२. देखिये 'हंस' में प्रकाशित चंद्रगुप्त का 'एकांकी नाटक का साहित्य में कोई स्थान भी है?' । पृष्ठ ८०१–८०२.

और उनके विचारों का खंडन भी खूब हुआ था। William Archer ने अपनी 'नाटक किस प्रकार से लिखा जाय'? (Play-making) नामक पुस्तक में एकांकी की व्याख्या केवल संभाषण का एक अंग कहकर ही की थी।[1]

संभाषण एकांकी नाटक के लिये आवश्यक है, इसमें संदेह नहीं, संभाषण द्वारा ही नाटककार चरित्र का विकास और घटनाओं का घात-प्रतिघात प्रदर्शित करता है। परंतु संभाषण ही एकांकी है यह कहना सर्वथा अनुचित है, क्योंकि संभाषण के अतिरिक्त भी उसकी स्थिति और बातों पर भी निर्भर है। एकांकी के लिये आवश्यक है कि वह थोड़े समय में ही समाप्त हो सके और उसे देखकर पाठकों का मनोरंजन भी हो जाय और वे संतुष्ट भी हो जायँ। इसके लिए निहायत जरूरी है ऐक्य अथवा साम्य, चाहे वह उद्देश्य का हो अथवा प्रसंग का, अभिनय का और प्रभाव का हो। इसी ऐक्य की प्राप्ति पर ही, जितनी वह एक एकांकी में होगी एकांकी की सफलता अथवा असफलता निर्भर है। इसके अतिरिक्त इन्हीं सब बातों के कारण तथा उसकी संक्षिप्तता, उसके साम्य और उद्देश्य के कारण एकांकी के लक्ष्य अथवा आधारभूत विचार तथा एकांकी में आनेवाली निम्न-से-निम्न घटना पर भी ध्यान रखना आवश्यक है। एकांकी नाटक क्या है, उसकी क्या टेकनीक है, यह विस्तार-पूर्वक हम आगामी अध्यायों में बताएँगे। यहाँ यह कह देना पर्याप्त होगा कि एकांकी नाटक वार्तालाप से कहीं अधिक है, वार्तालाप केवल उसका एक अंग है, जिसकी उसे समयानुसार आवश्यकता पड़ती है। परंतु वही सब कुछ नहीं है। यहाँ हमें उपेंद्रनाथ अश्क के

---

१. देखिये B. Roland Lewis का 'The Technique of the One-Act Play' पृष्ठ ११। William Archer का कथन इस प्रकार है :—"...a one-act play, a mere piece of dialogue."

कथन का स्मरण हो आता है।[1] उनके विचार से 'एकांकी नाटक कहानी से भी कुछ ज़्यादा है और यदि मुझे इसके लिए क्षमा किया जाय तो विनय के साथ निवेदन करूँगा कि यह आवश्यक नहीं कि हर कहानी-लेखक अथवा नाटककार सफल और उत्तम एकांकी और विशेष रूप से झाँकियाँ लिख सके। Walter Prichard raton का कथन है कि 'एकांकी को जीवित रहने का अधिकार उतना ही है जितना कहानी को और उदाहरण की कमी नहीं है जिससे हम कहते हैं कि एकांकी संक्षिप्त, गूढ़ और मुख्य हो सकता है। और एकांकी ही के कारण आज हमारे देश में कल्पना और जीवन-संबंधी व्याख्यायों की आंतरिकता के चिह्न दृष्टिगोचर होते हैं।"[2]

उदाहरण के लिये हम पाश्चात्य साहित्य और हिंदी-साहित्य के कुछ एकांकियों का ज़िक्र कर कह सकते हैं कि वे सर्वथा वार्तालाप-मात्र नहीं हैं, उनका ध्येय केवल पाठकों का मनोरंजन ही नहीं है। पाश्चात्य से हम उद्धृत कर सकते हैं Barrie का 'The Twelve Pound Look', Marion Craig Wentworth का 'War Brides', Fenn & Price का "Op-o'Me Thumb," William Butler

---

१. देखिये 'हंस' वैशाख सं॰ १९९५ में प्रकाशित 'क्या एकांकी का साहित्य में कोई स्थान है?'

२. "But the one-act play," says Walter Prichard raton, "has an obvious right to existence, as much as the short story, and there are plentiful proofs that it can be terse, vivid and significant...It is the One-act Play in our country to-day which will bear the most watching for signs of imagination and for flashes of insight and interpretative significance."

Yeats का "The Hour Glass", Zoa Jale का "Neighbours", Paul Hervieu's का "Modesty", August Strindberg का "Facing Death", Edward Goodman का "Eugenically Speaking", Lord Dunsany का 'The Glittering Gate"; और "The Lost Silk Hat', George Cram Cook और Susan Flatfell का "Suppressed Desires' तथा Alice Ferstenberg का "Overtones" हिंदी-साहित्य से भी रामकुमार वर्मा का 'ऐक्ट्रेस' 'रेशमी-टाई' और 'पृथ्वीराज की आँखें', भगवतीचरण वर्मा का 'स्ट्राइक', भुवनेश्वरप्रसाद मिश्र का 'ऊसर' और 'श्यामा', गणेशप्रसाद द्विवेदी का 'सोहाग-बिंदी' आदि मुख्य हैं। इन्हें पढ़कर कौन कहेगा कि एकांकी चचा-भतीजे वाले विज्ञापन जैसा संभाषण-मात्र ही है।

एकांकी की क्या टेकनीक है ?

कहा जाता है कि एकांकी की अपनी कोई टेकनीक नहीं है और इसलिये साहित्य में इसका कोई स्थान नहीं है। पात्रों के व्यक्तित्व का विकास अथवा चरित्र-चित्रण वहाँ मुमकिन नहीं। एकांकी इसी से केवल नवसिखियों के ही लिये है। साहित्य-महारथियों से इसका कोई संबंध नहीं, इसकी रचना में पाँच अथवा चार अंकवाले नाटकों की अपेक्षा बहुत कम समय लगता है। इस प्रकार की भ्रांति के उद्भावक और पोषक, शोक है, हिंदी-साहित्य में श्रीयुत चंद्रगुप्तजी हैं जिन्होंने स्वयं तीन या चार एकांकी नाटक लिखे हैं। उनका 'अशोक' प्रकाशित हो चुका है, दूसरा नाटक वह लिख रहे हैं और तीसरे की कल्पना उनके मस्तिष्क में है। यह सब जानते हैं कि कुछ कहानियाँ लिखना, उपन्यास लिखना आसान होता है दूसरों की अपेक्षा, कुछ नाटकों के निर्माण में थोड़ा समय लगता है, कुछ एक महीने में, कुछ दिनों में ही तैयार हो जाते हैं। परंतु यह कहना कि सभी नाटकों अथवा सभी उपन्यासों का रचना-काल एक ही समय लेगा, यह गलत है। कोई एकांकी भी इतना समय लेंगे जितना एक पूर्ण नाटक। एकांकी नाटककारों के कथनानुसार एकांकी की रचना गौण विषय नहीं है, इसकी रचना में उनका उतना ही

समय लगता है, उतना ही ध्यान उधर वे देते हैं जितना किसी और रचना के निर्माण में। किसी प्रकार की भी तुलना इस विषय में व्यर्थ है। यह कहना कि एकांकी नाटक की रचना में जो समय लगता है वह बड़े नाटक की रचना के लिये केवल तैयारी-मात्र है सर्वथा एकांकी के साथ अन्याय करना है, क्योंकि जिस प्रकार कहानी को हम उपन्यास के लिये सीढ़ी-मात्र कहने में हिचकते हैं उसी प्रकार एकांकी को बड़े नाटक के संबंध में समझना चाहिये। यहाँ पर एक पाश्चात्य आलोचक का कथन सारगर्भित है—'एकांकी कहानी के समान स्वतन्त्र रचना है। यह कहना कि एकांकी का बड़े नाटक लिखने से पहले अभ्यास के रूप में प्रयोग हो सकता है, कुछ को छोड़कर, उसके साथ अन्याय करना है'।[1]

रही एकांकी की अपनी टेकनीक की बात और उसमें चरित्र-चित्रण के विकास की। इसके विषय में यह कह देना समुचित है कि एकांकी की अपनी टेकनीक है और उसमें चरित्र-चित्रण के लिए भी जीवन की झाँकी के अतिरिक्त लेखक को पर्याप्त स्थान मिल जाता है। सफल एकांकी में दोनों का होना अनिवार्य है। एक समालोचक का कथन है कि एकांकी जीवन का एक संक्षिप्त अंग है, वह जीवन की झाँकी ही हमारे सम्मुख रखता है। इसका आकार बृहद् होने की अपेक्षा परिमित, पूर्ण के स्थान में उसमें अपूर्णता का भान होता है।[2]

---

1. "The One-act play, like the short-story is a type unto itself; and to suggest that the prospective playwright uses the One-act play only as a thing on which to practise before attempting the larger form, is, in but exceptional individual cases, almost an insult to the type." Vide Roland Lewis 'The Technique of the One-act Play.

2. [illegible] लेखक का Twentieth Century में प्रकाशित

हिंदी-साहित्य में, नहीं संपूर्ण भारतवर्ष में, एकांकी नाटक की लोकप्रियता का कारण चंद्रगुप्तजी ने रेडियो को ही माना है। साहित्य के नाम

एकांकी और रेडियो-ले

पर हमारे यहाँ के ब्रॉडकास्टिंग स्टेशन जो प्रोग्राम देते हैं, उनमें एकांकी नाटकों को विशेष महत्ता दी जा रही है[1]। चंद्रगुप्तजी की इस ग़लतफ़हमी का कारण एकांकी जो पढ़े अथवा रंगमंच पर खेले जाने के लिए लिखे जाते हैं और एकांकी जो ब्रॉडकास्टिंग स्टेशनों से ब्रॉडकास्ट होते हैं, उन दोनों में फ़र्क न मानने से ही है। उनके अनुसार ये दोनों एक प्रकार की रचना हैं। एकांकी जो केवल बीस या पचीस मिनट, कभी-कभी इससे भी कम समय, का ध्यान रख ब्रॉडकास्टिंग के लिए लिखे जायँगे, भिन्न होंगे पढ़े जानेवाले एकांकियों से। एक में वार्तालाप का आधिक्य, जनता की अभिरुचि का पूरा ध्यान, ब्रॉडकास्टिंग स्टेशन की माँग का, अथवा जनता को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए गानों को, स्थान आदि सभी बातों का ध्यान रखा जायगा। चाहे उनमें चरित्र-विकास की ओर ध्यान रखा जाय या नहीं

One-act play in Hindi Literature नामक लेख।

'The one-act play is a detached picture, a part, it merely gives us a peep into life, instead of variety, concentration, instead of completeness, incompleteness, instead of elaboration, intensification, instead of length, brevity, instead of exhaustion, suggestion, compression."

१, 'हंस' के मई अंक में प्रकाशित चंद्रगुप्तजी का 'एकांकी नाटक का साहित्य में भी कोई स्थान है ?' लेख पृष्ठ ८०३।

इससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। ये तो केवल जनता के मनोरंजन के लिए ही लिखे जाते हैं। इनमें नाटकीय संकेतों की भी कोई आवश्यकता नहीं। अन्यथा उनकी उपस्थिति अस्वीकृत होगी। इसका भेद हमें तब अच्छी तरह मालूम होगा जब हम भुवनेश्वरप्रसाद के रंगमंच पर खेले जाने के हेतु लिखे गये 'श्यामा' का ब्रॉडकास्ट करें। उपेंद्रनाथ अश्क का 'पापी', जो 'विशाल-भारत' में प्रकाशित हुआ था। ४, फरवरी सन् ३८ को लाहौर स्टेशन से ब्रॉडकास्ट हुआ और लेखक का कथन है कि उसे रेडियो के लिये Adopt करने में जितने परिवर्तन मुझे करने पड़े मैं ही जानता हूँ।" ब्राडकास्टिंग स्टेशन से ब्राडकास्ट हुए एक साहित्यिक लेख और मासिक या त्रैमासिक पत्रिका के लिये लिखे गये लेख में जो विभिन्नता है क़रीब-क़रीब वही एकांकी में जो ब्राडकास्टिंग के लिये है और जो पढ़े जाने के लिये लिखा गया है। दोनों ही में काफ़ी तरमीम की आवश्यकता पड़ती है। अच्छा हो, संभाषण को हम Dialogue के नाम से लिखें और पुकारें, एकांकी जो रंगमंच के लिये है एकांकी के नाम से और एकांकी जो रेडियो के लिये है उसे Radio Play के नाम से। ऐसा करने से बहुत कुछ झगड़ा मिट जाने की संभावना है। रेडियो के एकांकी की और रंगमंच के एकांकी की टेकनीक भिन्न है। एक रंगमंच की आवश्यकताओं और पाठक की अभिरुचि को ध्यान में रखकर लिखा जाता है और दूसरा ब्राडकास्टिंग के सुननेवालों की प्रतिच्छाया मात्र है। एक साहित्यिक है, दूसरा बाज़ारू।

"और तो और, एकांकी नाटक में क्लाइमैक्स (Climax) का भी होना आवश्यक नहीं"।[1] क्या यह कहना कि कहानियों और एकांकियों में क्लाइमैक्स का होना आवश्यक है, ठीक है। देखने में आया है कि बहुत-सी कहानियाँ लिखी जाती हैं जिनमें क्लाइमैक्स होता ही नहीं, ऐसे एकांकी भी मिल

एकांकी और क्लाइमैक्स

1. वही।

जायँगे। किसी रचना में क्लाइमैक्स का होना-न-होना उसके घटना-प्रवाह पर निर्भर है। यह सोचना कि उसकी उपस्थिति से उसका मूल्य बढ़ जाता है, वह सर्वोत्तम हो जाती है और उसकी अनुपस्थिति में हीन, सर्वथा गलत है। साहित्य में अनेकानेक उदाहरण भरे पड़े हैं जहाँ क्लाइमैक्स न होते हुए भी रचना भली बन पड़ी है और उसका मूल्य आँकने में आलोचकों को कुछ भी कठिनाई नहीं होती। अँग्रेज़ी-साहित्य में 'Mimi' ऐसा ही एकांकी है। नाटककार का ध्येय घटनाओं का विकास न दिखलाकर विंदु तक केवल कुछ कलाकारों के जीवन की परिचर्या करना है, जिसमें उसे पूर्ण सफलता मिली है। उसके विपरीत Harold Brig house का 'The Dumb and the Blind' क्लाइमैक्स को लेकर और उसके कारण ही लेखक की प्रतिभा का द्योतक है। लेखक का ध्येय गरीब मजदूरों के जीवन का दिग्दर्शन कराने के अतिरिक्त घटना की गुत्थियों को सुलझाना भी है और इसी में उसकी सफलता है। यह घटना-प्रधान रचना है। किस प्रकार एक दुष्ट-प्रकृति मनुष्य अपनी स्त्री द्वारा, उसको परमात्मा से प्रार्थना करते हुए देखकर, एक सज्जन-प्रकृति मनुष्य में परिणत हो जाता है, उसका कथानक है। स्त्री को प्रार्थना करते हुए देखना ही उसके जीवन की महत्त्व-पूर्ण घटना है और यहीं से उसकी अमानुषिकता का अंत और उसकी मनुष्यता का सूत्रपात समझिये। यही एकांकी का क्लाइमैक्स है। हिंदी-साहित्य में भी रामकुमार वर्मा का 'ऐक्ट्रेस' घटना-प्रधान है। लेखक ने घटना का विकास अधिकतर कथोपकथन द्वारा ही कराने की चेष्टा की है। सिनेमा-स्टुडियो में ऐक्ट्रेसों के जीवन का अवलोकन करना तो लेखक का ध्येय है ही, परंतु इसके अतिरिक्त कथानक के सुचारु संकलन का भी यह सुंदर उदाहरण है। हिंदी-साहित्य में ऐसे नाटकों का उद्भव उसके शैशव-काल में है जो, उसकी प्रतिभा का द्योतक है। ऐसे नाटक पाश्चात्य एकांकियों से किसी बात में भी कम नहीं। इसका क्लाइमैक्स भी सुंदर है। यह ऐक्ट्रेस कौन थी, किन कारणों से उसने यह किया,

उसके बाह्य आवरण और आकृति के भीतर जितनी अग्नि प्रज्वलित थी और अंत में उसके जीवन की झाँकी-मात्र रूप से घटनाओं का वर्णन, यह सब लेखक ने जितने थोड़े समय और शब्दों में कर दिया कि हमारे पास उसकी प्रशंसा के अतिरिक्त और कोई शब्द नहीं है ? समझ में नहीं आता कि प्रकाशचंद्र गुप्त को 'एक्ट्रेस' से निराशा क्यों हुई ।[1] भुवनेश्वर-प्रसाद के 'स्ट्राइक' की कल्पना, उसकी कथा-वस्तु वास्तव में विचारणीय होते हुए भी नवीन है । इसमें आधुनिक भारतीय फ़ैशनेबिल सोसाइटी का वर्णन है, और है उसके लिए अवसाद-पूर्ण उद्विग्नता, क्लाइमैक्स उनकी इस रचना में है अवश्य परंतु उसका नाटक में कितना सुंदर सम्मिलन है । 'स्पर्धा' में क्लाइमैक्स न होते हुए भी नाटक की गति-विधि अति सुंदर है ।

एकांकी और नाटकीय संकेत

जैनेंद्रकुमारजी ने अपने उपेंद्रनाथ अश्क वाले पत्र में नाटकीय संकेत की अनावश्यकता बताकर उसकी कृत्रिमता की ओर इशारा कर जो समस्या खड़ी की है वह विचारणीय है । "हिंदी में अपना कोई रंगमंच नहीं । फिर इनकी क्या आवश्यकता है । जब स्टेज-संचालकों और मैनेजरों का अभाव है, फिर उनके लिए ये निर्देश कैसे ?" प्रश्न गंभीर है । "हिंदी में इसका प्रचलन था परंतु केवल निम्नरूप में ही । स्टेज (Directions) इतने लंबे और व्यापक पहले कभी नहीं होते थे । यह निर्विवाद सत्य है कि इनका व्यापक रूप से उपयोग हिंदी में पाश्चात्य नाट्य-शास्त्र के ही प्रभाव से आया । अब तो गैल्सवर्दी आदि पाश्चात्य नाटककारों के समान हिंदी नाटकों में भी एक-एक दो-दो, कहीं इससे भी अधिक लंबे निर्देश रहते हैं । यहाँ हम इसकी टेकनीक पर दृष्टिपात न करके केवल यही बताने का प्रयत्न करेंगे कि स्टेज न होते हुए भी, पाश्चात्य परिपाटी की

---

१. देखिए प्रकाशचंद्र गुप्त का लेख 'एकांकी नाटक' 'हंस', मई ३८, पृष्ठ १२६ ।

नक़ल समझते हुए भी हमें इनकी आवश्यकता है। हिंदी में अपना स्टेज नहीं है, पर इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि स्टेज हिंदी में कभी भी नहीं बनेगा। हिंदी में नाटक की उन्नति न होने का एक कारण यहाँ का रूढ़िग्रस्त समाज भी है। समाज की रूढ़ियों के विकारों से नाटककार की तीव्र दृष्टि के लिये पूर्ण क्षेत्र ही नहीं मिलता। इन रूढ़ियों में से पर्दा भी एक है। एकांकी की उपज के कारण रूढ़ियों के होते हुए भी हमें उसका भविष्य उज्ज्वल प्रतीत होता है। क्योंकि उसके लिये नाटककार को बड़े क्षेत्र की तो आवश्यकता है ही नहीं जिसका मिलना भारतवर्ष में असंभव नहीं मुश्किल अवश्य है। एकांकी स्कूल और कॉलेजों में खेले भी गये हैं, उनमें सफलता हुई और पाठकों का मनोरंजन भी, और खेले जाते हैं। क्या हम नहीं जानते कि इन्हीं दुधमुँहे प्रयासों से हिंदी के रंगमंच की उद्भावना होगी। रही इनकी कृत्रिमता की बात। किसी नवीन शैली का अनुकरण अथवा उसका उद्भावन सर्वथा अग्राह्य नहीं हो सकता। नवीन आरम्भ में कृत्रिम ही दिखलाई दिया करता है उन हीरक के समान जो प्रारम्भिक अवस्था में भद्दे और मैले होते है परन्तु जौहरी के पास से निकल जाने के बाद बिजली की रोशनी में कितने चमचमाते हैं। उनको कृत्रिम कहनेवाले मेरे विचार से हिंदी-साहित्य में हैं अवश्य परन्तु कितने थोड़े। हमारे लिये प्रगतिशील साहित्य की आवश्यकता और अप्रगति शक्तियों का प्रभंजन जिससे साहित्य की गति अवरुद्ध होती है आवश्यक है। इसी में हिंदी-साहित्य की सफलता और उन्नति है।

क्या एकांकी नाटक की टेकनीक पर लेख अथवा पुस्तकें उसकी उलझी हुई गुत्थियों को सुलझाने के अतिरिक्त उसको और भी कठिन बनायेंगी? सत्समालोचना का साहित्य में सदैव स्थान रहा है और रहेगा। उसकी उद्भावना साहित्य में स्वतः हो जाया करती है जब साहित्य का निर्माण एक हद तक हो जाया करता है। एकांकी पर पाश्चात्य साहित्य में कई पुस्तकें लिखी गई हैं और लिखी जा रही हैं। वहाँ भी एकांकी नाटक

वती' आदि साहित्य की अमर कृतियाँ हैं। वर्तमान युग मुक्तक रचनाओं का ही युग है, प्रबंध-रचनाओं की धूम यहाँ नहीं है। प्रबंध-रचनाओं का निर्माण यहाँ बहुत कम हुआ है। किसी रचना का बड़ा अथवा छोटा होना साहित्यिक कौशल की माप नहीं हो सकती। एकांकी छोटे भले ही हों वरन् बाज-बाज उनमें साहित्य की कृतियाँ हैं। कौन कहेगा कि Synge का Riders to the Sea प्रभावोत्पादक नहीं है और उसकी संक्षिप्तता, उसकी सर्वप्रियता तथा ख्याति में बाधक है। वह कला की चरम सुंदरता का अच्छा उदाहरण है। हिंदी-साहित्य में यद्यपि ऐसे एकांकी नहीं हैं, यदि हैं भी तो एक या दो. परंतु ध्यान रहे अभी तो हिंदी एकांकी साहित्य अपनी शैशवावस्था में ही है। भुवनेश्वरप्रसाद का 'स्ट्राइक' और 'ऊसर', रामकुमार का 'रेशमी टाई' और 'जुलाई की शाम', भगवतीचरण वर्मा का 'मैं और तू' अमर रत्न हैं। साहित्यिक रचना वास्तव में कला है, चाहे उसकी कथा-वस्तु छोटे स्केल पर हो अथवा बड़े पर। मुक्तक काव्य कला है, उसी प्रकार जिस प्रकार महाकाव्य, कहानी और उपन्यास भी कला के दो भिन्न-भिन्न अंग हैं। छोटा खिलौना भी कला का स्वरूप है बड़ी मूर्ति के समान। कभी-कभी छोटी तस्वीर बड़ी की अपेक्षा अधिक सुंदर होती है। एकांकी को हमें कूड़े-कर्कट की वस्तु न समझ बैठना चाहिये, उसका साहित्यिक मूल्य इसलिए कम नहीं हो जाता, क्योंकि वह नाटक के मुकाबले में छोटा है। एक पाश्चात्य आलोचक के शब्दों में किसी प्रकार की कला की समीक्षा का आधार उसका स्वरूप नहीं होना चाहिये।[1]

एकांकी की सफलता और सर्वप्रियता में बाधक सबसे अधिक बड़े

---

[1] देखिये Art of any kind must not be judged in the light of the cult of mere bigness. Roland Lewis. The Technique of the One-act Play Page18

उसकी प्रतिच्छाया रूप में साहित्य में भी एक विशेष प्रकार की टेकनीक विद्यमान रहती है। आधुनिक नाटक-साहित्य एकांकी का है, यह जनता की रुचि का परिचायक है। इसकी उपस्थिति जनता की उपस्थिति है। नाटक की ओर लोगों का ध्यान अवश्य है परंतु एकांकी की ओर जनता की बढ़ती हुई अभिरुचि को देखकर भविष्यवाणी की जा सकती है कि एकांकी उन्नति करेगा, इसका भविष्य उज्ज्वल है।

इस कारण एकांकी को किसी ऐसे मित्र की आवश्यकता नहीं जो उसका बचाव कर सके। यदि हो तो अच्छा है। वह अपनी रक्षा स्वयं ही कर लेगा। उनमें जीवन के सामयिक चित्र और चरित्र-चित्रण का विकास विद्यमान रहता है। उनकी रचना जीवन के अंग-प्रत्यंगों का पूर्ण ज्ञान हुए बगैर नहीं हो सकती। उसकी सारता नाटकीय अभिव्यंजन में है जो अति गूढ़ और बृहद् है। कहानी भी एक समय, अभी थोड़े ही दिन हुए हैं, शैशव काल में थी, वरन् अब उसका साहित्य है। यह कहना इसके साथ-साथ असंगत ही होगा कि सारे एकांकी, जो लिखे जाते हैं साहित्यिक सामग्री नहीं। उनको हम छोड़ सकते हैं। हमारा विचार उन्हीं एकांकी से है जो साहित्य की चिर-सामग्री हो सकें।

एकांकी को निस्सार और व्यर्थ कहना अब असंगत है। साहित्य से उसका बहिष्कार नहीं हो सकता। उनकी ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

//

नाटक की परंपरागत टेकनीक और स्टेज की रूढ़ियाँ हैं। यह सुना जाता है कि स्टेज पर यदि संगीत एक ही प्रकार का न होकर विभिन्न रूप धारण करे तो वह आकर्षक नहीं हो पाता। जनता के मनोरंजन के लिये एक ही प्रकार का Concert होना चाहिये। सिनेमा में होते हुए खेल के साथ-साथ Walt Disney के एकांकी का दिखाया जाना और नाटक के साथ दूसरे एकांकीयों का अभिनय, जैसा पश्चिम में अक्सर देखने में आता है, जनता की अभिरुचि के विरुद्ध है। परंतु मनोवैज्ञानिक रूप से देखने से और व्यावहारिक अनुभव से यह निर्विवाद सिद्ध है कि जनता की अभिरुचि किसी और वस्तु द्वारा भी आकर्षित की जा सकती है। कोई हानि नहीं होगी यदि बड़े नाटक के साथ एकांकी का भी अभिनय हो, वरन् इसकी आवश्यकता है। हिंदी में रंचमंच की अनुपस्थिति में यदि सिनेमा में ही एकांकी को खेल के साथ-साथ स्थान दिया जाय तो बड़ा उपकार हो। जनता का भी मनोरंजन हो और हिंदी में अथवा अन्य भाषाओं के नाटक-साहित्य में विशेष उन्नति हो। सिनेमा-डायरेक्टर्स इसकी ओर ध्यान दें। परंतु यह तभी हो सकता है जब एकांकी टेकनीक की दृष्टि से सब दोषों से मुक्त हो। अन्यथा नहीं।

एकांकी नाटक तथा स्टेज-रूढ़ियाँ

एकांकी की आधुनिक समय में सर्वप्रियता ही उसके जीवित रहने का परिचायक है। एकांकी का अभिनय विशेष रूप से विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में होता है और सफलता के साथ, विद्यार्थी इनको बड़े चाव से पढ़ते हैं, इसकी स्थिति नाटककार, संपादक तथा ऐक्टर आदि सभी मानते हैं, कदाचित् हिंदी में कोई ऐसी मासिक-पत्रिका हो जिसमें एकांकी मासिक अथवा त्रैमासिक रूप से प्रकाशित न होते हों। किसी साहित्यिक कृति का विषय और उसकी टेकनीक उस समय की सामाजिक अथवा राजनैतिक स्थिति पर निर्धारित बहुत कुछ अंश में रहती है। जिस प्रकार समाज में किसी काल-विशेष में एक सामाजिक धारा का होना अनिवार्य है, उसी प्रकार

एकांकी की सर्वप्रियता

उसकी प्रतिच्छाया रूप में साहित्य में भी एक विशेष प्रकार की टेकनीक विद्यमान रहती है। आधुनिक नाटक-साहित्य एकांकी का है, यह जनता की रुचि का परिचायक है। इसकी उपस्थिति जनता की उपस्थिति है। नाटक की ओर लोगों का ध्यान अवश्य है परंतु एकांकी की ओर जनता की बढ़ती हुई अभिरुचि को देखकर भविष्यवाणी की जा सकती है कि एकांकी उन्नति करेगा, इसका भविष्य उज्ज्वल है।

इस कारण एकांकी को किसी ऐसे मित्र की आवश्यकता नहीं जो उसका बचाव कर सके। यदि हो तो अच्छा है। वह अपनी रक्षा स्वयं ही कर लेगा। उनमें जीवन के सामयिक चित्र और चरित्र-चित्रण का विकास विद्यमान रहता है। उनकी रचना जीवन के अंग-प्रत्यंगों का पूर्ण ज्ञान हुए बग़ैर नहीं हो सकती। उसकी सारता नाटकीय अभिव्यंजन में है जो अति गूढ़ और वृहद् है। कहानी भी एक समय, अभी थोड़े ही दिन हुए हैं, शैशव काल में थी, वरन् अब उसका साहित्य है। यह कहना इसके साथ-साथ असंगत ही होगा कि सारे एकांकी, जो लिखे जाते हैं साहित्यिक सामग्री नहीं। उनको हम छोड़ सकते हैं। हमारा विचार उन्हीं एकांकी से है जो साहित्य की चिर-सामग्री हो सकें।

एकांकी को निस्सार और व्यर्थ कहना अब असंगत है। साहित्य से उसका बहिष्कार नहीं हो सकता। उनकी ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

//

एकांकी नाटक—अँग्रेज़ी, संस्कृत और हिंदी के एकांकी का तुलनात्मक अध्ययन।

एकांकी नाटक पश्चिम की, विशेषकर अँग्रेजी-साहित्य की, सर्वप्रिय रचना है। इसका जन्म पहलेपहल वहीं हुआ। करीब चालीस साल पूर्व एकांकी नहीं लिखे जाते थे। एकांकी की निम्न श्रेणी की रचनाओं में गणना होती थी। उसका आधुनिक विस्तृत स्वरूप देखने को भी नहीं मिलता था। इस कारण कुछ हद तक एकांकी नवीन नाटक है अथवा आधुनिक साहित्य का एक नवीन स्वरूप। मध्यकालीन जापान के 'नोह' नामक नाटकों की लंबाई एकांकी जैसी ही थी। उनमें कथानक का आधिक्य अत्यंत संतुलित रूप में होता था। अँग्रेजी के प्रारंभिक नाटक Miracles और Mysteries धारावाहिक थे। परंतु उनका स्वरूप एकांकी ही था। Everyman एकांकी है और अँग्रेजी की The Four P's नामक कामेडी भी एकांकी थी। ऐसे और भी अनेकानेक उदाहरण हैं। इटली और फ्रांस में Commedia dell arte के सुंदर-सुंदर दृश्य भी एकांकी का स्वरूप लेकर जनता का मनोरंजन किया करते थे। बड़े दिन के अवसर पर खेले जानेवाले नाटक, जिनमें मूक-प्रदर्शन का आधिक्य होता था, और जिसका उल्लेख टामस हार्डी ने अपने उपन्यास 'The Return of the Native में किया है, और गाँववालों के मनोरंजनार्थ लिखे गए प्राचीन नाटक भी विना किसी अपवाद के एकांकी थे। परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दिनों में योरुप और अमेरिका में एकांकी लिखे गए और जनता का ध्यान इसकी ओर आकर्षित हुआ। एकांकी पहले भी लिखे गए परंतु उसका वर्त्तमान स्वरूप, उसकी सर्वप्रियता आदि जैसी पश्चिम में आज है पहिले कभी भी नहीं थी। प्रोफ़ेसर बेकर का कथन है कि एकांकी का सूत्रपात अठारहवीं शताब्दी में बड़े नाटकों के साथ जनता के मनोरंजन के लिये हुआ। पर ज्यों-ज्यों समय बदलता गया, एकांकी का

रूप भी वहाँ बदला। यों तो एकांकी नाटकों के इतिहास में कड़ी प्राचीन काल से ही मिल जायगी, पर जो उसका कलात्मक रूप आज हमारे सम्मुख है पहिले नहीं था। प्राचीन एकांकीयों में अंक अवश्य एक ही होता था. वरन् संवाद के बाहुल्य के अतिरिक्त और कुछ वहां पाना असंभव था। एकांकी का 'संवाद' रूप बहुत दिन तक रहा और तब तक यह अध्ययन का विषय न था। इसकी ओर जनता का ध्यान भी न था। कुछ एकांकी तो अब ऐसे हैं जिनका विषय साधारण है, एक देशीय न हो वे संपूर्ण संसार की वस्तु हैं। उदाहरण के लिये Synge का 'Riders to the Sea', Lord Dunsany का 'A Night in an Inn,' Maurice Maeterlinck का 'The Intruder', Engene O' Neill का Ile आदि।

संक्षिप्त में. एकांकी नाटक का, आधुनिक एकांकी का इतिहास थोड़े ही दिनों का है—चालीस-पचास वर्षों का। इसके अधिकाधिक प्रचार से पूर्व एकांकी Curtain raiser के नाम से पुकारा जाता था। इसको Vaudeville भी कहते थे। थियेटर में जल्दी पहुँचनेवाली जनता का मनों जिससे न ऊबे और देर में खाना खानेवाली जनता के पहुँचने तक जिससे इंतजार न करना पड़े, आदि कारणों से इसकी सृष्टि हुई। पेरिस के Grand gingnol थियेटर में संध्या समय कई एकांकी एकबारगी खेले जाते थे, जिनका विषय प्रायः रोमांचकारी होता था। इसके सिवाय ऐसे थियेटरों का जहाँ सिर्फ एकांकी ही खेले जायँ सर्वथा अभाव था। अँग्रेजी साहित्य में Sir James Matthew Barrie ही सबसे पहले नाटककार थे जिन्होंने एक ही साथ अभिनीत होनेवाले एकांकी रचे। उनके एकांकीयों का अमेरिका में अच्छा आदर हुआ। पश्चिम में एकांकी नाटक की इतनी तेज गति और वृद्धि के दो कारण हैं। Repertory Theatre और Little Theatre की स्थापना। इन दोनों से ही इसे विशेष सहायता मिली। प्रारंभ में अमेरिका के Little Theatres में

कहने की प्रथा और सूत्रधार के कथन से कथा आरम्भ करने की प्रणाली का उपयोग होता था। भास के 'मध्यम व्यायोग' का आरम्भ इस प्रकार है —

(नान्दी के पश्चात् सूत्रधार आता है)

सूत्रधार—असुर स्त्रियों के हृदयों को भयदायक, नीले कमल के सदृश स्वच्छ तथा तलवार के समान नीला ऐसा श्रीहरि का चरण तुम्हारी रक्षा करे। तीनों जगत् में रत्न के समान श्रेष्ठ श्रीहरि का ऊपर उठाया हुआ चरण आकाशरूप सागर में वैदूर्य मणि के समान चमकने लगा, वही श्रीहरि का चरण तुम्हारी रक्षा करे।

अब मैं इस प्रकार सज्जनों को सूचित करना चाहता हूँ......ऐं! यह क्या? मैं सूचित करने में लगा हुआ था कि शब्द-सदृश यह कुछ सुनाई देता है। अच्छा देखता हूँ।

(नैपथ्य में) हे पिता जी, यह कौन हैं ?[1] आदि-आदि

इस प्रकार का आरम्भ एकांकी की साम्य प्राप्ति में जो उसका उद्देश्य है बाधक है क्योंकि पाठक अथवा दर्शक का मन तुरंत घटना और पात्रों द्वारा संघटित वर्ण्य विषय से हटकर एक बाह्य विषय पर लग जाता है। संस्कृत के ऐसे एकांकीयों में नाम के लिये एक अंक अवश्य है वरन् विषय की गठन और प्रभाव साम्य की इकाई इसमें कहाँ? कला की दृष्टि से यह सफल एकांकी नहीं हैं। इसके विपरीत एक आधुनिक एकांकी से उदाहरण लेते हैं जिसके आरम्भ में ही विषय का थोड़े से शब्दों में प्रतिपादन किया जाता है और कथानक तेजी से बढ़ता चलता है। इसमें इधर-उधर की बातों के लिए गुंजाइश नहीं। उदाहरण के लिये—

प्रथम दृश्य

[रात के क़रीब नौ बजे होंगे। डिप्टी साहब दौरे से लौटे हैं। कपड़े

---

१ 'छह एकांकी नाटक' में श्रीरामचन्द्र श्रीवास्तव 'चन्द्र' के अनुवाद से।

बदलकर अपनी स्टडी में बैठे हैं। कमरा अंग्रेजी ढंग पर सजा हुआ है। शर्माजी अभी-अभी कमरे में आए हैं। देखने से उम्र कोई तीस साल की मालूम होती है। रंग गेहुँआ, शरीर दोहरा और गठन से खूब कसरती और खिलाड़ी मालूम होते हैं। तो भी उनके मुर्दनी छाये हुए चेहरे और मंथरगति से यह स्पष्ट है कि या तो ये बहुत थके हुए हैं या कोई मानसिक वेदना से इनका यही हाल रहता है।]........

शर्माजी—मनोहर !

[मनोहर कचहरिये चपरासियों की वर्दी में है]

मनोहर—[निःशब्द रूप से नंगे पाँव कमरे में घुसते हुए] हुज़ूर।[1]

दोनों के प्रारंभ एक दूसरे से कितने विभिन्न हैं? संस्कृत में ऐसे व्यापक नाटकीय संकेत कहाँ थे? संस्कृत एकांकी के मुकाबले में आधुनिक एकांकी का आकार और स्वरूप अधिक सुगठित होता है। इसकी रफ़्तार भी अधिक तेज है। हाँ, संस्कृत-साहित्य में एक अंक और कई दृश्यवाले तथा एक ही दृश्यवाले दोनों प्रकार के एकांकी का प्रचलन था। प्राचीन काल में संस्कृत में भी एकांकी नाटक अपनी नवीनतम दोनों किस्मों (एकांकी और झाँकी) के साथ मौजूद थे।[2]

भाण में धूर्त पात्र और अनेक अवस्थाएँ होती हैं। अपनी और औरों की अनुभूत बातों को आकाश के प्रति विट् प्रकाशित करता है। कथानक इसका कल्पित होता है। विट् बड़ा चतुर और विद्वान होता है।

व्यायोग का कथानक ऐतिहासिक होता है। स्त्री पात्र कम होते हैं। गर्भ और विमर्श सन्धियाँ इसमें नहीं होतीं। अंक एक ही होता है। युद्ध यहाँ स्त्री के कारण नहीं होता। इसका नायक प्रख्यात, धीरोदात्त अथवा

---

१ गणेशप्रसाद द्विवेदी के 'शर्माजी' से।

२ उपेन्द्रनाथ अश्क : 'क्या एकांकी का साहित्य में कोई स्थान नहीं?

दिव्य पुरुष होता है। हास्य-शृंगार और शांत की इसमें प्रधानता नहीं होती। इसका कथावस्तु युद्धीय होता है।

अंक का कथावस्तु ऐतिहासिक होता है। स्थायी रस करुण, पात्र साधारण पुरुष और स्त्री होते हैं। स्त्रियों का विलाप इसमें अधिक रहता है। संधि, वृत्ति और लास्यांगों की व्यवस्था इसमें भाण के समान होती है। अंक वीथी और भाण एक-से ही हैं, इनमें विशेष अंतर नहीं। अंक में पात्रों द्वारा कथावस्तु का प्रतिपादन लेखक करता है, वीथी में दो पात्रों के प्रेमालाप और हँसी का वर्णन होता है और भाण में केवल एक ही पात्र होता है।

वीथी एकांकी का नायक कल्पित होता है। आकाशवाणी द्वारा उक्ति प्रत्युक्ति होती है। अर्थ प्रकृतियों के साथ-साथ मुख और निर्वहण संधियाँ होती हैं। शृंगार-रस प्रधान होता है।

प्रहसन एकांकी भी लिखे जाते थे। इन्हें संकीर्ण प्रहसन भी कहते हैं। कथानक कल्पित होता है। पात्रगण निन्दनीय और निम्नकोटि के होते हैं। हास्य-रस प्रधान रहता है। प्रवेशक होते हैं। न आरभटी और न विष्कम्भक।

गोष्ठी में उदात्त वचनों का अभाव, कैशिकी वृत्ति और नौ या दस प्राकृत पुरुष होते हैं। कथानक शृंगार-प्रधान होता है। पाँच-छः स्त्री पात्र भी होते हैं।

नाट्यरासक में लय और ताल का आधिक्य होता है। नायक उदात्त और उपनायक पीठमर्द होता है। मुख और निर्वहण संधि तथा दस लास्यांग युक्त होता है। इसे गीतिनाट्य भी कहते हैं।

उल्लास्य में कथा दिव्य और हास्य में शृंगार और करुण-रस का समावेश होता है।

काव्य नाटक एक अंक का ही होता है। हास्य-रस इसका गुण है।

आरभटी वृत्ति से रहित है। नायक और नायिका दोनों उदात्त होते हैं। मुख, प्रतिमुख एवं निर्वहण-सन्धि इसमें होती हैं।

प्रेखण नायिकाविहीन है। सूत्रधार, विष्कम्भक आदि का भी अभाव है। गर्भ और विमर्ष सन्धियाँ नहीं होतीं। नांदी और प्रस्तावना नेपथ्य में पढ़ी जाती है।

पाँच पात्रवाले, मुख और निर्वहण संधियों से युक्त एकांकी को रासक कहते हैं। इसका नांदी श्लिष्ट, नायिका प्रसिद्ध और नायक मूर्ख होता है। सूत्रधार का अभाव रहता है। इसमें भारती और कौशिकी वृत्तियाँ रहती हैं। वीथ्यंगों और नाट्य-कलाओं से युक्त रहता है। इसमें भाव उदात्त रहते हैं।

श्रीगदित एकांकी की कथा प्रसिद्ध, नायक उदात्त, नायिका प्रसिद्ध होती है। लक्ष्मी इसमें गाती है।

विलासिका शृंगार लय-युक्त होती है। विदूषक रहता है। गर्भ और विमर्श-सन्धियों का अभाव रहता है। नायक हीन गुणवाला होता है।

हल्लीश में आठ-दस स्त्रियाँ, एक पुरुष रहता है। नायक उदात्त वचन बोलनेवाला होता है।

इस प्रकार संस्कृत-साहित्य में कुल मिलाकर एकांकी की अठारह किस्में थीं। मुमकिन है कुछ और भी हों। संस्कृत-साहित्य की विविधता तथा सम्पन्नता का इससे अधिक प्रामाणिक दृष्टान्त और कहाँ मिलेगा। संस्कृत एकांकी नाटक में अर्थ-प्रकृतियों, कार्य-अवस्थाओं और सन्धियों का प्रयोग इतना अधिक नहीं होता जितना बड़े नाटकों में। कारण स्पष्ट है, एकांकी की कथावस्तु छोटी होती है, जीवन की व्यापकता की ओर लेखक का ध्यान ज्यादा नहीं रहता। गर्भ और विमर्श-सन्धियों का प्रायः अभाव रहता है। फिर भी इतना अवश्य है कि संस्कृत के एकांकी की रचना वृत्ति, सन्धियों, नायक, नायिका, कथा आदि के भेदों और नियमों को ध्यान में रखकर की जाती थी। सन्धियों, कथानकों और नायक-नायिकाओं का बंधन रहता था।

स्वगत, आकाशभाषित, विष्कम्भक, सन्धियों की आवश्यकता रहती थी। संस्कृत एकांकी कृत्रिम होता था, उसमें जीवन की अनुभूतियाँ बंधनों से जकड़ी रहती थीं।

संस्कृत और आधुनिक एकांकी नाटक में निम्नलिखित भेद हैं :—

(१) जैसा ऊपर कहा है संस्कृत एकांकी जटिल नियमों से बद्ध थे। आधुनिक एकांकी बन्धन-मुक्त है।

(२) नाटकीय संकेत बिल्कुल छोटे और नहीं के बराबर होते थे। शायद इनकी आवश्यकता उस समय प्रतीत नहीं होती थी। आधुनिक नाटक में Stage Directions अत्यन्त लम्बे और व्यापक होते हैं।

(३) नान्दी, मंगलाचरण, प्रस्तावना, स्वगत आदि की आवश्यकता पड़ती थी। आधुनिक एकांकी में इसका बिल्कुल अभाव है। यह कृत्रिम समझे जाते हैं।

(४) प्राचीन संस्कृत एकांकी के समान आधुनिक एकांकी नाटक में सन्धियों, नायक-नायिका एवं कथानकों के बन्धन नहीं रहे। यह इनसे बिल्कुल मुक्त है।

(५) आधुनिक एकांकी से एकान्त-कथन और स्वगत का भी बहिष्कार कर दिया गया है।

(६) आधुनिक एकांकी की जैसे दर्शनीयता spectacle से शत्रुता हो। रंगमंच की सजावट इसके लिए अपेक्षित नहीं। कोई-कोई तो मैदान में, खुले में सफलता-पूर्वक खेले जाते हैं। ऐसे नाटकों को अँग्रेजी में Open Air Plays कहते हैं। फिर भी इसके संकेत इतने लम्बे और व्यापक होते हैं कि सजावट का अभाव दर्शक को अखरता नहीं। इसके द्वारा अभिनय सजीव हो उठता है।

(७) प्राचीन एकांकी अर्वाचीन की अपेक्षा जीवन से अलग थे। अर्वाचीन एकांकी का कथानक Realistic होते हुए भी, जीवन का लांघन कदापि नहीं करता। सूत्रधार के कथन द्वारा नाटक आरम्भ करने की प्रथा

और बात-बात में श्लोक उच्चारण करने की प्रणाली आदि दोष अब नहीं रहे हैं। जीवन की, परिस्थिति की, एक मात्र झाँकी ही अब तो इसमें रहती है।

(८) हाँ, संस्कृत में भी आजकल की तरह दोनों प्रकार के एकांकी लिखे जाते थे। कई दृश्यवाले और एक दृश्यवाले, दोनों ही।

हिन्दी-साहित्य में एकांकी का जन्म अँग्रेज़ी साहित्य के सीधे प्रभाव से हुआ। बँगला द्वारा अँग्रेजी नाटकों का विशेषकर नाट्य-सम्राट् शेक्सपियर का प्रभाव भारतेन्दु काल और उसके बाद वाले नाटककारों में हमें विशेष रूप से मिलता है। भारतेन्दु अँग्रेजी पढ़े थे। उन्होंने The Merchant of Venice का हिन्दी-अनुवाद 'दुर्लभबन्धु' के नाम से किया था, परन्तु उन्हें स्फूर्ति सीधे अँग्रेजी साहित्य से न मिलकर बँगला साहित्य से मिली थी, जहाँ अँग्रेजी साहित्य का प्रभाव पूर्णरूप से उन्नीसवीं शताब्दी में पड़ चुका था। जयशंकर 'प्रसाद' पर भी डी० एल० राय का प्रभाव पड़ा। *अँग्रेजी का प्रभाव सीधा न पड़कर टेढ़ा पड़ा था। बंगला द्वारा साथ-साथ* संस्कृत के भी लेखकों का अध्ययन होने के कारण संस्कृत नाट्य-प्रणाली का भी प्रभाव था। परन्तु पिछले खेवे के नाटककारों मे सस्कृत से सम्बन्ध-विच्छेद और एक नई नाट्य-प्रणाली को ढूँढ़ निकालने की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। इसकी पुष्टि हुई बँगला के अध्ययन से। अब तो बँगला साहित्य के प्रभाव के दिन बीत चुके। भारतीय विद्यालयों में अँग्रेजी शिक्षा का माध्यम होने के कारण और हिन्दी के अध्यापकों और लेखकों का अँग्रेजी साहित्य का ज्ञान होने के कारण पाश्चात्य नाट्य-शैली का अनुसरण बँगला द्वारा न होकर सीधा हो रहा है। जयशंकर 'प्रसाद' जी तक, मेरी धारणा है, हिन्दी-नाट्य-साहित्य पर बँगला द्वारा आया हुआ शेक्सपियर का प्रभाव था। यद्यपि साथ-साथ गोविन्ददास सेठ जैसे हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ट नाटककारों की रचना में पश्चिम का सीधा प्रभाव भी मिलता है। पिछले दस पन्द्रह वर्षों में हिन्दी-साहित्य में लिखे गये नाटकों पर अँग्रेजी साहित्य का सीधा प्रभाव मिलता है। लक्ष्मीनारायण मिश्र, उपेन्द्रनाथ

'अश्क', भुवनेश्वरप्रसाद वर्मा, रामकुमार वर्मा आदि इसके उदाहरण हैं। एकांकी का जन्म भी अँग्रेजों के इस सीधे निकटतम सम्पर्क का ही फल-स्वरूप है। एकांकी नाटक लिखने की जो स्फूर्ति हमें हाल ही में मिली है, उसका कारण प्राचीन संस्कृत एकांकी नाटक न हो कर पश्चिम के ही एकांकी नाटक हैं।[1] वर्तमान हिन्दी में एकांकी का उदय नितान्त आधुनिक एवं पाश्चात्य कलानुमोदित है।[2] अँग्रेजी के प्रभाव से हिन्दी-साहित्य में एकांकी नाटक की एक नई धारा फूट रही है।[3] एकांकी भारत की दूसरी भाषाओं में भी लिखे जा रहे हैं। वहाँ भी इसका सृजन पश्चिम के ही कारण हुआ। बँगला में हाल में रवीन्द्रनाथ ने बहुत-से एकांकी लिखे 'चिन्ता', 'चाण्डालिका', 'ताशेर देश'[4] आदि। उर्दू में सैयद इमतियाजअली ताज, हकीम अहमदशुजा आदि ने अँग्रेजी से एकांकी के अनुवाद ही प्रकाशित कराये। अनुवाद का क्रम जारी है। Harold Brighouse के The Prince who was a Piper एवं J. A. Ferguson के Campbell of Kilmohr के अनुवाद उर्दू मासिक-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। प्रख्यात उर्दू लेखक नूर इलाही मुहम्मद उम्र ने मौलिक एकांकी प्रहसन लिखे हैं, उनमें पश्चिम की गहरी छाप है।[5] हिन्दी के एकांकी का अँग्रेजी के एकांकी की अपेक्षा शैशव काल है।

---

१ उपेन्द्रनाथ अश्क : 'क्या एकांकी का साहित्य में कोई स्थान नहीं' 'हंस' मई १९३८ पृष्ठ ८६०।

२ रामचन्द्र श्रीवास्तव : 'छः एकांकी नाटक' भूमिका पृष्ठ २२।

३ प्रकाशचन्द्र गुप्त 'एकांकी नाटक' 'हंस' मई ३८ पृष्ठ ७२५।

४ कृपलानी द्वारा इसका अँग्रेजी अनुवाद 'The Kingdom of Cards' से 'माडर्न रिव्यु' में प्रकाशित हुआ था। हिन्दी में भी कोई सज्जन क्या प्रयत्न करेंगे ?

५ उपेन्द्रनाथ अश्क 'क्या एकांकी का साहित्य में कोई स्थान नहीं।'

एकांकी का जन्म हुए पश्चिम साहित्य में ज़्यादा दिन नहीं हुए हैं, फिर भी उसका लघु इतिहास अभी से गौरवपूर्ण है। वहाँ एकांकी चिर-स्थायी साहित्य की सामग्री है। हिन्दी में एकांकी उन्नति की ओर अग्रसर हो चुका है। और थोड़े से समय में उसने काफी उन्नति की है। पश्चिम में एकांकी का जन्म रंगमंच की नई-नई आवश्यकताओं की पूर्ति के हेतु हुआ था। छोटे थियेटर Little Theatre और Repertory Theatre को ही उसका जन्मदाता वहाँ समझिये। हिन्दी का कोई स्वतन्त्र रंगमंच नहीं। एकांकी का जन्म पश्चिम के अनुकरण मात्र ही है। व्यापक Stage Directions और कोष्ठक इसी के कारण इनमें रहते हैं। एकांकी का उत्थान अँग्रेज़ी साहित्य में जन-साधारण के नाट्य-कला के प्रति उत्साह का द्योतक है और उसका जन्म स्वाभाविक ही था। हिन्दी-साहित्य में यह कृत्रिम उपज है। इससे यह न समझना चाहिये कि इस कारण से ही इसका बहिष्कार कर दिया जाय। शायद पश्चिम से भिन्न यहाँ रंग-मंच की सृष्टि इन छोटे नाटकों द्वारा ही हो। पश्चिम में थियेटर ने एकांकी जना, हिन्दी में एकांकी शायद थियेटर, रंगमंच बनाने में सहायता करे। अँग्रेज़ी में एकांकी पुस्तक बद्ध हो गए हैं। अनेक मालायें (Series) निकल चुकी है। वहाँ के अग्रगण्य और प्रतिष्ठ नाटककारों ने Shaw, Barrie, Galsworthy, Yeats, Synge, Maeterlinck आदि ने एकांकी लिखे और वे बहुत अच्छे बने। पश्चिम में एकांकी के अध्ययन के साधन उपलब्ध हैं। हिन्दी में आलोचक को अनेकानेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है क्योंकि एकांकी ज़्यादातर पुस्तक-रूप में न होकर पत्रिकाओं में इधर उधर बिखरे पड़े हैं। मैं अपनी शीघ्र प्रकाशित होनेवाली पुस्तक में हिन्दी में एकांकी की ब्यौरेवार सूची दूँगा। चूँकि हिन्दी में एकांकी का अभी बाल्यकाल है, कतिपय भ्रान्तियाँ फैली हुई हैं जिनका निवारण मैंने अन्यत्र किया है।[1] अँग्रेजी में भी एकांकी के प्रारम्भिक काल में

---

[1] देखिये 'वीणा' में प्रकाशित मेरा लेख, मार्च सन् ४१।

कुछ ऐसी ही लोगों की धारणा हो गई थी। वरन् अब वातावरण साफ है। एकांकी का स्थान वहाँ निर्धारित हो चुका है। हिन्दी में एकांकी के सम्मुख बहुत-सी कठिनाइयाँ हैं जिनका उसे सामना करना है।

यहाँ हिन्दी-साहित्य में एकांकी की उपादेयता के विषय में एक शब्द कहना अनुचित न होगा। एकांकी अभी हाल में ही लिखे जाने लगे हैं। हिन्दी-साहित्य में अँग्रेजों के आने से पहले नाटक न थे। अब भी अधिकतर मौलिक नाटकों का अभाव है। इसके दो कारण हैं—एक तो हिन्दी का अपना स्वतन्त्र रंगमंच नहीं है, और दूसरे पर्दा आदि सामाजिक कुरीतियों के कारण नाटककार को नाटक लिखने की पूर्ण सामग्री नहीं मिलती। स्त्रियों का तो उसे विशेष ज्ञान होता ही नहीं क्योंकि भारतीय समाज में अभी तक स्त्री-पुरुष का स्वच्छन्द आदान-प्रदान स्वीकृत नहीं है। एकांकी का भविष्य हमें इस कारण और भी उज्ज्वल प्रतीत होता है कि यह इन दोनों कमियों को पूरा करेगा। नाटक[1] की भाँति इसका विषय सम्पूर्ण जीवन का चित्रण न होने के कारण छोटे-छोटे दृश्यों के लिये इसे भारतीय समाज में खूब सामग्री मिलेगी क्योंकि इसका ध्येय जीवन की एक झाँकी तो है ही। दूसरे एकांकी को स्टेज पर लाने के लिये अधिक व्यय की आवश्यकता नहीं और थोड़े ही खर्च से यह सफलता-पूर्वक खेले जा सकते हैं। एक आलोचक का कथन है—"एकांकीकार सामग्री की शिकायत नहीं करेगा, क्योंकि मनुष्य-जीवन के कुछ क्षण का ही प्रतिपादन उसकी टेकनीक है। प्रत्येक मनुष्य के जीवन में कुछ प्रभावोत्पादक और मनोरंजक क्षण होते हैं। ऐसी झाँकियों का अभाव भारतीय जीवन में नहीं है। एकांकीकार का ध्येय इनमें से ही किसी एक का सुन्दर चित्रण है।"[2]

---

१ नाटक से तात्पर्य बड़े नाटक से है।

२ Vide my article 'One-Act Play and Hindi Literature'. 'Twentieth Century' April & May 1938. "The One Act Playwright would not

हिन्दी-साहित्य में दो प्रकार के एकांकी मिलते हैं। प्रथम एकांकी जो संस्कृत-साहित्य के प्राचीन एकांकी की टेकनीक पर लिखे गये हैं। ऐसे एकांकी बहुत कम हैं। सन् १९३० से पहले लिखे गये दो-चार एकांकी इसी तरह के थे। दूसरे पश्चिम नाट्य-प्रणाली द्वारा लिखे गये एकांकी। इनकी संख्या बहुत है। भारतेन्दु का असंपूर्ण 'प्रेम-योगिनी', 'प्रसाद'जी का 'एक घूँट', उदयशङ्कर भट्ट का गीति एकांकी, 'विश्वामित्र' आदि प्रथम श्रेणी के अधिकतर संस्कृत एकांकी की प्रणाली पर गढ़े हुए एकांकी हैं। रामकुमार वर्मा, भुवनेश्वरप्रसाद वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, लक्ष्मीप्रसाद द्विवेदी आदि के एकांकी पश्चिम के-से एकांकी हैं। संस्कृत से प्रेरणा न लेकर लेखक पाश्चात्य साहित्य की ओर झुक रहे हैं। यह अनुचित है। पं० अमरनाथ झा ने इस विषय में एक बार लिखा था—

'The One Act Play has not been written to any considerable extent. These wants can be satisfied without difficulty. But in any endeavour to enrich the Vernaculars, it will be a fatal mistake to break away from cherished traditions. It is a foolish idea that Hindi and Bengali can do without Sanskrit or that Urdu can live without nourishment from both Hindi and Persian.

---

complain of material since its very technique asks him to seize only certain moments of a man's life and every man passes through a few exalted moments, peeps and such moments would be enough and to spare in Indian life, the only task left for him, then, is to select and winnow out the grain from the chaff etc. etc."

The inheritance of these languages is vast and rich; the legacy of the past is a noble one; and in our fondness for what is new and attraction for what is foreign we must guard against complete denationalisation. By all means let us take what we like from Russian, German and Italian but let us take only what we can assimilate—Othervise we shall become a nation of prigs, creatures that are overfed for their size.[१]

भारतेन्दु हिन्दी-साहित्य के सर्वप्रथम एकांकीकार थे। उन्होंने अनेक छोटे-छोटे नाटकों की रचना की। उनके छोटे नाटक 'अङ्क' के स्थान पर 'दृश्य' लिख देने-मात्र से एकांकी नाटक की कोटि में आ जाते हैं[२]। उनका 'प्रेम-योगिनी' असम्पूर्ण रचना है। केवल जीवन की एक झाँकी-मात्र है। जीवन का विपद चित्रण इसमें नहीं है। उनका 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' (वेदों के नाम पर की गई हिंसा हिंसा नहीं कहलाती) भी संक्षिप्त रचना है। वेदों के नाम पर किए जानेवाले अनाचारों की इसमें पोल खोली गई है। अङ्क लिखे गए हैं। पर अङ्क के स्थान पर दृश्य कर देने से यह सचमुच कई दृश्योंवाला एकांकी हो जाता है। यह एक प्रहसन है। नान्दी, सूत्रधार और नटी आते हैं, संवाद कहीं-कहीं पद्यात्मक हैं, स्वगत, नेपथ्य में, आदि का प्रयोग किया गया है। श्लोक बीच-बीच में पढ़ने की परिपाटी का भी बहिष्कार नहीं किया गया है। नाटकीय संकेत बहुत छोटे हैं और नहीं के बराबर। अपने छोटे नाटकों में और कई बड़े नाटकों में भी भारतेन्दुजी ने संस्कृत नाट्य-कला के ही सिद्धान्त ग्रहण किए हैं।

१ Jha : A Hundred years of Indian Literature 'Twentieth Century' April 1937.

२ श्रीरामचन्द्र श्रीवास्तव 'छः एकांकी नाटक' पृष्ठ ४६।

बद्रीनाथ भट्टजी ने भी प्रहसन लिखे। बड़े नाटकों के अलावा। परन्तु साहित्यिक दृष्टि से, उनका अधिक मूल्य नहीं। 'चुंगी की उम्मेदवारी' उनकी ऐसी ही एक रचना है। इसे एकांकी न कहकर छोटी रचना कहना अधिक उपयुक्त होगा, क्योंकि अभी तक पश्चिम की शैली पर एकांकी लिखने की प्रथा हिन्दी में नहीं चली थी।

जयशंकर 'प्रसाद' हिन्दी-साहित्य के साहित्यिक नाटककार थे। उन्होंने ऐतिहासिक नाटक लिखे। भारतेन्दु के बाद प्राचीन संस्कृत की शैली पर एकांकी लिखनेवाले आप हैं। उन्होंने कई एकांकी लिखे, प्रसिद्ध 'सज्जन' और 'एक घूँट' हैं। 'सज्जन' बीस पृष्ठों का एकांकी रूपक है। प्रो० रामकृष्ण शुक्ल ने 'प्रसाद की नाटय-कला' में उसकी आलोचना करते हुए लिखा है—"इसकी रचना संस्कृत तथा हिन्दी की पुरानी शैली की है। आरम्भ में 'नान्दी' दिया हुआ है। उसके बाद सूत्रधार आता है और अपनी स्त्री से नाट्याभिनय का प्रस्ताव करता है, बातचीत में चातुरी से, सज्जनता का संकेत हो जाने पर स्त्री को 'सज्जन' का स्मरण होता है और उसी का खेला जाना निश्चित होता है। फिर सूत्रधार अपनी पत्नी से कुछ गाने की प्रार्थना करता है।······'सज्जन' के कथोपकथन में इधर-उधर पद्य का भी सम्मिश्रण है—जैसे संस्कृत नाटकों में हुआ करता था······ प्रकृति-वर्णन में प्राचीन नाट्य की भाँति किसी प्राकृतिक दृश्य से आचार अथवा नीति का कोई तत्त्व-निरूपण करने की प्रायः चेष्टा की गई है[१]।" 'एक घूँट' सं० १९८६ में प्रकाशित हुआ। इसका कथानक भी ऐतिहासिक है। यह सफल एकांकी नाटक है[२]। जीवन की विनोदपूर्ण और काव्यमय झाँकी हमें यहाँ मिलती है। 'प्रसाद'जी के एकांकी संस्कृत की परिपाटी से ही अधिक प्रभावित रहे। 'प्रसाद'जी पथ-प्रदर्शक के रूप में हिन्दी-भाषा-भाषियों

---

१ पृष्ठ २३–२४।

२ प्रकाशचन्द्र गुप्त : 'एकांकी नाटक' हंस मई ३८।

कुछ इसी प्रकार के श्रीधर्मप्रकाश आनन्द के भी एकांकी हैं। आपकी लेखनी गरीबी में भी नाट्य-कला की मनोरंजक सामग्री ढूँढ़ने में व्यस्त रहती है। आपका अध्ययन काफी गम्भीर है। उनके दो एकांकी अभी तक देखने में आए। 'दीन'[1] और 'सोशलिस्ट'[2]। गरीब श्रमिकों की दयनीय और जर्जर अवस्था 'दीन' में अङ्कित की गई है। कथावस्तु संभाषण द्वारा विकसित होती है। पात्रों का चरित्र-चित्रण नाटककार का ध्येय नहीं। निर्धन श्रमिकों का जीवन कितना शोचनीय है, यही संभाषण द्वारा जतलाना लेखक का ध्येय है। 'सोशलिस्ट' अच्छी रचना है। सोशलिस्ट जगदीश की सोशलिस्ट वृत्ति और संसार को एक समझने वाले आदर्श ने अपने से प्रतिकूल वातवरण में पाकर ठेस खाई। उसका जी घुटने लगा। अपने को भूल जाना उसके लिए स्वाभाविक ही था। वह चुपचाप लाहौर जाने के लिए बाहर निकल जाता है। सब चुप नज़रों से देखते रहते हैं। भविष्य में उनसे विशेष आशा है।

भुवनेश्वरप्रसाद जी के एकांकियों का संग्रह 'कारवाँ' हिन्दी-साहित्य के लिए, कथावस्तु और टेकनीक दोनों की दृष्टि से नई चीज़ है। उनमें नवीन उमड़ता हुआ जीवन है। एक नवीन शक्ति और नई स्फूर्ति उनमें है। विद्रोह की आग भी। ऐसे नाटकों का हिन्दी में अभी सूत्रपात ही हुआ है। करीब-करीब सभी उनके एकांकी समस्यात्मक हैं। 'कारवाँ' में उनके "श्यामा : एक वैवाहिक विडम्बना", 'एक साम्यहीन साम्यवादी", "शैतान", "प्रतिमा का विवाह", "रोमांस रोमांच", "लाटरी" छः एकांकी हैं। इसके सिवा दो एकांकी और उन्होंने लिखे हैं। "ऊसर"[3] और "स्ट्राइक"[4]। उन्होंने अँग्रेजी नाट्य-साहित्य, विशेषकर आधुनिक साहित्य का अच्छा अध्ययन

---

१ उदयशङ्कर भट्ट : 'आधुनिक एकांकी नाटक' में संकलित।

२ 'हंस' मई १९३८ में प्रकाशित।

३ 'हंस' जुलाई ३८ में प्रकाशित।

४ ,, मई ३८ ,, ,,

किया है। इब्सन और शा का प्रभाव और उनके नाटकों की छाया यहाँ है। भारतीय साहित्य पर अब शेक्सपियर के प्रभाव के दिन बीत गये। शा और इब्सन का प्रभाव सर्वत्र भारतीय नाट्य-साहित्य पर दृष्टिगोचर होता है।[1] 'कारवाँ' पर पाश्चात्य विचार-धारा और टेकनीक की छाप है। इसमें अवसाद है और असन्तोष भी। सभी समस्यात्मक एकांकी हैं। नाटकीय संकेत लम्बे और व्यापक हैं। भाषा में शाब्दिक शक्ति के अतिरिक्त Picturesquenees का ग्रहण है। थोड़े से में यहाँ जीवन की कड़ी आलोचना है। उनके नाटक उनकी ही समस्यात्मक नाटक की परिभाषा को पूर्णतया चरितार्थ करते हैं। "नाटक में समस्या का लाना उसमें एक प्रखर और उत्तेजित आध्यात्मिक संघर्ष का समावेश करना है। संसार के जिन कलाकारों को इसमें सफलता मिली है वे उँगलियों पर गिने जा सकते हैं,[2] उनका कथन है। 'कारवाँ' के 'प्रवेश' और 'उपसंहार' में शा के नाटकों की भाँति उन्होंने जीवन-सम्बन्धी कुछ रेखा-चित्र दिये हैं जिनमें जीवन की यथार्थ और कड़ी आलोचना उन्होंने की है। उनकी कला और प्रकृति समझने के लिये उनका विशेष मूल्य है। इस प्रकार के विचारात्मक प्रबन्ध हिन्दी में अभी हाल ही में लिखे गये हैं। इनकी विशेष आवश्यकता है। उदाहरण के लिये—"हिन्दी में नाटककारों को केवल एक कला की आवश्यकता है—अपने नाटकों को प्रकाशित करने की।"[3] "यथार्थवाद और आदर्शवाद का अन्तर पाठक के मस्तिष्क में होता है लेखक के नहीं।"[4] "कूड़े-गाड़ी से कुचलकर एक छछूँदर का मर जाना दुःखान्त घटना है पर ट्रेजडी नहीं, स्टेज पर ट्रेजडी के सरल अर्थ हैं

---

१ देखिये Yagnik का 'Indian Theatre'

२ 'कारवाँ' का 'प्रवेश' पृष्ठ ३—४

३ वही। पृष्ठ चार

४ " " चार

किन्हीं विशेष पात्रों की किसी विशेष अभिव्यक्ति में अन्तिम घटना
यहाँ पर D. H. Lawrence की ट्रेजडी की परिभाषा[2] का
कथन पर विशेष प्रभाव पड़ा है। यही नहीं दोनों में केवल विचारस
हो वरन एक दूसरे का अनुवाद मात्र है।

गोविन्ददास सेठजी ने भी दूसरे नाटकों के साथ-साथ एकांकी
लिखे। 'स्पर्धा' और 'सिद्धान्त-स्वातन्त्र्य' उनके एकांकी हैं। 'स्पर्धा'
स्वती और 'सिद्धांत-स्वातन्त्र्य' 'हंस' में प्रकाशित हुए थे। इसके
पुस्तकाकार रूप में भी वे प्रकाशित हुए हैं। उनके एकांकी नाटक
विचारात्मक हैं। हर नाटक में कोई-न-कोई महान् विचार है।[3] उ
नामकरण भी इसी का द्योतक है। 'गोविन्ददासजी इब्सन के अनु
हैं, अन्य नाटककार शेक्सपियर के। हिन्दी क्या, अन्य भारतीय भा
में भी अभी गोविन्ददासजी के 'स्कूल' के नाटक नहीं लिखे गये हैं,
लिखे भी गये हों तो बहुत कम। गोविन्ददासजी के नाटकों का इब्सन,
आदि को पश्चिम के किसी भी सफल नाटककार से सफलता-पूर्वक मि
किया जा सकता है।'[4]

गणेशप्रसाद द्विवेदी भी पश्चिम की शैली पर एकांकी लिखने
सफल नाटककार हैं। 'सोहाग-बिन्दी और अन्य नाटक' उनके एकां
का संग्रह है। इस संग्रह में उनके ६ एकांकी हैं। 'सोहागबिंदी', 'वह
आई थी', 'परदे का अपर पार्श्व', 'शर्माजी', 'दूसरा उपाय ही क्या
'सर्वस्व-समर्पण।' इसके अतिरिक्त उनका 'कामरेड'[5] और देख

---

१ वही पृष्ठ पाँच।

२ देखिये D. H. Lawrence के 'Touch and Go'
भूमिका।

३ रत्नकुमारी देवी गोविन्ददास सेठ, पृष्ठ १४२।

वही ,, ,, १४५।

५ 'हंस' मई ३८ में प्रकाशित।

आया। प्रायः सभी नाटक सामाजिक हैं। उनमें उद्विग्नता और अवसाद के स्थान पर सामाजिक कुरीतियों के प्रति एक हल्का व्यंग है। समाज-सुधारक के रूप में हमारे सम्मुख नाटककार उपस्थित नहीं होता। 'टेकनीक' उनकी पाश्चात्य एकांकी के ढंग की है। एक दृश्यवाले और एक से अधिक दृश्यवाले एकांकी दोनों ही उन्होंने लिखे हैं। 'शर्माजी' में टेलीफोन द्वारा दो पात्रों में कथनोपकथन कराया है जो वास्तविकता की धारणा की पूर्ति के लिये ही किया गया है। Stage-Directions अच्छे बने हैं। उनमें विशदता है। शैली उनकी व्यवहारिक है। यथार्थता के लिये अँग्रेज़ी शब्दों का भी प्रयोग किया गया है, जैसे 'कामरेड' में।

श्रीयुत सज़्ज़ाद ज़हीर ने भी एकांकी नाटक लिखे हैं, जो 'हंस' में प्रकाशित होते रहे हैं। आपका झुकाव राजनीति की ओर अधिक है। आपकी शैली और विचार प्रगतिशील हैं। आपकी पैनी दृष्टि समाज की अटूट व्यवस्था की ओर कड़ी और आलोचनात्मक है। एकांकी अधिक न लिखने के कारण, कोई संग्रह उनकी रचनाओं का देखने में नहीं आया।

उदयशङ्कर भट्ट का हिन्दी-साहित्य के एकांकी नाटककारों में सम्मानीय पद है। इसके अतिरिक्त उन्होंने बड़े मौलिक नाटक लिखे और कविता कर मातृभाषा का भाण्डार भरा है। नाटकों में उनके 'दाहर', 'अम्बा', विक्रमादित्य', 'विश्वामित्र', 'मत्स्यगन्धा', 'सगर-विजय' प्रकाशित हो चुके हैं। इनके नाटक हिन्दी साहित्य में एक नवीन शैली के परिचायक हैं जिसका प्रभाव हमारे यहाँ अवश्य था। दुःखपूर्ण नाटक Tragedy लिखने की प्रथा आपने ही चलाई। 'प्रसादजी' के नाटकों में दुःखवाद खूब देखने को मिलता है, पर इनका तो दृष्टिकोण ही Tragic है। 'दस हज़ार' उनका एकांकी है। जीवन का विशद चित्रण न होकर, यह केवल एक टुकड़ा ही है। जीवन की एक प्रधान भावना का ही इसमें समावेश है। इसमें मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के साथ भट्टजी आन्तरिक द्वन्द्व को सफलता-पूर्वक विकसित करने में सफल हुए हैं। विशाखाराम के हृदय में द्वन्द्व प्रदर्शित

किया है। संघर्ष है पुत्र-प्रेम और सम्पत्ति-प्रेम में। क्षण भर के लिये सम्पत्ति-प्रेम पुत्र-प्रेम पर विजय प्राप्त कर लेता है। धन के लोभ से पुत्र की ममता भूल जाती है। कितना सुन्दर मानसिक चित्रण है। श्रीरामकुमार वर्मा का कथन है—'भट्टजी की लेखनी में मनोभाव सरलता से स्पष्ट होते जाते हैं। पात्रों के अनुरूप भाषा की सृष्टि में तो वे सिद्धहस्त हैं। घटनाओं में कौतूहल चाहे न हो किन्तु स्वाभाविकता के साथ जीवन के चित्रों को स्पष्ट करने में भट्टजी ने विशेष सफलता प्राप्त की है। उनकी दृष्टि व्यक्तिवाद तक ही सीमित नहीं है वरन् वे मनोवैज्ञानिक ढंग से समाज के भयानक हिंसात्मक स्वरूप को अपनी शक्तिशालिनी लेखनी से कोमल बनाकर धुने हुए कपास का निर्मल और भव्य स्वरूप दे देते हैं।[1]

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' हिन्दी-साहित्य के सिद्धहस्त कहानी लेखक, सफल नाटककार और कवि हैं। 'स्वर्ग की झलक' पाश्चात्य नाट्य-शैली का ऋणी है। भाव और शैली दोनों में। उन्होंने एकांकी भी लिखे हैं। अभी तक हमें उनके तीन एकांकी देखने को मिले। 'लक्ष्मी का स्वागत',[2] 'अधिकार का रक्षक'[3] और 'पापी'[4]। आपकी रचनाओं में जीवन के प्रति दर्द भरा विद्रोह है। मानसिक संघर्ष का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण आपके एकांकियों का गुण है। 'पापी' खास तौर पर इसका उदाहरण है। तपेदिक के के बीमार शान्तिलाल की पत्नी छाया के मस्तिष्क के द्वन्द्व से एकांकी प्रारम्भ होता है। यह संघर्ष चढ़ता ही जाता है और ईर्ष्या की प्रज्वलित अग्नि अपनी लपटों से छाया को भस्मीभूत कर शान्तिलाल की ओर वेग से दौड़ती है। मनुष्य पापी है, संगदिल है, उसका कोई विश्वास नहीं, स्त्री देवी है, मानवी भी—यही इसका कथानक है। स्त्री की सात्त्विक वृत्ति की

१ भट्ट : 'आधुनिक एकांकी नाटक' में रामकुमार वर्मा की आलोचना पृष्ठ १८२।

२ हंस मई ३८।

३ सरस्वती।

४ विशाल-भारत जून ३७।

पुरुष की शारीरिक भावनाओं पर विजय है। एकांकी सफल है। इसमें घटना का प्राधान्य न होकर, मनोवैज्ञानिक चित्रण ही है।

भगवतीचरण वर्मा हिन्दी में कहानी-लेखक की हैसियत से प्रसिद्ध हैं। परन्तु उनकी कहानियाँ पढ़कर धारणा हुए बिना नहीं रहती कि उनमें नाट्य-प्रतिभा यथेष्ट रूप से विद्यमान है। वे अच्छे नाटककार हो सकते हैं। अभी तक उन्होंने ज्यादा एकांकी नाटक नहीं लिखे हैं। जो एकाध लिखे हैं अच्छे हैं। 'सबसे बड़ा आदमी' और 'मैं—और केवल मैं' उनके सफल एकांकी हैं। 'सबसे बड़ा आदमी' Dramatic Suspense का सुन्दर उदाहरण है। दोनों में मानव-जीवन की व्याख्या है। यथार्थता की ओर लेखक का झुकाव है।

हिन्दी-साहित्य में एकांकी नाटक के विवरण में हंस के एकांकी-नाटक-अंक पर दृष्टिपात किए बिना लेख अधूरा रह जाने की सम्भावना है। 'हंस' प्रगतिशील मासिक पत्रिका है। नई-नई प्रणालियों का सूत्रपात हिन्दी में 'विशाल भारत' और 'हंस' द्वारा ही होता है। 'एकांकी नाटक-अंक' निकालकर सम्पादक महोदय ने हिन्दी में एकांकी की ओर लेखकों और पाठकों का ध्यान बँटवाकर उपकार किया है। इससे एकांकी को स्फूर्ति अवश्य मिली है। एकांकी कहानी के समान हिन्दी की सर्वप्रिय रचना होने जा रहा है। उसके प्रसार में 'एकांकी-अंक' का विशेष हाथ है। सबसे पहले हंस में ही अच्छे-अच्छे एकांकी प्रकाशित हुए। शायद अधिक सामग्री एकांकी नाटक पर सबसे पहले 'हंस' में ही मिलेगी। सम्पादक को ऐसे Pioneer work में कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होगा, हम अनुमान नहीं कर सकते। एकांकी पर आलोचनात्मक निबन्ध भी पहले पहल 'हंस' में ही प्रकाशित हुए। इसके अतिरिक्त संसार के मुख्यातिमुख्य साहित्य की रचनाओं के अनुवाद भी प्रकाशित किए गए हैं 'हंस' में। वशेषकर अँग्रेजी, बँगला, मराठी, उर्दू, गुजराती, कन्नड़, आदि से। इससे भी एकांकी लिखने में प्रोत्साहन मिला। हिन्दी में अब तक यत्र-तत्र प्रकाशित एकांकियों के एक

विदेशीय भाषाओं से एकांकी के अनुवाद भी हुए। अनुवाद स्वाभाविक और आवश्यक भी था। अनुवाद में दो धाराएँ दृष्टिगोचर होती हैं। एक तो अक्षरशः अनुवाद की और दूसरी स्वच्छन्द अनुवाद की—Translation और Adaptation दोनों की। अनुवाद अधिकतर प्रान्तीय भाषाओं से ही हुए हैं।

एकांकियों के संग्रह भी निकले हैं। इनमें सरस्वती प्रेस बनारस का "६ एकांकी' अग्रगण्य हैं। उदयशंकर भट्ट का 'आधुनिक एकांकी नाटक' और रामचन्द्र श्रीवास्तव 'चन्द्र' का '६ एकांकी नाटक' उल्लेखनीय हैं। एकांकी पर पत्र-पत्रिकाओं में आलोचनात्मक लेख भी निकले हैं। इलाहाबाद यूनीवर्सिटी ने सर्वोत्तम एकांकी पर पारितोषिक अथवा पदक प्रदान करने की जो गत वर्ष योजना की थी वह प्रशंसनीय है।

एकांकी प्रतिष्ठित साहित्य का अंग बन गया है। विद्यार्थियों और युवा टोली में इसकी भरपूर माँग है। इसका इतिहास हिन्दी में गत दस वर्षों का है। फिर भी इसने सन्तोषजनक उन्नति की है। इसकी अनेक क़िस्में देखने को मिलती हैं। उनमें से मुख्य ये हैं : ऐतिहासिक, काल्पनिक, समस्यात्मक, सामाजिक, गीति-नाट्य, अनूदित, प्रहसन आदि। टेकनिक की दृष्टि से कई दृश्यवाले और केवल एक ही दृश्यवाले दोनों प्रकार के एकांकी दृष्टिगोचर होते हैं। हिन्दी में संस्कृत-साहित्य की प्रणाली और अँगरेज़ी साहित्य की दोनों पर ही एकांकी लिखे गये।

एकांकी का भविष्य उज्ज्वल है।

साहित्य में ऐतिहासिक नाटक के प्रवर्तक हैं और उनकी नाट्य-शैली पर भारतेन्दु का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। 'प्रसाद' संस्कृत के अच्छे ज्ञाता होने के साथ ही भारतीय संस्कृति के हिमायती भी थे। उनका देश-प्रेम भारतेन्दु के समान चाहे अधिक उनकी रचनाओं में प्रस्फुटित नहीं हुआ हो फिर भी उनकी कला में प्राचीन और नवीन का सुन्दर सम्मिलन देखने को मिलता है। 'प्रसाद' जी अपनी पुरातन संस्कृति तथा आचार-विचार, रीति-रिवाज, गतिविधि का पूरा ध्यान रखते हुए भी पुरानी लकीर के फ़कीर नहीं थे। उनकी कृतियों में उनके स्वतंत्र मार्ग खोज निकालने का पूर्ण प्रयास है और भारतेन्दु की ही परिपाटी को बहुत कुछ उन्होंने निबाहा। हमारा उद्देश्य सिर्फ नाटकीय-संकेत की ओर दृष्टिपात करना है और इस विषय में यह कहना न्यायसंगत ही होगा कि इस दृष्टि से भी 'प्रसाद' पिछले काल के ही पोषक हैं। उनके नाटकीय संकेत भारतेन्दु से, कहा जा सकता है, अधिक व्यापक बन पड़े हैं। उनमें नाटककार का अपना व्यक्तित्व भी झलकता है। 'प्रसाद' जी मननशील व्यक्ति थे और यह भी इसका ही सर्वोत्तम उदाहरण है। परन्तु उनके समकालीन कुछ हिन्दी-नाटककारों ने इस प्रवृत्ति की ओर विशेष ध्यान दिया और इसका व्यापक प्रयोग हिंदी-नाट्य-साहित्य के विकसित होने का द्योतक है। कुछ समालोचकगण इसको अनुकरण-मात्र ही कहें और बात है भी सच्ची। परन्तु केवल बाह्य वेष-भूषा ही पाश्चात्य साहित्य से ली गई है। बाकी सम्पूर्ण वातावरण अपना ही है। इसका अभी सूत्रपात ही हुआ है, इस कारण शायद हेय प्रतीत होते हों परन्तु क्या यह सम्भव नहीं कि अपनी प्रतिभा का पुट देकर कोई सफल नाटककार उसको भविष्य में अधिक परिष्कृत नहीं कर सकेगा? मुख्यतया हिंदी-साहित्य में इस नवीन प्रगति के प्रवर्तक भुवनेश्वरप्रसाद, लक्ष्मीनारायण मिश्र और गोविन्दराम सेठ हैं। बँगला साहित्य द्वारा हिंदी-नाट्य-साहित्य से हमारा सीधा सम्बन्ध है, यह उपर्युक्त नाटककारों की रचनाएँ बतलाएँगी। इन तीनों का अँग्रेजी साहित्य का अध्ययन पर्याप्त है। प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था और वह पड़ा भी। उनकी रचनाओं के स्टेज-

अपनी रचना को सरल बनाना है जिससे सभी उसको आसानी से समझ जायें। पाठकों और दर्शकों दोनों का ही विशेष ध्यान वह रखता है। आधुनिक नाटक और विशेषतया हिन्दी नाटक खेले जाने की उतनी ही रचना है जितनी मजे से पढ़ी जाने की थी। कभी-कभी तो नाटककार इनका उपयोग अपने पात्र की भूतकाल की घटनाओं की व्यञ्जना के लिए भी करता है। जैसा Bernard Shaw ने अपने Man and Superman में Roebuck Ramsden के चरित्र के विषय में किया है। नाटकीय संकेत की सर्वप्रियता और उपयोग उन थियेटरों के अध्यक्षों की माँग की पूर्ति का भी फल है जो अभिनय के समय खेल को और नाटककार के उद्देश्य को अच्छी तरह से हृदयंगम करने में विशेष सहायक होती है। प्रस्तावना अथवा exposition तथा अन्य किसी भूमिका द्वारा नाटककार उन सब विषयों और बातों का परिचय देता था जो आजकल इसके द्वारा ही वह देता है। हिंदी-साहित्य में भी यों तो बिल्कुल नहीं कहा जा सकता कि इन्हीं कारणों से ही इसकी उत्पत्ति है, परन्तु विशेष हाथ हमारा पाश्चात्य साहित्य से सम्पर्क और हमारी अनुकरण-प्रवृत्ति ही है। अभी तक तो यही कहा जा सकता है। हिंदी में अभी अपना रंगमंच ही कहाँ है जो इसके कारण इसका सूत्रपात होता। अभी-अभी ही इसका जन्म हुआ है। इसलिए पुरानी लीक की पूर्ति की अभिलाषा के कारण भी इसका जन्म होना यहाँ हम नहीं कह सकते। हाँ, प्रथम और तीसरे कारण इसके विषय में अवश्य लागू हो सकते हैं।

यह पहले बतलाया जा चुका है कि समय और विषय की किफ़ायत-शारी ही एकांकी का ध्येय है। कोई भी एकांकी जीवन की समूची घटनाओं का चित्रण नहीं हो सकता। उसकी गति मन्द होना उसके लिए हानिकारक है। उसका कथा-प्रवाह शीघ्र और उतावला ही होता है। एकांकीकार विषय में से काट-छाँटकर खास-खास घटनाओं को परिष्कृत कर कथोपकथन द्वारा अपने एकांकी में स्थान देता है। उसके पात्रों की संख्या थोड़ी ही होती है।

संकेत बहुत लम्बे और व्यापक बने हैं और उन्हें पढ़कर तुरन्त ही अँग्रेजी के Galsworthy, Bernard Shaw और नार्वे के Ibsen का ध्यान आ जाता है। यह हिंदी के लिए नवीनतम शैली है और इसका प्रयोग हिंदी-साहित्य में खूब हो रहा है।

पाश्चात्य साहित्य में इसका अधिकाधिक अंश में उपयोग कई कारणों से हुआ। उनके प्रयोग ने, यह सर्वसम्मत है, नाटक को सर्वप्रिय बना दिया है। आधुनिक नाटककार को दो प्रकार की पब्लिक का सामना करना पड़ता है। एक तो दर्शकों के लिए जो मनोरंजनार्थ थियेटर में जाते हैं और दूसरे वे जो उपन्यास और कविता के प्रेमी थे, अभिनय और रंगमंच और नाटक से उनका कोई प्रयोजन न था। १६ और २० वीं शताब्दियों में उपन्यास ने पाठकों के हृदय में जगह कर ली थी। वहाँ की यह अति सर्वप्रिय रचना है। शायद ही इसके बराबर किसी दूसरे साहित्यांग की सृष्टि होती है। सैकड़ों और हज़ारों की संख्या में यह प्रतिदिन निकलते हैं। इन्हीं की सर्वप्रियता के कारण नाटक की ओर लोगों का ध्यान कम हो गया। उसी की पूर्ति के लिए और जनता की उपन्यास-साहित्य में अभि-रुचि रोकने के ही लिए अभ्यस्त नाटककारों ने इसका प्रयोग किया। अपने उद्देश्य में वे बहुत कुछ सफल भी हुए क्योंकि इन्हीं लम्बे-लम्बे और व्यापक संकेतों द्वारा नाटक में भी उन्हें औपन्यासिक इतिवृत्तात्मक शैली का मजा-सा आ जाता है। और नाटक-साहित्य में उनका चाव बराबर बना हुआ है। इसके अतिरिक्त आधुनिक नाटककार इसका उपयोग करते हैं इसके प्रचलन की साध को पूरा करने के लिये। एक आलोचक के शब्दों में नाटककार "take recourse to it freely and employ it as a customary measure, as a means of traditions" [स्वच्छन्द प्रयोग करते हैं। और पुरानी पद्धति को कायम रखने के लिये ही इसका इतना प्रचलन है।] आधुनिक नाटककार का उद्देश्य

---

१ मेरी पुस्तक Galsworthy and Loyalties पृष्ठ 68

अपनी रचना को सरल बनाना है जिससे सभी उसको आसानी से समझ जायें। पाठकों और दर्शकों दोनों का ही विशेष ध्यान वह रखता है। आधुनिक नाटक और विशेपतया हिन्दी नाटक खेले जाने की उतनी ही रचना है जितनी मजे से पढ़ी जाने की थी। कभी-कभी तो नाटककार इनका उपयोग अपने पात्र की भूतकाल की घटनाओं की व्यंजना के लिए भी करता है। जैसा Bernard Shaw ने अपने Man and Superman में Roebuck Ramsden के चरित्र के विषय में किया है। नाटकीय संकेत की सर्वप्रियता और उपयोग उन थियेटरों के अध्यक्षों की माँग की पूर्ति का भी फल है जो अभिनय के समय खेल को और नाटककार के उद्देश्य को अच्छी तरह से हृदयंगम करने में विशेप सहायक होती है। प्रस्तावना अथवा exposition तथा अन्य किसी भूमिका द्वारा नाटककार उन सब विपयों और बातों का परिचय देता था जो आजकल इसके द्वारा ही वह देता है। हिंदी-साहित्य में भी यों तो बिल्कुल नहीं कहा जा सकता कि इन्हीं कारणों से ही इसकी उत्पत्ति है, परन्तु विशेप हाथ हमारा पाश्चात्य साहित्य से सम्पर्क और हमारी अनुकरण-प्रवृत्ति ही है। अभी तक तो यही कहा जा सकता है। हिंदी में अभी अपना रंगमंच ही कहाँ है जो इसके कारण इसका सूत्रपात होता। अभी-अभी ही इसका जन्म हुआ है। इसलिए पुरानी लीक की पूर्ति की अभिलापा के कारण भी इसका जन्म होना यहाँ हम नहीं कह सकते। हाँ, प्रथम और तीसरे कारण इसके विषय में अवश्य लागू हो सकते हैं।

यह पहले बतलाया जा चुका है कि समय और विषय की किफ़ायतशारी ही एकांकी का ध्येय है। कोई भी एकांकी जीवन की समूची घटनाओं का चित्रण नहीं हो सकता। उसकी गति मन्द होना उसके लिए हानिकारक है। उसका कथा-प्रवाह शीघ्र और उतावला ही होता है। एकांकीकार विषय में से काट-छाँटकर खास-खास घटनाओं को परिष्कृत कर कथोपकथन द्वारा अपने एकांकी में स्थान देता है। उसके पात्रों की संख्या थोड़ी ही होती है।

वह कहानी का उतना ही भाग हमारे सम्मुख उपस्थित करता है जितनी उसको आवश्यकता है। जीवन की घटना को थोड़े से शब्दों में वर्णन कर पाठकों अथवा दर्शकों पर भी अपने ही समान भावनाओं का उद्वेलन ही उसकी कला है। नाटकीय घटनाओं उनके अंग-उपांगों का वह सजीव चित्रण है है जो नेत्रों का ग्राह्य हो। घटनाओं का क्रियमाण रूप नेत्रों के लिए सुन्दर बन पड़े, इसी कारण नाटककार नाटकीय संकेतों की सहायता लेता है। नाटक की प्रगति को सुलझाये रखने और नाटक को कलात्मक बनाने में इसका विशेष हाथ है।

नाटकीय संकेतों को कथावस्तु की गति में एक सहायक अंग ही समझना चाहिए। उससे अलग हम इसकी कल्पना नहीं कर सकते। कथोपकथन के समान ही एकांकी को सुपाठ्य बनाने और उसकी बनावट को सुरुचि-पूर्ण करने में इसकी आवश्यकता पड़ती है। कथानक के प्रस्फुरण और विकास के लिए प्रत्येक पात्र का आगमन और रंगमंच से बाहर जाना, उसकी बाह्य आकृति और वेष-भूषा, सभी का ध्यान रखना पड़ता है। कथावस्तु का विकास और व्यक्तित्व का चित्रण कभी नाटककार कथोपकथन द्वारा करता है और कभी रङ्गमंच निहित सन्धियों से और कभी दोनों के सम्मिलन से। नाटकीय संकेत जो न कथावस्तु को विकसित करते हैं और न चरित्र-चित्रण में ही सहायक होते हैं; वे निष्फल ही नहीं वरन् एकांकी के लिए भार-स्वरूप ही हैं। वह उस भवन के समान है जिसका निर्माण बिना किसी नींव रक्खे ही हुआ है अथवा उस मनुष्य के समान जिसका जीवन में कोई उद्देश्य नहीं होता अथवा उस डोंगी के जो माझी बिना जल के थपेड़ों से इधर-उधर मारी-मारी फिरती है और अन्त में जल में ही विलीन हो जाती है।

नाटकीय संकेत लिखते समय नाटककार को अपने नाटक में दृश्य की भौगोलिक तथा वातावरण-सम्बन्धी परिक्रियाओं के विषय में अनभिज्ञ नहीं होना चाहिए। न केवल उस स्थान का ज्ञान, जिसमें उसका दृश्य चित्रित

है वरन् उसके आस-पास की समस्त भौगोलिक स्थिति का भी। यदि उसका दृश्य किसी भवन का आन्तरिक भाग हो तो उसके निकट जितने कमरे आदि और आने-जाने के लिए रास्ते हैं उनका और यदि दृश्य खुले में है तो उसके आस-पास की समस्त किरणावली का ज्ञान प्रेक्षणीय है। यदि कोई पात्र किसी बाग से कमरे में आता हुआ दिखाया जाय और बाग बाईं ओर है तो दाईं ओर का शब्द लिखना अवगुण है। दो पात्रों को गली में एक दूसरे से मिलते हुए प्रदर्शन भी, जब उनका वहाँ मिलाप आवश्यक नहीं है, नहीं होना चाहिए। अगर पात्र को किसी काम पर भेजने की कल्पना की गई है तो काम को पूरा करने में कुछ समय व्यतीत हो जाने के पश्चात् ही उसका आगमन दिखाया जाय। यदि कोई पात्र ड्राइंग रूम में प्रवेश करता है तो उसका रसोई-घर से गुजरते हुए दिखलाना भी दोष है। नाटकीय संकेत नाटककार अध्ययन के बाद ही लिखे क्योंकि उसकी कला ऐसी आसान नहीं है, जैसा कि लोगों ने समझ रक्खा है। भुवनेश्वरप्रसाद के निर्देश अच्छे बन पड़े हैं। उनमें उपर्युक्त गुणों को पूरा-पूरा ध्यान रक्खा गया है। उदाहरण—[सीन—एक मध्य वर्ग बंगले के खाने का कमरा, जो बरामदे में एक तरफ़ परदे डालकर बना लिया है। एक बड़ा-सा साइड-टेबिल जिस पर चीनी के बरतन, प्लेट, प्याले नुमायशी ढंग से रक्खे हैं; पास एक छोटी मेज़ पर फोर्स, क्वाकर ओट्स, पालसन बटर और अचार के दो अमृतबान सजे हैं। खाने की मेज़ अण्डाकार है, जिसके चारों तरफ़ चार कुर्सियाँ पड़ी हैं। दो पर एक स्त्री और एक पुरुष बैठे हैं, पुरुष, सुपुरुष; स्त्री कुछ बोले तो पता चले, कम से-कम दस मिनट से खामोश तीसरे पहर की चाय पी रहे हैं।] ऊंचे घराने के सामयिक जीवन का कितना विशद और सजीव चित्र है। यह एक दृश्य के ही समान है। लेखक ने स्थिति का पूरा ख्याल रक्खा है।

नाटकीय संकेतों का उद्देश्य कथावस्तु के दुरूह और बड़े स्थलों को संकुचित रूप से चित्रण करना है। उससे शब्दों की किफायत तो होती ही है परन्तु नाटक की गुरुता और भी बढ़ जाती है। व्यर्थ की बकवाद

कथोपकथन में पाठकों अथवा दर्शकों को अरुचि नहीं लगती। कथोपकथन में उसी का समावेश हो जो कथावस्तु से अलग न हो। उनका ध्येय उन स्थलों का जिनके वर्णन में शायद बहुत जगह की आवश्यकता पड़ती, एकत्रित कर देना ही है। थोड़े से रूप में। जिनके वर्णन में अधिक देर लगती और जो अधिक जगह घेरता उनका चित्रण भुवनेश्वरप्रसाद ने कितना सुन्दर किया है। उदाहरण :—

"सब जवान औरतों की तरह हंसते, सिर्फ युवक कुछ खोया-खोया सा है और सबसे पीछे बाहर जाता है। बाहर बरानदे से दो या तीन मरतबा आवाज आती है, 'चौकीदार'! फिर मोटरों के स्टार्ट होने की और खामोशी। स्टेज पर अँधेरा हो जाता है, पर बीच में दो या तीन मरतबे रोशनी होती है और एक किसानों का बुझा-सा चेहरा लिए चौकीदार मेज झाड़ता है और जले हुए सिगरेट बीनता हुआ दिखाई देता है।[२]

कथोपकथन द्वारा लेखक इसका प्रतिपादन शायद कर सकता था। अव्वल तो सबका नहीं, यदि करता तो इतना चमत्कारिक होना कठिन अवश्य था।

नाटकीय संकेत कथावस्तु के उन तत्त्वों के चित्रण में भी सहायक होता है जिनका कथोपकथन उद्धार नहीं कर सकता। इसका सुन्दर उदाहरण जैनेन्द्र के 'टकराहट' में है। लीला का वर्णन करते हुए नाटककार का कथन है:—'लीला' का कमरा। लीला आती है। उसके हाथ में झाड़ू है, बाल फैले हैं, चेहरे पर धूल है। झाड़ू एक ओर रख देती है और शीशा देखती है। देखकर आइना दूर कर देती है और पास एक ओर बाल्टी से पानी लेकर मुँह धोती है। धोकर फिर आइना देखती है। बाल ठीक करती है और फिर कपड़े बदलना आरम्भ करती है।" कितना क्षोभ, कितनी ग्लानि, कितना परिवर्तन, कितनी विडम्बना, कितना त्याग है इन

---

२ भुवनेश्वरप्रसाद का 'स्ट्राइक'

शब्दों में। मानसिक द्वन्द्व का चित्रण मुखरित हो उठा है। यह Richard Harding Davis के Blackmail के ऐसे ही स्थलों से टक्कर ले सकता है और एकांकी के ऐसे ही स्थल उसको चिर अमर बनाने में सर्वथा सहायक होंगे। इसके आगे 'लिली' अथवा 'लीला' की अपने प्रेमी के सम्मुख प्रेम के आवेश में उसकी बाढ़ के सामने [बाढ़ में कौन नहीं बह जाता]. अकर्मण्यता दिखलाई है। नाटक का इससे सुन्दर अन्त और क्या हो सकता था। 'लीला' एकटक सामने देखती रह जाती है। मानों गूँगी हो और आँखें पथरा गई हों।' मानसिक भावना का कितना सजीव विश्लेषण है। एक दूसरे स्थल पर भगवतीचरण वर्मा 'मैं और केवल मैं' इसके अन्त में कितना सूचित दृश्य पार्श्व में उपस्थित करते हैं—'रामेश्वर का सिर लुढ़क जाता है—सब लोग दौड़ते हैं। देवनारायण रामेश्वर की नब्ज देखता है और फिर सिर हिलाता है'।

नाटकीय संकेत और कथोपकथन का साथ-साथ प्रयोग एकांकीकार अपनी कृतियों में करते हैं जिससे उसकी प्रेषणीयता बढ़ जाती है और थोड़े ही शब्दों में वह अर्थ ग्राह्य हो जाता है। भुवनेश्वरप्रसाद के 'एक साम्यहीन साम्यवादी' के दूसरे दृश्य में लेखक पार्वती की आन्तरिक भावना और उसकी भावभंगी का वर्णन कितने सुन्दर, परन्तु कम शब्दों में करता है। 'पार्वती जैसे प्रेत से डर गई हो।' इसका एक और उदाहरण हम गणेशप्रसाद द्विवेदी के 'सोहाग-बिन्दी' से उद्धृत करते हैं। उदाहरण—'देखो यह लाल बिन्दी की शीशी कितनी हिफ़ाजत से रक्खी हुई थी [शीशी को बड़ी श्रद्धा से निकालकर देखता है। वह बिल्कुल खाली है, फिर मानों आप ही आप कहता है [इतनी हिफ़ाजत से रखने पर भी फिर न जाने कैसे यह गिर पड़ी। [फिर उसी सन्दूक में से एक चिट्ठी लिखने का कागज निकालता है, जिसके ऊपरवाले पन्ने पर एक अधूरी चिट्ठी लिखी हुई है। वह भी बिन्दी के रंग से लथ-पथ हो रही है। पूरी इबारत पढ़ी नहीं जाती, तो भी वह आप ही आप विक्षिप्त प्रलाप के तौर पर बड़े प्रेम से आँखें फाड़-फाड़कर पढ़ने लगता है.........' इसके आगे पढ़ा नहीं जाता [काली

बाबू एकाएक सन्न होकर लेटर पेपर को हाथ में लिए सन्दूक बन्द कर देते हैं और मूर्च्छित-से पलंग पर पड़ जाते हैं, आँखें बन्द हो जाती हैं। थोड़ी देर म वह अस्थि-खंड उनके दूसरे हाथ से फ़र्श पर आ गिरता है। महाराज दीर्घ निःश्वास के साथ अस्फुट उच्छ्वास-सा करता बाहर निकल जाता है मानो वह दृश्य उसके लिए असह्य हो। थोड़ी देर बाद एक बिल्ली उधर से आती है और उस अस्थि खण्ड को लेकर खेलने-सी लगती है।]

उपर्युक्त नाटकीय संकेत में लेखक ने काली बाबू की मानसिक अवस्था का विश्लेषण बड़ा ही सूक्ष्म किया है। पत्नी की मृत्यु के पश्चात् दुःखकातर पति को यह जानकर कि उसकी पत्नी का प्रेम किसी और से था। कितनी ग्लानि, कितना क्षोभ, कितनी मानसिक पीड़ा होगी उसका थोड़े से शब्दों में मूर्त्त चित्र नाटककार ने यहाँ उपस्थित किया है। उनके हाथ से अस्थिखण्ड के गिर जाने में लेखक ने कितने गूढ़ भाव का व्यंजन किया है, पाठक भली भाँति समझ गये होंगे। थोड़ी देर बाद एक बिल्ली का उधर आना और अस्थिखण्ड से खेल करना कितना सांकेतिक वर्णन है और हिन्दी-साहित्य के लिये सर्वथा नवीन चीज़ है। बाह्य पदार्थों अथवा घटना का उपक्रम कर पात्रों का मानसिक चित्रण तथा द्वन्द्व यहाँ के लिए नवीन ही है। कितने कम शब्दों में कितने अधिक अर्थ की सम्भावना करने की योजना है।

यदा-कदा इसका उपयोग लम्बे टेलीफोन के समान वार्तालाप विच्छेद करने के लिए होता है। इसके द्वारा लम्बे भाषणों में अतिक्रम आदि दोष भी दूर हो जाते हैं। हिन्दी एकांकियों में अभी इसका सामयिक प्रयोग अधिक नहीं दिखाई देता। लम्बे-लम्बे भाषण एकांकी में हैं, जैसे जैनेन्द्र के 'टकराहट' में, परन्तु इस प्रकार की टेकनीक का उनकी रचना में भी पूर्णतया अभाव ही-सा है। इसका कुछ-कुछ प्रयोग यदि हमें मिलता है तो गणेशप्रसाद द्विवेदी के ही एकांकियों में। इसका एक उदाहरण हम 'सोहाग-बिन्दी' से उद्धृत करते हैं—

काली बाबू—[लपककर माथे पर हाथ रखकर शरीर का ताप देखने के बाद] ओफ़ ओह ! तवे की तरह बदन जल रहा है, [बाहर की ओर देखकर जोर से] महराज [महराज आते हैं, व्यग्र से], महराज ! वह बड़ी काली रजाई तो ले आओ ! [महराज जाकर रजाई ले आते हैं। काली बाबू उसे यत्न से उढ़ाते हैं। प्रतिभा का शरीर थर-थर काँप रहा है, रजाई को चारों ओर समेटकर लेट जाती है] यह निर्देश इस दृष्टि से अच्छा नहीं बन पड़ा है। J. Hartley Manners के The Day of Dupes में Politician का भाषण इसका सुन्दर उदाहरण है और उसका कुछ अंश देकर हम यहाँ बताने की चेष्टा करेंगे कि हिन्दी में सर्वथा इसका अभाव ही है।

"राजनीतिज्ञ—[फूलों की ओर देखकर] मेरा गुच्छा ! [सूँघता है] सुन्दर ! कितना सुन्दर ! कितना प्यारा ! [उसको रख देता है—दूसरे गुच्छे पर दृष्टि जाती है—उसको उठा लेता है] हूं ! एक और ! कितना भद्दा ! मेरी प्यारी, प्यारी [वह उसको अपने घूमनेवाली किताबों की अलमारी की निचली दराज में रख देता है] बिल्कुल ऐसी ही बस ऐसी ही, [अपने गुच्छे का आत्म-दृष्टि से निरीक्षण करता है। कार्निस की ओर मुड़कर जड़ी हुई तस्वीर को देखता है—हाथ में ले लेता है] प्रिये ! प्रिये ! [सिर घुमा लेता है] कितना भयानक, कितना डरावना ! उसका—उसका फोटो ऐसा क्योंकर हो सकता था, किस प्रकार ? [३]

---

३ The Politician (looking at flowers) my bouquet ! (smells it.) Beautiful ! Dear me, dear me ! (Puts it down—sees another bouquet—takes it up.) to me ! Another ! How distressing ! Dear, dear, (He places it on a lower shelf of the revolving book-case) Quite so—quite so ! (Surveys his own bouquet with satisfaction turns to

कितना भला उदाहरण है ? इस निर्देश में लेखक ने पात्र की मानसिक अवस्था उसके चरित्र, उसकी अभिरुचि का ही केवल वर्णन नहीं किया है, परन्तु उसका रंगमंच के एक कोने से दूसरे कोने तक जाना भी दिखाया है। अपने ढंग का यह एक ही है।

इसके द्वारा एकांकीकार भावों का भी सुन्दर अभिव्यंजन करता है। भावोद्रेक के व्यंजन का भी यह साधन है। किसी घटनास्थल पर किसी पात्र का क्या स्वभाव है, उसके व्यक्तित्व के किसी एक गुण का प्रतिपादन तथा उसकी एक विशेष प्रकार की कार्यपरायणता का द्योतक है। 'अत्यन्त उत्तेजित-सा, सिहर कर, विचित्र भाव से, अस्फुट स्वर में, क्षीण स्वर से, उपेक्षा से, तीव्र उत्कण्ठा दबाते हुए, विनोद से, कुछ बेसुरा होकर, बड़ी गम्भीरता से, मचल कर, जरा हटकर, विनोद उत्कण्ठा से व्याकुल, मीठे ताने के स्वर में, निराश-सूचक मुद्रा से, रहस्य से, लापरवाही से, बड़ी दुश्चिन्ता से, घृणा-मिश्रित गम्भीरता से, डरते-डरते, रुँधे गले और छलछलाई आँखों से, ईषद् जगुप्सा-मिश्रित सहानुभूति के साथ, निःश्वास से लेकर, भर्राये हुए कंठ-स्वर में, वेग से, विचलित, किंचित् आवेश में—आदि कुछ हिंदी एकांकियों से इसके उदाहरण हैं। यह अँग्रेजी के एकांकियों में प्रयुक्त reluctantly, angered, heatedly trying to find words, modestly, pompously, with a fierce primitive cry of pain, shyly, bitterly, sternly, pensively, coquettishly आदि के ही समान हैं। क्या यह भी अँग्रेजी साहित्य के प्रभाव

---

mantel-piece, sees the framed portrait—takes it in his hand.) Oh dear, dear, dear—(Turns his head away) How dreadful. Shocking ! How could she be photographed like that ! How could she !

से हमारे साहित्य में आये हैं! मूल कन्नड से अनुदित 'ज्वालामुखी' में एक क्या अनेक कथोपकथन हैं जिनमें निर्देश द्वारा पात्रों की आवेशावस्था का दिग्दर्शन कराया गया है। उदाहरण—

"तिष्या—(कुछ सन्तोष से) हाँ! वे आनेवाले हैं। (थोड़ी देर चुप रहकर) कुंजरकर्णजी के दर्शन हुए.........अकेले युवराज यहाँ आवेंगे............तो मेरे कहे अनुसार इतना करो। यहाँ से युवराजजी को कुंजरकर्णजी के पास ले जाना। भूलना मत, समझी। (उसास लेकर) कुनाल भी बेवकूफ है, बुद्ध का चेला है। वह भी जीवन की महत्ता नहीं जानता।

यहाँ पात्र की भावना और स्वभाव के चित्रण के साथ-साथ ही उसकी शारीरिक क्रिया का भी भाव सन्निहित है।

एकांकी क्या है ?

नाटकों का वर्गीकरण करते समय हमें इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि हमारा ध्येय आजकल के नाटकों का ही वर्गीकरण करना है। नाटकों को हम दो भागों में बाँट सकते हैं। एक तो बड़े नाटक और दूसरे छोटे नाटक। इनके अनेक उपांग हैं। बड़े नाटकों की भी दो श्रेणियाँ हैं। ऐसे नाटक जिनमें पाँच अंक अथवा चार अंक अथवा तीन अंक से लेकर चौदह-पन्द्रह दृश्य तक होते हैं। दूसरे वह नाटक जिनमें अंक तो केवल तीन या चार ही होते हैं, वरन् दृश्य कम होते हैं। गैलसवर्दी और बर्नार्ड-शा के नाटकों को हम इसी श्रेणी के अन्तर्गत मानते हैं। 'गैलसवर्दी' के Loyalties में तो केवल पाँच या छः ही दृश्य हैं और बर्नार्ड-शा के Arms & the Man में एक भी नहीं केवल तीन अंक ही हैं। हिन्दी में पृथ्वीनाथ शर्मा का 'दुविधा'[१] बड़े नाटक के दूसरे वर्ग की पहली श्रेणी के अन्तर्गत है। इसके और उदाहरण हैं, 'प्रसाद' के 'चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त' आदि। पंत का 'ज्योत्स्ना' भी इसी श्रेणी का है। 'प्रसाद'जी का 'ध्रुव-स्वामिनी' नाटक भी इसी श्रेणी का है। बड़े नाटकों को हमने दो भागों में विभाजित किया और उनके दूसरे वर्ग को भी दो उपवर्गों में। तीन या चार अंकवाले नाटक दो प्रकार के होते हैं, एक तो वह जिनमें दृश्यों के अधीन दृश्यों का होना अनिवार्य नहीं और दूसरे वह जिनमें दृश्यों की संख्या अंकों की संख्या के बराबर ही होती है।

छोटे नाटक भी दो प्रकार के होते हैं। प्रथम वे नाटक, जिनमें अंक एक ही हो, परन्तु दृश्य कितने ही हों, सात से लेकर दस तक भी। कहीं-कहीं पर इस श्रेणी के नाटकों में दृश्य लिखे नहीं जाते। केवल संकेतात्मक रूप से उनका जिक्र होता है जैसा भुवनेश्वरप्रसाद के 'स्ट्राइक' में। इस

---

[१] प्रकाशचन्द्र ने इसे गलती से एकांकी माना है। देखिये एकांकी नाटक मई सन् ३८ के 'हंस' में।

श्रेणी के नाटक हिन्दी में बहुत मिलते हैं जैसे 'उस पार', 'टकराहट', 'एक ही कब्र में'। अँग्रेजी में 'The King's Hard Bargain' Harold Brighouse का The Prince who was a Piper और Jacobs का Monkey Paw छोटे नाटकों के दूसरे वर्ग में हम उन नाटकों को लेते हैं जिनमें एक अंक में हमें एक ही दृश्य मिलते हैं। उपेन्द्रनाथ अश्क के शब्दों में हम उन्हें झाँकी कह सकते हैं। झाँकी अँग्रेजी के Peep का पर्यायवाची है। इस प्रकार के नाटकों में जीवन की झाँकी-मात्र ही होती है, दृश्य-परिवर्तन इसमें नहीं होता। Synge का Riders to the Sea, Harold Chapin का The Dumb and the Blind, Harold Brighouse का How the Weather is Made, Sutro का A Marriage has been arranged, Lord Dunsany का The Golden Doom. Clifford Box का Cloak आदि ऐसे ही नाटक हैं। हिन्दी में रामकुमार का 'चंपक', 'पृथ्वीराज की आँखें', भगवतीचरण का 'मैं और केवल मैं', उपेन्द्रनाथ का 'अधिकार के रक्षक', भुवनेश्वरप्रसाद का 'श्यामा' इसी श्रेणी के हैं। हिन्दी-साहित्य में एकांकी और झाँकी, कई दृश्यवाले छोटे नाटक दोनों ही लिखे जा रहे हैं। उपेन्द्रनाथ अश्क ने एकांकी और झाँकी में इसी तरह का भेद माना है। एकांकी के अन्तर्गत केवल झाँकियों को ही मानना, और कई दृश्यवाले नाटकों को एकांकी के नाम से न पुकारना उचित नहीं। वास्तव में दोनों ही एकांकी हैं, दोनों में ही जीवन की एक झलक-मात्र है, दोनों की कथा-वस्तु की भित्ति ऐक्य अथवा साम्य पर निर्भर है। दोनों में ही निरर्थक घटनाओं और चरित्र का बहिष्कार किया गया है। दोनों में ही पूर्ण कमी की गई है, दोनों ही का ध्येय एक है। फिर यह विभिन्नता कैसी ? उनको उन्होंने पाँच अंकवाले नाटकों का छोटा संस्करण कहकर वही गलती की है जो चन्द्रगुप्तजी ने एकांकी को कहानी का संस्करण-मात्र कहकर की थी। वास्तव में एकांकी के लिये एकांकी होने का स्टैण्डर्ड यदि कोई है तो वह उसका ऐक्य अथवा

साम्य है। यदि उसमे यह अंतर्हित है, तो वह एकांकी ही रहेगा, चाहे उसमें दृश्य हो अथवा नहीं। हाँ, अंक एक ही होना चाहिए, कथा-वस्तु के केवल एक ही अंग को लेकर उसका निर्माण हो। भुवनेश्वरप्रसाद के 'स्ट्राइक' में समय का ऐक्य, स्थान का ऐक्य अथवा प्रभाव का साम्य है यद्यपि इसमें दृश्य हैं। यह सफल एकांकी है। यह सफल झाँकी है। हम एकांकी और झाँकियों का विच्छेद नहीं कर सकते क्योंकि वास्तव में दोनों एक ही वस्तु हैं।

उपर्युक्त वर्गीकरण से हमें ज्ञात हो गया कि एकांकी सर्वथा बड़े नाटक नहीं हैं। उनमें और बड़े नाटकों में उतना ही अन्तर है जितना कहानी और उपन्यास में।

एकांकी और नाटक का प्रश्न सम्मुख आने पर हम स्वतः कह उठते हैं कि एकांकी नाटक की अपेक्षा साम्य तथा कमी की दृष्टि से अत्यन्त सुन्दर है। वह थोड़े समय में अभिनीत होनेवाली रचना है, और जिसका अर्थ समझने में हमें मध्यवर्ती की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसका प्रभाव स्वयं ही हृदयंगम हो जाता है। इस विषय में एक पाश्चात्य आलोचक का कथन है:—

एकांकी की टेकनीक

'एकांकी की गतिविधि का ज्ञान नाटक के लिखनेवाले को नहीं होता। एकांकी संक्षिप्त रचना नहीं है, और न इसकी सामग्री से नाटक का निर्माण हो सकता है। साम्य ही से इसकी उत्पत्ति होती है। इसकी प्रेरणा का उद्‌गम भी ऐक्य है, साम्य ही इसका ध्येय है, और साम्य ही इसकी आत्मा, ऐक्य ही उसका सूत्रधार है, ऐक्य ही इसकी प्रतारणा, ऐक्य ही इसका संकुचित स्वरूप, ऐक्य ही इसका गुण तथा दोष दोनों है, ऐक्य से ही उसकी रक्षा होती है। तीन या चार अंकवाले नाटक से भिन्न इसकी आवश्यकताएँ हैं। उसमें Exposition की अति शीघ्र गति के कारण तथा इसके प्रभाव-साम्य के कारण प्रत्येक शब्द तथा प्रत्येक घटना इसके ध्येय की पुष्टि करती है। नाटक के पूरे प्रथम अंक में अतीत की घटनाओं का ब्योरेवार वर्णन होता है। परन्तु एकांकी में यह सब कुछ ही मिनटों में

हो जाना चाहिए। नाटक के विकास में यदि पाठक अथवा श्रोता का ध्यान बँट जाय कथावस्तु की जटिलता अथवा किसी और कारण से तो अधिक हानि नहीं। यदि एकांकी में ऐसा हुआ तो समझ लीजिये कि वह असफल हुआ। किसी एक परिस्थिति का अभिव्यंजन ही इसके स्वभावानुसार, चाहे वह अभिव्यंजन जोरदार हो अथवा मंद, चाहे Serious अथवा Whimsical, एकांकी का ध्येय होता है। एकांकी में घटना के विस्तार और चरित्र-चित्रण के लिये समय नहीं होता। एकांकी का ध्येय और उसका कार्यक्रम केवल इसी में है कि वह दर्शकों का ध्यान शीघ्र ही अपनी ओर आकर्षित करे और यह क्रम जारी रहे जब तक पर्दा एकांकी की समाप्ति के पश्चात् नहीं गिर जाता। यही दोनों में मुख्य भेद है।

टेकनीक की दृष्टि से भी एकांकी की अपनी अलग ही मर्यादा है, अपना अलग ही स्वरूप और अपनी अलग ही चाल है, उसी प्रकार जिस प्रकार बड़े नाटक की है, क्योंकि एक दूसरे की अपेक्षा छोटा है और चूँकि एक के पास घटना के विस्तार के लिए अधिक समय नहीं है, इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इसके तत्त्व, इसका शास्त्र दूसरे के मुकाबिले में कुछ भिन्न और अलग अवश्य है। एकांकी की समाप्ति एक ही बैठक में अनिवार्य है। यह आरम्भ होता है कुछ विशेष तत्त्वों का ध्यान रखकर और तेजी से हमारी आँखों के सामने से गुजरता है। बिजली की रफ्तार-सी ही उसकी गति है। उसका विषय एक ही होता है। सहायक विषयों के लिये उसमें कोई स्थान नहीं। बड़ा नाटक उस माला के समान है जिसमें बहुत-से दाने अथवा मोती एक साथ बिंधकर माला को बनाते हैं। प्रत्येक मोती माला की सुन्दरता के लिये अपने स्थान पर आवश्यक है। नाटक में घटनाएँ अनेक होती हैं परन्तु एक का दूसरे से अन्योन्याश्रय सम्बन्ध रहता है। एक के निकल जाने से नाटक की भित्ति ही गिर जायगी। एकांकी मे परिस्थिति का, विषय का और उसके तत्त्वों का निरापद समझना तुरन्त ही होता है। नाटक का निर्माण उस भव्य भवन के समान है जिसका प्रत्येक खंड भवन का ही भाग है और उस भवन के निर्माण में निर्माणकर्ता को ही पूर्ण

स्वतन्त्रता रहती है। पर उसके विपरीत एकांकी उन छोटे-छोटे एक दूसरे से बिलकुल अलग मकानों का जिनमें प्रत्येक सुविधा को अलग ध्यान रक्खा जाता है, क्योंकि वे भिन्न मनुष्यों के लिये हैं। एकांकी यदि संकुचित है तो नाटक बृहत् एकांकी यदि साम्यजन्य है तो नाटक स्वतन्त्र, एकांकी की गति संकीर्ण है तो नाटक की बन्धनमुक्त।

एकांकी की टेकनीक बड़े नाटक से केवल भिन्न ही नहीं वरन् मुश्किल और जटिल है। एकांकी का प्रारम्भ फौरन हो जाता है। Exposition के लिए उसमें बहुत थोड़ा ही स्थान है। आरम्भ होकर शीघ्र ही विन्दु तक उसे पहुँचना होता है और उसका अन्त भी उसी प्रकार सामयिक होता है। यदि एकांकी का क्षेत्र संकुचित है, यद्यपि उसके लिए थोड़े ही समय की आवश्यकता होती है तथापि उसमें प्रभावसाम्य होना अनिवार्य है। एक पाश्चात्य आलोचक ने कहा है "एकांकी यदि सुन्दर बन पड़ा है तो कला की चरम पराकाष्ठा और पूर्ति है। बड़े नाटक की अपेक्षा इसकी टेकनीक अधिक पूर्ण और कलात्मक होती है, इसी से वह उसकी बराबरी कर लेता है। टेकनीक उसका मुख्य ध्येय है और उसी में उसकी अति कठिन समस्या वर्तमान है।"

एकांकी में यदि नाटककार असफल रहा तो बस समझ लीजिए उसने उस विषय का ठीक मनन नहीं किया और उचित प्रतिपादन नहीं किया। सुन्दर नाटक में उस गुण का होना आवश्यक है। नाटक कला का सच्चा-सीधा उदाहरण भी है। एकांकी मे किसी मुख्य घटना को लेकर नाटककार नाटक निर्माण करता है। सहायक घटनाएँ भी कभी-कभी उसको मुख्य विषय की पूर्ति के लिए लाने का अधिकार है। परन्तु उसकी प्रतिभा निर्भर है घटनाओं के इस प्रकार के प्रत्यक्षीकरण पर कि वह मुख्य घटनाओं से अलग न जान पड़े। मेजर घटना जो चुम्बक सदृश उसका ध्यान आकर्षित करती है एकांकी के लिए अनिवार्य है। सहायक घटनाएँ चाहे उनका कितना ही सफल प्रतिपादन हुआ हो एकांकी में बाधा-स्वरूप ही पड़ती हैं। एकांकी की गति दो या उससे अधिक धातु के

परस्पर सम्मिलन के समान है। असुन्दर और विकृत धातुओं को साँचे में डाल आग पर तपाया जाता है। उनका बदलना आरम्भ होता है। उनमें शीघ्र पिघलनेवाली धातु दूसरों की अपेक्षा जल्दी पिघल जाती है। दुसरियों का रंग इन्द्रधनुष के सात रंगों के सदृश परिणत होता रहता है। आग और तेज की जाती है, भट्टी धधक उठती है। शोले और अंगारों से चारों ओर का वातावरण प्रज्वलित हो उठता है। उनके आपस में एक दूसरे से मिल जाने का समय आ पहुँचा। रसायनिक ने उसमें कुछ रस मिलाया और तुरन्त एक नया रूप, एक नया रंग आ उपस्थित हुआ। उसी प्रकार जिसका प्रारम्भ किसी एक विषय को लेकर उसके साथ एक उद्देश्य और उसकी पूर्ति के लिए चरित्रों को लेकर हुआ है वह विकसित होता है, बढ़ता जाता है, रसायनिक की अग्नि समान और अपने उच्च बिन्दु पर पहुँच ऐसे रूप में परिणत हो जाता है जिसकी हमें स्वप्न में भी आशा नहीं थी। एकांकी नाटककार संक्षिप्त में एक सफल रसायनिक भी है क्योंकि उसकी सफलता रसायनिक के समान विभिन्न रसायन के तत्त्वों के पूर्ण सामञ्जस्य में है। एकांकी का जीवन उन्हीं सब तत्त्वों के सफल सम्मिलन में ही है, दर्शक उसी अवसर की राह देखता रहता है और यदि नाटककार उसे उससे वंचित रखता है तो एकांकी का दुर्भाग्य ही समझिये। एकांकी का सम्बन्ध नाटक से उसी प्रकार का है जैसा किसी छोटी स्वरूपवाली मूर्ति का बड़ी से। कविता में मुक्तक, गीत में स्वर का जो स्थान है वही एकांकी का नाट्यशास्त्र में है।

एकांकी का विषय सम्पूर्ण जीवन नहीं, जीवन की एक घटना ही है। जीवन की झाँकी ही उसका उद्देश्य है। न उसका कथावस्तु ही जटिल होता है। अनुभव, एक क्षण, एक ही चरित्र-चित्रण का यह ज्वलन्त उदाहरण है। अपूर्णता ही इसका प्रमुख अंग है। कल्पना का आश्रय दर्शक से नाटककार आशा करता है। सम्पूर्ण जीवन की रंगस्थली से किसी एक घटना का पृथक्करण इस प्रकार करता है कि एकांकीकार अपनी सारी प्रतिभा

का एक ही जगह समावेश होने के कारण भाव में विशेष जान फूँक जाती है। उसका ध्येय जीवन के केवल एक ही अंग का समर्थन करना है। उसकी अनुभूति सम्पूर्ण न होकर अपूर्ण ही रहती है। यही उसकी कला है और इससे यदि उसने तनिक भी अपना दृष्टिकोण बदला कि उसके एकांकी में ऐक्य पर कुठाराघात हुआ जो उसका आवश्यकीय अंग है।

एकांकी जीवन की विभिन्नताओं का बहिष्कार कर एक ही अंग पर प्रकाश डालता है। इससे यह नहीं समझना चाहिए कि एकांकी निम्न, क्षुद्र, व्यर्थ और विफल प्रयास है। एकांकी की संक्षिप्तता, उसका जीवन की एक ही घटना, एक ही अनुभव, एक ही क्षण का प्रतिपादन एकांकीकार के लिए गूढ़ प्रश्न हैं। यहीं उसकी परीक्षा होती है, यहीं उसकी प्रतिभा का अनुमान होता है। यह न समझना चाहिये कि एक घटना का जीवन से अलग कोई मूल्य नहीं है। क्या यह देखने में नहीं आता कि कभी-कभी एक ग्रन्थि को सुलझाने के विफल प्रयास में मनुष्य अपने प्राण तक खो बैठता है। एक ही घटना पर्याप्त है मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन को चोटी से एँड़ी तक बदलने के लिये। ऐसा अनुभव है। एकांकी के अंग की यथा-शक्ति पुष्टि होने में भी सार्थकता है। नौसिखिये के हाथ में यह विफल, असफल और क्षीण तथा नाट्यशास्त्र से पूरी तरह भिज्ञ नाटककार के हाथ में इसका मूल्य और इसकी कला कहानी से भी ज़्यादा बढ़ जाती है। मुक्तक का चरम संकुचित रूप भी इसकी बराबरी नहीं कर सकता। नाटक की अपेक्षा इसका कथावस्तु जटिल न होते भी बद्ध और सीधा-सादा होता है। एकांकी की अपनी टेकनीक है, इसकी अपनी ही आवश्यकताएँ हैं और यही उसके गुण हैं।

एकांकी जरूरी नहीं छोटा ही हो। अक्सर यह छोटा ही होता है क्योंकि ऐक्य उसका ध्येय होता है और किसी एक ही घटना-वैचित्र्य का वर्णन ही इसमें होता है। विषय और समय की किफायत में ही उसका कल्याण है। फिर भी लम्बाई इसके कथानक पर निर्भर है। किसी एक विषय के

कथानक में उसे बीस पृष्ठ और दूसरे के लिये पचास की जरूरत पड़े। इसके लिये कोई बहुत विशेष नियम नहीं बनाये जा सकते। यदि नाटककार को अपना उद्देश्य मालूम है और उसकी ओर ही नाटक में वह अग्रसर होता है, सफलता अवश्यम्भावी है। जैनेन्द्र का 'टकराहट', भुवनेश्वरप्रसाद के 'श्यामा', तथा रामकुमार वर्मा के 'चंपक' की अपेक्षा अधिक बड़ा है फिर भी असफल नहीं। दोनों ही सफल एकांकी हैं। इसके विपरीत Bernard Shaw का Getting Married और Misalliance एकांकी नहीं हैं। दर्शक का ध्यान, पर्दे से जब उनका रंगमंच पर चित्रण होता है, कई बार हट जाता है। निष्कर्ष निकला कि उनमें बीच-बीच में व्यवधान हैं। ऐसा होना एकांकी में हानिकारक है। एकांकी एक ही बार और एक ही समय में खतम होनेवाली कृति है।

एकांकी को अपना बनाने की पैरवी के लिये मुख्तार की जरूरत नहीं। वह अपने ही पैरों पर खड़ा होनेवाला संस्करण है जिसको शुभचिन्तकों की संसार में भले ही आवश्यकता हो परन्तु पैरवी के लिये नहीं। अपने सफल रूप में न यह स्केच है, न व्यंगात्मक रचना, न छोटी ही कृति और न केवल भाँड़। यह इन सबसे ऊपर ही है। उनकी अपनी कला नहीं है, इसकी है। कला की दृष्टि से वे हेय हैं। उनका उद्देश्य ऐक्य नहीं, जैसा कि एकांकी का है। एकांकी की स्वतंत्र वृत्ति है और स्वतन्त्र ही सत्ता।

उपसंहार एकांकी क्या है इस विषय की जानकारी के लिये निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है—

एकांकी स्वभावतः छोटी रचना नहीं है।

एकांकी न स्केच है, न व्यंगात्मक रचना है।

एकांकी की कहानी के सदृश अपनी ही टेकनीक है और उसका ज्ञान एकांकीकार के लिये परमावश्यक है। टेकनीक उसकी भित्ति है और उसी पर उसका विशाल भव्य भवन खड़ा होता है।

उनका ध्येय है। ग़ोर के क़िले में पृथ्वीराज क़ैद है। उनके निकट ही महाकवि चन्द बैठा हुआ है। पृथ्वीराज का अधःपतन साधारण नहीं, वरन् हिन्दू-साम्राज्य का क्षय था। कितना व्यापक है इसका कथानक। ऐसे महान् व्यक्ति का पतन, सम्पूर्ण शक्तिशाली हिन्दू-जाति के प्रतिनिधि की अन्तिम समय में यह दुर्दशा, कितना हृदय-ग्राही कथानक है। प्रकाशचन्द्र गुप्त का कथन है 'पृथ्वीराज की आँखें' के विषय में—"जितना रहस्यमय शीर्षक है, उतनी असल रचना नहीं"[1]। कम-से-कम मैं इससे सहमत नहीं क्योंकि मुझे उसके शीर्षक में अव्वल कोई रहस्य नहीं मालूम पड़ता क्योंकि 'पृथ्वीराज की आँखें' से लेखक का तात्पर्य केवल पृथ्वीराज की अन्तिम दुर्दशा से ही है, और दूसरे उसमें चरित्र-चित्रण के अलावा नाटक के सम्पूर्ण तत्त्व मौजूद हैं। हाँ, ऊँची कल्पना और काव्य-कल्पना के गुण इसमें वर्त्तमान हैं। करीब-करीब उनके सभी नाटकों में। यही इसका अवगुण कहिये। 'बादल की मृत्यु' तो कविता ही है। उसका बाह्य रूप ही नाटक का है। अफ़सोस है, प्रकाशचन्द्रजी ने उनके विषय में यह क्यों कहा है कि वर्माजी ने एकांकी की टेकनीक में कुछ अन्वेषण नहीं किया। समझ में नहीं आता 'टेकनीक' से उनका मतलब किस चीज का है। क्योंकि रामकुमार वर्मा की एकांकी नाटक की बाह्य वेष-भूषा बिल्कुल पश्चिमीय है।

'रेशमी टाई' उनका प्रहसन (Light Comedy) है। इसका कथानक बहुत मनोरंजक है। इसको पढ़कर अँग्रेज़ी साहित्य के जान ब्रेनडेन की 'रोरी अफ़ोरसेड' का ध्यान तुरन्त आ जाता है। एक इन्श्यु-रेन्स एजेन्ट का लेखक ने इसमें अच्छा ख़ाका खींचा है। यह उनकी सबसे सुन्दर रचना है।]

---

१ 'हंस' मई ३८

पृथ्वीराज की आँखें

[महाकवि चन्द ने अपने ग्रन्थ पृथ्वीराज-रासो के छियासठ समयो (बड़ी लड़ाई समयो) में पृथ्वीराज का क़ैद होकर गोर जाना लिखा है। सरसठ समयो (बान-वेध समयो) में पृथ्वीराज धनुर्विद्या का वर्णन और अन्त में पृथ्वीराज के शब्दवेधी बाण से शहाबुद्दीन गोरी का वध होना लिखा है। इस दृष्टिकोण को सामने रखकर इस नाटक की रचना की गई है, पर ये सब बातें ऐतिहासिक सत्य से परे हैं।]

पात्र-परिचय

पृथ्वीराज चौहान—दिल्ली और अजमेर का राजा।

चन्द—महाकवि और पृथ्वीराज का मित्र।

शहाबुद्दीन गोरी—गोर का सुलतान (सन् ११९२)।

अख़्तर—सिपाही।

काल—तराइन के युद्ध के उपरान्त।

❀ ❀ ❀ ❀

[संध्या का समय। गोर के क़िले में पृथ्वीराज क़ैद है। वह पैंतालिस वर्ष का प्रौढ़ व्यक्ति है। उसके शरीर से शौर्य अब भी फूट रहा है। चढ़ी हुई मूँछें और रोबीला चेहरा। उसके हाथ साँकलों से बँधे हैं। अब वह अपने घुटनों पर दोनों हाथ रक्खे हुए सिर झुकाये बैठा है। साँकल का एक छोर उसके पैरों तक लटक रहा है, जो हाथों के सञ्चालन-मात्र से ही झूलकर शब्द करने लगता है। उसके बाल बिखरे हुए हैं। डाढ़ी बढ़ आई है। वस्त्र मैले हो गये हैं। कहीं-कहीं जलने के निशान भी पड़ गये हैं। घुटने के पास फटा हुआ चूड़ीदार पैजामा है,

जिस पर रक्त के धब्बे दिखाई पड़ रहे हैं, पैर में पुराना जूता है, जिस पर गर्द छा रही है। पृथ्वीराज आँखें बन्द किये है। सामने खिड़की से हवा आ रही है, जिससे उसके बाल हिल रहे हैं। कुछ समय पहले थोड़ा पानी बरस चुका है, इसलिए वायु में कुछ शीतलता आ गई है।

दाहिनी ओर महाकवि चन्द बैठा हुआ है। उसकी आयु पृथ्वीराज की आयु के लगभग है। उसके कपड़े साफ़-सुथरे हैं। वेष में सादगी है, पर मुख पर दुःख की रेखाएँ अंकित हैं। वह पृथ्वीराज को करुणा-पूर्ण आँखों से देख रहा है। कुछ क्षणों तक दोनों स्थिर बैठे रहते हैं। फिर वेदना से सिहरकर पृथ्वीराज नीचे मुख किये ही, व्यथित स्वर में बोलता है। बोलने के साथ-साथ हिलने से साँकल बजती है।]

पृथ्वीराज—मत पूछो। कुछ मत पूछो। जिस क्षण ने पृथ्वीराज को पृथ्वीराज न रहने दिया उसकी--उस निर्दय क्षण की—बात मत पूछो! बड़ी कठिनाई से उस कष्ट को भुला सका हूँ। चंद! आखेट करते समय व्याघ्र के पंजे भी मुझे इस तीक्ष्णता से नहीं लगे। आह!

[सिर झुकाकर सोचता है।]

चंद—(दयार्द्र होकर) महाराज, यह आपका शरीर, जिससे शौर्य पसीना बनकर बहा करता था, आज इतना निस्तेज है। क्या गोर के आदमी इतने निर्दय होते हैं। एक शक्तिशाली राजा के साथ इतना पशुत्व!

पृथ्वीराज—पशुत्व! ओह, चंद! यदि उस समय तुम होते, तो काँप जाते! तुम्हारी लेखनी कुंठित हो जाती! मनुष्यता थर्रा उठती। आश्चर्य है, माता वसुन्धरा यह सब कृत्य कैसे देखती रही! और, इस पृथ्वीराज के शरीर पर इतना अत्याचार देख लेने पर भी वह माता कहला

सकती है? कवि, घोषणा कर दो कि वह वसुन्धरा माता नहीं, पिशाचिनी है !!

[भावोन्मेष में काँपता है।]

चंद—महाराज !

पृथ्वीराज—(उसी भावावेश में) और यह हवा ! इस समय शरीर से लगकर सुख देना चाहती है? पर उस समय? पापिनी ......!

[घृणा-प्रदर्शन]

चंद—यह उन्माद !

पृथ्वीराज—(तीव्रता से) चुप रहो, चंद ! इतना सहने के बाद भी मैं जीवित हूँ, आश्चर्य है। भयंकर रात थी। प्रेयसी संयोगिता के बिना यह रात हब्सिन बन गई थी। अन्धकार जैसे मेरी ओर घूर रहा था, मेरी आँखों में घुसकर। इतने में चार मशालें दिखलाई दीं। उनकी लौ इधर-उधर झूम रही थी। जैसे अन्धकार रूपी काले दैत्य की जिह्वाएँ हों। (सोचते हुए) पाँच आदमी सामने आये। चार मशालची और एक उनका सरदार। सरदार के हाथ में एक छुरा था। वह बोला—क़ैदी, आँखें निकाली जायेंगी !

[शैथिल्य-प्रदर्शन]

चंद—'यह धृष्टता !' (भौंहें सिकोड़ता है)

पृथ्वीराज—(उसी स्वर में) मैंने कहा......मैंने कहा, क़ैद करने के बाद यह ज़ुल्म? मनुष्यता से रहना सीखो, ख़ुदा के बन्दो ! जान से मार डालो पर एक राजा की इज़्ज़त रहने दो ! चंद, उसने कहा, चुप रह !

[गहरी साँस लेता है।]

चंद—(तड़पकर) क्या कहा ? चुप रह ?

पृथ्वीराज—हाँ, यही कहा। दिल्ली और अजमेर को भौंह के संकेत से नचानेवाले चौहान को ये शब्द भी सुनने पड़े ! यदि दिल्ली में ये शब्द मेरे कानों में पड़ते, तो......तो...... हाय, ज़बान लड़खड़ा रही है। बोला भी नहीं जाता।

चंद—(दुःख से) आह, आज महाराज पृथ्वीराज चौहान की यह दशा !

पृथ्वीराज—(अपने ही विचारों में) फिर सबने मिलकर मुझे ज़ोर से पकड़ लिया ! मेरे हाथ-पैर बँधे थे। मैं बिल्कुल असहाय था। चंद, उस समय, जीवन में पहली बार— केवल पहली बार—मैंने अपनी आँखों को आँसुओं से भरा पाया !

चंद—(करुणा से) महाराज, आपका गला सूख रहा है, पानी पी लीजिये।

पृथ्वीराज—(चंद की बात न सुनकर अपने ही विचारों में, मानो वह दृश्य उसकी आँखों में झूल रहा है।) दो गरम सूजे मेरी आँखों के पास लाये गये। मुझे उनकी गर्मी धीरे-धीरे पास आती हुई जान पड़ी। उस समय मुझे याद आया—संयोगिता ने एक बार इसी प्रकार धीरे-धीरे अपने मुख को समीप लाते हुए इन्हीं आँखों का चुंबन किया था। उस समय उन अधरों की मादकता मेरे पास इसी प्रकार धीरे-धीरे आती हुई जान पड़ी थी !

चंद—(चंचल होकर) अब आगे मत कहिये, मैं नहीं सुन सकूँगा।

पृथ्वीराज—एक क्षण में उन्होंने गर्म सूजों से मेरी पलकों को छेद डाला, मेरी पुतलियों को जलाकर.........

चंद—(अधीर होकर) अब न सुन सकूँगा यह क्रूरतापूर्ण अत्याचार !

पृथ्वीराज—(शांत होकर) अच्छा मत सुनो। पर इतना जान लो जिन आँखों में संयोगिता की मूर्ति अंकित थी, वे आँखें अब नहीं रहीं। जिन अतृप्त आँखों में सौन्दर्य-सुधा-पान की मादकता थी, वे आँखें अब नहीं रहीं।

चंद—(दृढ़ता से) और, जिन आँखों ने क्रूर दृष्टि से कितने ही राजाओं को निस्तेज कर दिया, जिन आँखों ने रक्तवर्ण होकर रण-क्षेत्र में लोहा बरसा दिया, वे आँखें ?

पृथ्वीराज—वे आँखें ? उफ ! वे आँखें तो जयचन्द के विश्वासघात की आग में जल गई। कवि, क्या रेवातट के सत्ताइसवें समयो की याद दिलाना चाहते हो ? इस समय मेरे सामने तुम्हारा 'रासो' कवि की कल्पना का साधारण अभ्यास-मात्र है। अब तो यह शरीर पृथ्वीराज चौहान नहीं रह गया।

चंद—महाराज........!

पृथ्वीराज—बार-बार मुझे महाराज क्यों कह रहे हो ? मैं एक क़ैदी हूँ।

[साँकल बज उठती है।]

चंद—पर मेरे लिये नहीं। फिर आपका शरीर क़ैदी है, आत्मा ? मुझे विश्वास है, आपकी आत्मा क़ैदी नहीं हो सकती। आप वही पृथ्वीराज चौहान हैं। उस समय आप भारत में थे, इस समय यहाँ। शेर पिंजड़े में बन्द रहने पर भी शेर ही कहलाता है।

[गर्व की मुद्रा]

पृथ्वीराज—यदि शेर को शेर ही रखना चाहते हो, तो चंद, कहाँ है तुम्हारी तलवार ? फाड़ दो मेरा यह वक्षःस्थल। पृथ्वीराज के गौरव से गिरे हुए इस प्राणी को प्राण की आवश्यकता नहीं। इस जीवन का एक-एक क्षण तुम्हारी तलवार की धार से बहुत पैना है। (साँकल का शब्द) लाओ अपनी तलवार।

चंद—तलवार ? यह तो गोरी के हुक्म से दरवाज़े पर ही मेरे हाथों से ले ली गई। मुझसे कहा गया कि मैं उसे भीतर नहीं ले जा सकता। वह तो दरवाज़े पर ही ले ली गई।

पृथ्वीराज—(दाँत पीसकर) ले ली गई ? और हाथ ! वे भी गोरी ने नहीं काट लिए ? नीच ! नारकी ! (ठहरकर) चन्द, तुम प्राणहीन होकर मेरे पास आये हो। जानते हो, वीरों के प्राण का नाम है, तलवार !

चंद—जानता हूँ, पर सुल्तान का हुक्म।

पृथ्वीराज—सुल्तान का हुक्म ? गोरी का ? और तुम उस हुक्म के आज्ञाकारी सेवक हो ?

चंद—(सँभलकर) किन्तु, किन्तु यह कटार (छिपी हुई कटार निकालकर) मैंने अपनी आत्मा की तरह छाती में छिपाकर रक्खी है। मैं इससे अपना काम कर सकता हूँ।

[तनकर खड़ा हो जाता है]

पृथ्वीराज—(बड़ी प्रसन्नता से) मेरे अच्छे चंद, महाकवि, मित्र, प्यारे ! आओ। मेरे जीवन की श्मशान के समान भयानक आग शान्त कर दो। लाओ तुम्हारा माथा चूमूँ। हाय ! मैं देख भी नहीं सकता, तुम्हारा माथा कहाँ है ?

चंद—महाराज ! विचलित न होइए । मैं चौहान को इस दैन्यावस्था में नहीं देख सकता । मैं अभी मृत्यु······

पृथ्वीराज—(बात काटकर) हाँ, देर न करो। देर न करो। मेरे चन्द, महाकवि, मित्र·········

चंद—महाराज ! मैं देर न करूँगा । यह छुरी छाती में घुसकर शीघ्र ही इस दुःख से मुक्त कर देगी । लीजिये, चूमता हूँ यह कटार ! (कटार चूमता है) लाइये, अन्तिम बार आपके चरण स्पर्श कर लूँ । (चरण-स्पर्श करता है) प्रणाम ! मैं आप पर नहीं; अपने ही शरीर पर आघात करूँगा । क्योंकि मैं आपकी यह दशा नहीं देख सकता ।

[कटार ऊपर तानता है]

पृथ्वीराज—(विचलित होकर) नहीं, नहीं ।

[जंजीर बज उठती है]

मेरे चंद, यह नहीं हो······

[चंद आत्मघात करना ही चाहता है कि पीछे से मुहम्मद गोरी निकलकर हाथ रोककर, कटार छीन लेता है । गोरी पैंतीस वर्ष का युवक है । शरीर गठा हुआ । मूँछें तनी हुई । वह फौजी वेष में है । कमर में तलवार है ।]

गोरी—(हँसकर) हँअ्, सरदार ! जिन्दगी इतनी नाचीज है ? यह दुनिया इसी तरह चलती है और चलती रहेगी । तुम इतने मायूस क्यों होते हो ? और भोले सरदार ! क्या तुम जानते हो कि मेरे घर में क्या हो रहा है, इसका पता मुझे नहीं ? गोर का सुल्तान दीवारों में अपनी दृष्टि रखता है ।

[चंद मलिन दृष्टि से गोरी को देखता है ।]

गोरी—(उत्साह से) पर वाह ! तुम कितने वफ़ादार हो ! अपने मालिक की यह हालत न देख सकनेवाले सरदार ! अपनी वफ़ादारी का इनाम माँगो ।

[चंद चुप रहता है ।]

गोरी—कुछ नहीं ? बोलो ! अभी तो बोल रहे थे । अंधे का पैर चूम रहे थे । उसकी आँखें नहीं चूमते ? अहा, कैसी .खूबसूरत हैं !

[व्यंग दृष्टि]

चंद—.खूबसूरत ? उस शेर की आँखें अब उसके दिल में हैं ।

गोरी—दिल में ? बहुत अच्छा ! यह शेर तुम्हें शायद उन्हीं आँखों से देख रहा है । पृथ्वीराज, तू मुझे किन आँखों से देख रहा है ?

पृथ्वीराज—(स्थिर भाव से) गोरी, तू देखने के लायक़ भी नहीं । अपनी इन अंधी आँखों से अगर मैं देख सकता, तो भी मैं तुझे देखना पसन्द नहीं करता । अच्छा हुआ. तूने इनका उजेला ले लिया । [ठहरकर] मैं तुझे क्या देखूँ ? तू भूल गया. उस बार मेरे तीरों से तेरी टोपी उड़ी थी । उस वक़्त मैंने तुझे पूरी नजर से देखा था । जब तू मेरे सामने से भागा था, तब मैंने तुझे पूरी नजर से देखा था । तू भूल गया ? मुझे दुःख है, सरदारों के कहने में आकर मैंने तेरा पीछा नहीं किया । मेरे तीर तेरे शरीर को न वेध सके······

[निराशा]

गोरी—[लापरवाही से] ख़ैर, तेरे तीर न सही, मेरे मामूली सूजे

तेरी आँखों को वेध सके। एक ही बात है, पर तेरे तीर......

चंद—(बीच ही से) सुल्तान, पृथ्वीराज के तीर—पृथ्वीराज आवाज़ पर तीर मारता है।

गोरी—(आश्चर्य से) आवाज़ पर! मारता होगा, पर अब तो वह अंधा है।

चंद—सुल्तान, आवाज़ पर तीर मारने के लिए आँख की जरूरत नहीं होती।

गोरी—सच?

[आश्चर्य प्रकट करता है।]

चंद—बिल्कुल सच। कल अपने अंधे वीर का यही तमाशा देखिएगा। यही मेरा इनाम समझें।

गोरी—(पृथ्वीराज की ओर देखकर) शाबाश कैदी, (चंद से) अच्छा, चंद! कल तुम्हारी खातिर इस अंधे की तीरंदाज़ी भी देख लूँगा। अच्छा, अब देर हो रही है। तुम मेरे साथ चल सकते हो? ख़ुदकशी पर तुमसे एक कहानी कहनी है। क़ैदी से मिलने का वक़्त अब पूरा हो गया। अब एक मिनट भी नहीं।

चंद—यह बतलाना तो सिपाही का काम है, आपका नहीं। आप तो सुल्तान हैं।

गोरी—तुम हमेशा मुझे सुल्तान के बजाय सिपाही ही समझो, सिर्फ़ सिपाही।

[दृढ़ता से खड़ा होता है।]

चंद—(पृथ्वीराज से) अच्छा तो अब चलता हूँ। प्रणाम महाराज पृथ्वीराज!

[प्रणाम करता है।]

विश्व-प्रेम की, उनके 'कर्त्तव्य' में कर्त्तव्य की, 'सेवापथ' में सेवापथ की, 'कुलीनता' में कुलीनता की, 'विकास' में विकास, 'विश्वासघात' में विश्वासघात, 'सिद्धान्त-स्वातन्त्र्य' में सिद्धान्त-स्वातन्त्र्य, 'ईर्षा' में ईर्षा आदि की। नाटकों का नामकरण विषयानुकूल ही हुआ है। कला कला के लिये वाले सिद्धान्त में उन्हें विश्वास नहीं। जान रस्किन और रोमा रोलां के समान। 'तीन नाटक' की भूमिका में दोनों से ही उन्होंने उद्धरण दिये हैं। विचारों का तीव्र संघर्ष ही उनके नाटकों का विशेष गुण है। वाह्य संघर्ष की अपेक्षा आन्तरिक संघर्ष ही उनके नाटकों में अधिक हैं। गोविन्ददासजी शेक्सपियर के रोमांटिक स्कूल के अनुयायी न होकर इब्सन के स्कूल के हैं।

'स्पर्धा' उनकी तीसरी जेल-यात्रा के समय नागपुर-जेल में एक ही दिन में लिखा गया था। इसमें यथार्थता की पराकाष्ठा है। अँग्रेज़ी के शब्दों और वाक्यों का प्रयोग अँग्रेज़ी पढ़े-लिखे भारतीय नवयुवकों की सामान्य बोलचाल की भाषा का पुट देने के विचार से लेखक ने किया है। उनकी क्लब-लाइफ़ का ही उसमें चित्रण है। कदाचित् लेखक को जॉन गैल्सवर्दी की Loyalties से प्रेरणा मिली है। उसमें भी नाटककार ने पश्चिम की फ़ैशनेबिल सोसायटी का रियलेस्टिक चित्रण किया है। 'स्पर्धा' का विषय स्पर्धा ही है। स्त्रियों का पुरुषों के साथ बराबरी का दावा, पुरुषों द्वारा अपनी रक्षा की अनिच्छा ही इसका विषय है। यूनियन क्लब के कमरे में लाकर प्रत्येक पात्र के व्यक्तिक दृष्टिकोण अलग प्वायन्ट आफ़ व्यू का दिग्दर्शन ही लेखक का ध्येय है। विचारों का संघर्ष, स्त्रियों का पुरुषों की बराबरी का दावा करने के विषय पर, न कि चरित्र-चित्रण के घात-प्रतिघात, इसमें हैं। लेखक की निर्लिप्त वासना अथवा Detachment देखने योग्य है। इसमें ही इसकी सफलता है।]

स्पर्द्धा

पात्र-पात्री

त्रिवेणीशंकर—वकील, यूनियन क्लब का सेक्रेटरी।

मिस कृष्णाकुमारी—वकील, यूनियन क्लब की ज्वाइण्ट सेक्रेटरी।

यूनियन क्लब का सभापति, आठ पुरुष सदस्य, दो स्त्री सदस्या, मार्कर आदि।

स्थान—एक नगर।

❀ ❀ ❀ ❀

स्थान—यूनियन क्लब का हॉल। समय—सन्ध्या।

[हॉल वर्तमान क्लबों के मुख्य हॉल के सदृश सजा हुआ है। तीन ओर दीवारें दीखती हैं। दाहनी ओर बायीं दीवारों के बीच में एक-एक दरवाज़ा है, जिनके किवाड़ों में काँच लगे हैं। सामने की दीवार में दो बड़ी खिड़कियाँ हैं। इनके किवाड़ भी काँच के हैं। दरवाज़ों और खिड़कियों के किवाड़ खुले हुए हैं, जिनमें से बाहर के उद्यान का कुछ भाग दिखाई देता है, जो डूबते हुए सूर्य की सुनहरी किरणों में रँग रहा है। दोनों खिड़कियों के बीच में दो ऊँचे 'बिलियर्ड सोफा' रक्खे हैं, और इनके ऊपर दीवार में एक घड़ी लगी है, जिसमें पाँच बज रहे हैं। दोनों सोफों के सामने बिलियर्ड टेबिल है, जिसके ऊपर छः बत्तीवाला बिजली का झाड़ झूल रहा है। दाहिनी खिड़की के एक ओर 'क्यू (बिलियर्ड खेलने के डंडे) स्टेण्ड' है और बायीं खिड़की के एक ओर बिलियर्ड का

अग्निहोत्री—(पुनः खेलते हुए) चाहे मैं इस प्रकार की सेक्स-मोरैलिटी पर धार्मिक दृष्टि से विश्वास न रखता होऊँ, पर समाज के सुख के लिये उस पर मेरा दृढ़ विश्वास है। मेरा और कृष्णाकुमारी का वकालत की सीनियारिटी और जूनियारिटी के अतिरिक्त और किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है।

वाजपेयी—मैं यह नहीं कहता कि है, मैं तो केवल इतना ही कहता हूँ कि कई लोग ऐसा कहते हैं।

अग्निहोत्री—लोगों को कुछ भी कहने में क्या लगता है। उस पर्चे में तो यहाँ तक लिख डाला गया है कि विद्यार्थी-अवस्था में भी कृष्णाकुमारी का यही हाल था। इस देश में महिलाओं ने पर्दा छोड़कर जहाँ किसी प्रकार के भी सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया कि उनके चरित्र पर ही आक्षेप होने लगते है। उनका किसी से बात करना, किसी के घर जाना ही उनके चरित्र को दूषित मान लेने के लिये यथेष्ट समझ लिया जाता है।

वाजपेयी—परन्तु मिस्टर अग्निहोत्री, मिस कृष्णाकुमारी के सम्बन्ध में जो चर्चा हो रही है उसमें तो अवश्य सचाई जान पड़ती है।

अग्निहोत्री—मैं इस सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता, इसी लिये तो मैंने तुमसे पूछा कि जो आक्षेप उन पर किये गये हैं उनमें कुछ सत्यता है या……

[दाहने द्वार से चार पुरुषों का प्रवेश। चारों युवक हैं, टेनिस शर्ट, ढीला पतलून और टेनिस शू पहने हुए हैं। एक हाथ में टेनिस-रेकिट लिये हैं और दूसरे हाथ में लिये हुए रूमाल से मुँह और गर्दन का पसीना पोंछ रहे हैं।]

पहला—ए वैरी त्रिस्क गेम वी हैड टु-डे।

दूसरा—नो डाउट।

तीसरा—ऑफकोर्स।

चोथा—सर्टेनली।

पहला—(अग्निहोत्री और वाजपेयी को देखकर) ओ! मिस्टर अग्निहोत्री और वाजपेयी तशरीफ़ ले आये!

दूसरा—(कार्ड टेबिल की ओर बढ़ाते हुए) आज का इटना इम्पार्टेंट मीटिंग क्या डिन भी न आयेगा डॉक्टर खान।

[चारों, कार्ड टेबिल के चारों ओर बैठ जाते हैं।]

तीसरा—(मार्कर से) लो मार्कर, इन रेकिटों को रख दो, और देखो, फ़ौरन कोल्डड्रिंक लाओ। वहुत पसीना आ रहा रहा है। (अपने साथियों से) कहिये, सब लोग पीइयेगा न?

चौथा—मैं तो जरूर पिऊँगा।

दूसरा—और मैं टो ज़ुरूर।

[मार्कर चारों रेकिट उठाकर वायें द्वार से जाता है]

खान—(अग्निहोत्री से) कहिये, मिस्टर अग्निहोत्री, आपके जूनियर पर तो निहायत गन्दा कीचड़ फेंका गया है।

अग्निहोत्री—निस्सन्देह, और वह भी, डाक्टर, एक पुरुप ने एक महिला पर फेंका है।

खान का दूसरा साथी—मोस्ट अनसिवलरस एक्ट इण्डीड।

खान का तीसरा साथी—आप लोगों को कदाचित् एक बात नहीं मालूम?

खान—क्या?

वही—इसके पूर्व मिस्टर शर्मा पर इससे भी कहीं बुरे आक्षेप मिस कृष्णाकुमारी की पार्टी ने किये थे।

अग्निहोत्री—हाँ, हाँ, वह तो मालूम है, किन्तु मिस्टर शर्मा पुरुष हैं और मिस कृष्णाकुमारी महिला।

खान का दूसरा साथी—मोस्ट अनसिविलरस ऐक्ट इण्डीड।

खान का चौथा साथी—बात तो यह है कि आजकल की पब्लिक लाइफ़ ही निहायत गन्दी हो गई है।

खान—बेशक, बेशक।

[मार्कर का एक बैरा के साथ प्रवेश। मार्कर एक छोटी-सी टेबिल लिये हैं और बैरा एक बड़ी-सी रकाबी में चार काँच के गिलास। गिलासों में बर्फ और लेमनेड आदि हैं। मार्कर कार्ड टेबिल के निकट अपनी छोटी टेबिल रख देता है और बैरा उस पर रकाबी। फिर दोनों एक ओर हट-कर खड़े हो जाते हैं।]

खान का तीसरा साथी—(एक गिलास उठाकर घड़ी की ओर देखते हुए) मीटिंग में तो अभी देर है। तब तक ब्रिज न हो जाय।

खान—(दूसरा गिलास उठाकर) हाँ, हाँ, तब तो शायद रबर भी हो जायगा।

[खान का तीसरा साथी थोड़ा-सा लेमनेड पीकर गिलास टेबिल पर रख ताश फेंटता और बाँटता है। उसके दो साथी सिगरेट जलाते हैं।]

वाजपेयी—(दाहनी ओर के द्वार को देखते हुए) लीजिये, बिलियर्ड के चेम्पियन साहब और मिस्टर मजूमदार आ रहे हैं।

[दाहनी ओर के द्वार से दो युवकों का प्रवेश । दोनों की अवस्था लगभग तीस वर्ष की है । दोनों अँगरेज़ी ढंग के कपड़े पहने हुए हैं ।]

खान—हलो ! मेसर्स वर्मा ओर मजूमदार पहुँच ही गये । भई, मीटिंग का कोरम तो हो गया ।

मजूमदार—हाँ, हाँ, आज तो वड़ा आवश्यक ठो मीटिंग होना है । पर अबी मिस्टर शर्मा और मिश कृष्णाकुमारी तो आयाई नेई ।

वर्मा—और सभापति महाशय भी तो नहीं आये; (घड़ी की ओर देखकर) । देर भी है । तब तक चलो न, मिस्टर मजूमदार, बिलियर्ड ही उड़ जाय ।

मजूमदार—हाँ, हाँ, हम तैयार हैं, चलो ।

[दोनों बिलियर्ड टेबिल के निकट बढ़ते हैं ।]

खान—(ताश के अपने पत्ते देखते हुए) टू हार्ट्स ।

खान का दूसरा साथी—टू स्पेड्स ।

खान का तीसरा साथी—थ्री हार्ट्स ।

खान का चौथा साथी—थ्री स्पेड्स ।

खान—थ्री नो ट्रम्प्स ।

खान का दूसरा साथी—थ्री नो ट्रम्पस । वैल, डबल ।

[खान का दूसरा साथी पत्ता चलता है और तीसरा साथी अपने पत्ते खोलकर टेबिल पर रखता है ।]

वर्मा—(बिलियर्ड खेलते हुए) कैनन ।

वाजपेयी—वाह ! मिस्टर वर्मा, वाह ! खेलना आरम्भ करते देर न हुई और गोलियाँ लड़ने लगीं ।

अग्निहोत्री—ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार यूनियन क्लब में महिला सदस्या होते देर न हुई और लड़ाई आरम्भ हो गई।

खान का दूसरा साथी—मोस्ट अनसिविलरस एक्ट इण्डीड।

खान—लीजिये, जनाब, हमारे क्लब में तो शायर भी मौजूद हैं! गजब की उपमा दी है, मिस्टर अग्निहोत्री।

वर्मा—अरे, मिस्टर अग्निहोत्री ही तो आज के सच्चे हीरो हैं।

खान—यह कैसे ?

वर्मा—अपने जूनियर को बचाकर ये वीरता न दिखायेंगे ?

खान—उनका बचाव करना तो हर मेम्बर का फर्ज़ है।

वर्मा—यह क्यों ?

खान—इसलिये कि आदमियों का काम ही औरतों की हिफ़ाजत करना है।

वर्मा—और शर्मा पर जो उससे कहीं घृणित आक्षेप हुए हैं ?

मजूमदार—देखो, महाशय लोगो, दोनों का विरुद्ध जो ठो विज्ञापन निकला है उसमें किसी का नाम नेई है। हम लोग कैसे यह कह शकता है कि मिस्टर शर्मा ने मिश कृष्णा-कुमारी का विरुद्ध विज्ञापन निकाला और मिश कृष्णा-कुमारी ने मिस्टर शर्मा का विरुद्ध ?

वर्मा—पर मेरा तो इस सम्बन्ध में मत ही दूसरा है।

खान—वह क्या ?

वर्मा—इस प्रकार का अपवाद समाज का सच्चा जीवन है। समाज से अपवाद निकाल दीजिये, बस, समाज मुर्दा हो जायगा। फिर चुनाव तो आजकल की सभ्य होली है। इस समय भी यदि एक दूसरे को गालियाँ न दी जायेंगी तो फिर कब दी जायँगी ? जिन्होंने वे दोनों इश्तहार लिखे

हैं वे रसिक व्यक्ति हैं। गालियाँ अवश्य दी हैं, पर कितनी सुन्दरता से, एक-एक वाक्य, शब्द और मात्रा से रस टपकता है।

खान का तीसरा साथी—और फिर एक लेखक हैं और दूसरी लेखिका।

[अग्निहोत्री को छोड़कर सब हँसते हैं।]

अग्निहोत्री—मुझे बड़ा दुःख है, मिस्टर वर्मा कि आप सारे विषय को इतना लाइटली ले रहे हैं।

खान का दूसरा साथी—मोस्ट अनसिविलरस एक्ट इण्डीड।

वर्मा—मैंने तो पहले ही कहा था कि आज के हीरो मिस्टर अग्नि-होत्री हैं। हाँ, तो, मेरा इस विषय को लाइटली लेना आपको पसन्द नहीं आया; लीजिये, मैं अत्यन्त गम्भीर हो जाता हूँ।

[वर्मा क्यू को बिलियर्ड टेबिल से टिका, कैरम टेबिल के निकट की एक कुर्सी पर बैठ जाता है और अपना मुख हथेली पर लेता है। उसकी मुख-मुद्रा अत्यन्त ही गम्भीर हो जाती है। आँखें बन्द हो जाती हैं, भौहें ऊपर को चढ़ जाती हैं और नाक के नथुनों से ज़ोर-ज़ोर से साँस निकलने लग जाती है। सब लोग ज़ोर से हँस पड़ते हैं।]

खान—लीजिये, जनाब, हमारे क्लब में शायर मेम्बर ही नहीं, ऐक्टर्स भी हैं।

[सब लोग फिर हँस पड़ते हैं।]

वर्मा—डाक्टर खान, मैं तो बीच बाज़ार में छप्पर पर खड़े होकर कहने को तैयार हूँ कि मनुष्य-स्वभाव इस प्रकार की बातों से आनन्द पाता है। लोगों की ज़बान को आप कभी बन्द नहीं कर सकते; लोग खाते घर का हैं और बात पराई करते हैं। किसी के कानों को भी आप बन्द नहीं कर सकते। लोग इस प्रकार के अपवाद बड़े चाव से सुनते और फिर उनमें नमक-मिर्च लगाकर दूसरों में फैलाते है। जिन समाचार-पत्रों को हम लोकमत बनाने और जागृत करनेवाला समझते है वे सदा इस प्रकार के अपवादों की मुँह फाड़कर प्रतीक्षा किया करते हैं। किसी भी समाचार-पत्र के कार्यालय में जाकर पूछ आइये। पत्र के जिस अंक में इस प्रकार के अपवाद छपते हैं उसी की सबसे अधिक बिक्री होती है। सबसे शीघ्र और अधिक यदि कोई समाचार फैलता है तो अपवादजनक। अपवाद मनुष्य का सबसे अधिक प्रिय विषय है। हम लोगों में से प्रत्येक मनुष्य अपवाद करता है, सुनता है, नमक-मिर्च लगा उसे बढ़ाता है और उसमें आनन्द पाता है। पर, हाँ, इतना अन्तर अवश्य है कि मिस्टर अग्निहोत्री और उनके सदृश विचारवाले व्यक्ति वही कार्य बुरा कहते हुए करते हैं और मैं उसे बुरा कहता ही नहीं। मैंने कहा न कि मैं तो अपवाद को समाज का जीवन मानता हूँ। (फिर खेलने लगता है।)

अग्निहोत्री—पहिले तो मैं यही नहीं मानता कि इन इश्तहारों को पढ़कर सबको आनन्द हुआ है। मनुष्य केवल आनन्द-दायक वस्तु को ही बार-बार नहीं पढ़ता और सुनता,

किन्तु उन बातों को भी बार-बार पढ़ता या सुनता है जो गम्भीर होती हैं।

वर्मा—तो उन पर्चों में बड़ी गम्भीर बातें थीं ?

[सब लोग फिर हँस पड़ते हैं।]

अग्निहोत्री—अवश्य ऐसी बातें थीं जिनका परिणाम अत्यन्त गम्भीर निकल सकता है।

वर्मा—और उन्हें पढ़कर किसी को आनन्द नहीं आया ?

अग्निहोत्री—मुझे नहीं आया, इतना मैं कह सकता हूँ।

वर्मा—आपकी क्या बात है, आप तो साधु हैं।

[सब लोग फिर हँसते हैं।]

अग्निहोत्री—(चिढ़कर रूखे स्वर मे) देखिये, मिस्टर वर्मा, मज़ाक तो संसार में किसी का भी उड़ाया जा सकता है।

वर्मा—अब कोई थ्रेट न दे बैठियेगा, नहीं तो न जाने मेरी क्या दशा हो जायगी। आपका रूखा स्वर सुनकर ही मेरे हाथ-पैर काँपने लगे हैं। [हाथ-पैर काँपने लग जाते हैं, आँखें बन्द हो जाती हैं और क्यू हाथ से छूट जमीन पर गिर पड़ता है। सब लोग जोर से हँस पड़ते हैं।]

खान—(हँसते हुए) एक्सलेंट एक्टिंग, सिम्पली ड्रामेटिक।

अग्निहोत्री—(मुस्कराकर) इसमें सन्देह नहीं, मिस्टर वर्मा सुन्दर नट हैं।

वर्मा—(अग्निहोत्री के निकट जा झुककर तीन बार सलाम करते हुए) आदाब अर्ज़ है, आदाब अर्ज़ है !

[सब लोग फिर हँस पड़ते हैं, वर्मा क्यू उठाकर खेलने लगता है।]

अग्निहोत्री—(लम्बी साँस लेकर) मिस्टर वर्मा, मैं आपसे फिर कहता हूँ कि जिस विषय को आप इतना लाइटली ले रहे हैं, तथा मुझे भय है कि आपके कारण यहाँ अब तक के उपस्थित सज्जन ले रहे हैं, वह विषय इतना लाइटली लेने का नहीं है।

खान का दूसरा साथी – मोस्ट अनसिविलरस एक्ट इण्डीड।

वर्मा—पर, मैं क्या करूँ, मिस्टर अग्निहोत्री, मैं तो संसार में किसी विषय को गम्भीर मानता ही नहीं, परन्तु यदि आप हर वस्तु को गम्भीर दृष्टि के अतिरिक्त अन्य किसी दृष्टि से देखना ही नहीं चाहते तो अपवाद को गम्भीर दृष्टि से ही देख लीजिये। मैं सिद्ध किये देता हूँ कि अपवाद समाज के लिये कितना आवश्यक है ?

अग्निहोत्री -- समाज के लिये अपवाद आवश्यक ?

वर्मा—नितान्त। बिना इसके समाज का एक व्यक्ति भी सुखी नहीं रह सकता। (फिर खेलना रोककर क्यू को घुमाते-घुमाते) देखिये, मिस्टर अग्निहोत्री, यह जीवन-पथ फिसलन से भरा हुआ है और मनुष्य, चाहे वह अपने को कितना ही ज्ञानवान् क्यों न माने, एक अज्ञानी बच्चे से अधिक नहीं है। हरएक व्यक्ति फिसलन में बार-बार फिसलता है। जब वह फिसलता है तब किसी फिसलते हुए बच्चे के समान चारों ओर दृष्टि घुमा-घुमाकर देखता है कि कोई उसकी फिसलन देख तो नहीं रहा है, परन्तु उसी बाल-प्रवृत्ति के अनुसार दूसरों का फिसलना बड़े ध्यान से देखता और उसे बढ़ा-बढ़ाकर दूसरों से कहता है।

यह इसलिये कि यदि कभी उसका फिसलना और गिरना किसी ने देखा या सुना हो तो दूसरे के फिसलने और गिरने से उसका फिसलना और गिरना छिप जाय। इस प्रकार यह अपवाद एक-दूसरे की फिसलन को ढाँककर हरएक को सुख देता है। अब कहिये अपवाद अच्छी वस्तु है या बुरी।

खान—वाह! मिस्टर वर्मा, वाह! आप तो इस वक़्त बिल्कुल ही फ़िलासफ़र हो गये!

अग्निहोत्री—परन्तु आपकी यह फ़िलासफ़ी आदि से अन्त तक भूलों से भरी हुई है। अपवाद करने और सुननेवाले अधिक इसलिये हैं कि संसार में इस समय मूर्ख ही अधिक हैं।

वर्मा—और संसार सदा ऐसा ही रहनेवाला है। एक-दूसरे पर हँसते हुए समय व्यतीत करना यदि मूर्खता ही मान ली जाय तो इससे अधिक बुद्धिमानी की मैं दूसरी कोई बात भी नहीं देखता। हँसी-ख़ुशी से इस जीवन को व्यतीत करने से अधिक बुद्धिमानी की और बात ही क्या हो सकती है?

खान—बेशक!

खान का दूसरा साथी—अनडाउटेडली।

वर्मा—(फिर खेलना रोककर) अच्छा देखो, अब अपवाद को एक दूसरी दृष्टि से देखो।

खान—वह कौनसी?

वर्मा—वह यह कि इसके बिना मनुष्य-समाज के वार्तालाप में कोई आनन्द रहेगा या नहीं। मनुष्य और पशु-समाज

में सबसे बड़ा अन्तर यही तो है न कि मनुष्य अपने समाज में सभ्यतापूर्वक संभाषण कर सकता है और पशु चिल्लाते हैं।

खान—बेशक !

वर्मा—इस संभाषण का जीवन ही अपवाद है।

अग्निहोत्री—अपवाद नहीं, व्यंग को आप अवश्य कुछ दूर तक संभाषण का जीवन कह सकते हैं।

वर्मा—अजी, अग्निहोत्रीजी, थोड़े-बहुत अपवाद के मिश्रण के बिना व्यंग हो ही नहीं सकता।

खान—यह व्यंग कौन-सा जानवर है ?

वर्मा—अँगरेज़ी में आप इसे विट कह सकते हैं।

खान का दूसरा साथी—ओ !

खान—अच्छा, अच्छा !

अग्निहोत्री—नहीं, यह बात नहीं है। व्यंग बिना अपवाद के मिश्रण के भी हो सकता है। हाँ, व्यंग में अपवाद सरलता से मिलाया जा सकता है; परन्तु वैसा व्यंग तो आनन्ददायक न होकर विषैले डंक की तरह दुखदायी होता है। अपवाद रूपी शस्त्र को लिये हुए तीन इंच लम्बी जीभ बड़े से बड़े मनुष्य को आहत कर सकती है। तलवार का प्रहार चाहे खाली भी जाय, पर अपवाद का प्रहार खाली नहीं जाता। वह बड़े-से-बड़े मनुष्य को भी धक्का लगा सकता है, चाहे वह भाषा द्वारा जीभ की नोक से किया जाय या पर्चों के द्वारा कलम की नोक से। फिर, मिस्टर वर्मा, यह तो पुरुष ने

एक प्रतिष्ठित महिला के चरित्र पर घृणित आक्षेप किया है।

खान का दूसरा साथी—मोस्ट अनसिविलरस एक्ट इण्डीड।

वर्मा—और जो मिस्टर शर्मा पर उससे भी बुरे आक्षेप हुए हैं वे ?

अग्निहोत्री—वह बिल्कुल दूसरी बात है।

खान—पर जैसा अभी मिस्टर मजूमदार ने कहा है कि इन इश्तहारों के लिखनेवाले हमें कहाँ मालूम हैं ? दोनों पर्चे गुमनाम हैं, यहाँ तक कि जिन प्रेस में वे छपे हैं उन तक का नाम नहीं छपा।

मजूमदार—अवश्य।

अग्निहोत्री—पर लेखकों का अनुमान करना कठिन नहीं है।

वर्मा—[फिर खेलना बन्द कर] अच्छा, मिस्टर अग्निहोत्री, अब सारे विषय को जरा ज्ञान-दृष्टि से देखिए।

अग्निहोत्री—किस प्रकार ?

वर्मा—जो आक्षेप मिस कृष्णाकुमारी और मिस्टर त्रिवेणीशंकर पर किये गये हैं वे उनके चरित्र के सम्बन्ध में ही हैं न ?

अग्निहोत्री—हाँ।

वर्मा—अब देखिए कि सेक्स-मोरेलिटी ही कहाँ तक स्वाभाविक और उचित है ?

[सब लोग हँस पड़ते हैं। दाहनी ओर के द्वार से त्रिवेणीशंकर का प्रवेश। उसकी अवस्था लगभग तीस वर्ष की है। वह शेरवानी और चूड़ीदार पायजामा पहने तथा खादी की टोपी लगाये है। सोने के फ्रेम का चश्मा भी लगाये हुए है।]

वर्मा—ओ ! हियर कम्स मिस्टर शर्मा ! हिप-हिप हुर्रे ।

शर्मा—[मुस्कराते हुए] ओहो ! आज तो आपने मेरा बड़े जोर का स्वागत किया ।

खान—आज भी अगर वेलकम न किये जायेंगे तो फिर कब किये जायेंगे, मिस्टर शर्मा ?

[शर्मा बिलियर्ड-सोफा पर बैठ जाता है । नेपथ्य में मोटर आने और खड़े होने की ज़ोर से आवाज़ होती है ।]

वर्मा—ओ ! देयर कम्स दी प्रेसीडेण्ट ! नगर भर में सबसे अधिक यही मोटर चिल्लाती है । ठीक भी है, जितने जोर से प्रेसीडेण्ट चिल्लाते हैं, उतने जोर से तो उनकी मोटर को भी चिल्लाना चाहिये ।

[सब लोग फिर हँस पड़ते हैं । बायीं ओर के द्वार से एक अधेड़ व्यक्ति का प्रवेश । शरीर में ये अन्य उपस्थित लोगों की अपेक्षा कुछ मोटे हैं । अँगरेज़ी ढंग के कपड़े पहने हैं । मोटे फ्रेम का चश्मा लगाये हैं और मोटा-सा सिगार पी रहे हैं । सब लोगों से मिल-भेंट कर ये भी बिलियर्ड-सोफा पर त्रिवेणीशंकर के निकट बैठ जाते हैं ।]

खान—(घड़ी को देखते हुए) तो अब मीटिंग में बहुत देर नहीं है।

सभापति—हाँ, समय होता ही है । बस, मिस कृष्णाकुमारी के आने भर का विलम्ब है । पर वे तो ठीक समय पर आ ही जायेंगी । (मार्कर से) मार्कर, बीच में एक टेबिल और कुछ कुर्सियाँ लगा दो ।

मार्कर—जो हुक्म हज़ूर ।

[बायीं ओर के द्वार से मार्कर बाहर जाता है । कुछ देर तक सन्नाटा रहता है । बिलियर्ड, ताश और कैरम के

खेल चलते रहते हैं। मार्कर एक बड़ी-सी गोल टेबिल तथा टेनिस के गेंद उठानेवाले लड़के (जो ख़ाकी वर्दी पहने हैं) कुर्सियाँ लेकर बायें द्वार से आते हैं। उसी समय नेपथ्य में घोड़े के टाप, घुँघरू और ताँगे की घंटी सुनायी देते हैं। कुछ ही देर में ताँगे के खड़े होने की आवाज़ आती है। दाहनी ओर के द्वार से मिस कृष्णाकुमारी अन्य दो महिलाओं के साथ आती हैं। तीनों महिलाएँ सुन्दर युवती हैं। भिन्न-भिन्न रंगों की साड़ियाँ, शलूके, मोजे और ऊँची एँड़ी के जूते पहने हैं! कान में इयररिंग, गले में नेकलेस, हाथों में काँच की दो-दो चूड़ियाँ और बायीं कलाई पर रिस्टवाच है। एक महिला सोने के फ्रेम का चश्मा भी लगाये है। सब लोग उठकर उनका स्वागत करते हैं। वे तीनों भी बिलियर्ड के दूसरे सोफा पर बैठ जाती हैं। कुछ ही देर में मार्कर और लड़के हॉल के बीच के खाली स्थान में एक गोल टेबिल और उसके चारों ओर पन्द्रह कुर्सियाँ रख देते हैं।]

सभापति—(घड़ी की ओर देखकर) मीटिंग का समय हो चुका। मैं समझता हूँ, हम लोगों को अपना कार्य आरम्भ कर देना चाहिए।

त्रिवेणीशंकर—जी हाँ, समय तो हो चुका।

खान—फिर देर क्यों की जाय? दर्दनाक सब्जेक्ट ज़रूर है, पर फैसला तो करना ही होगा।

[सब खेल बन्द कर देते हैं। सभापति उठकर बीच की कुर्सी पर बैठता है। उसकी दाहनी ओर मिस कृष्णा-कुमारी और बायीं ओर त्रिवेणीशंकर बैठते हैं। बाक़ी सब

व्यक्ति भी अन्य कुर्सियों पर बैठते हैं। दो कुर्सियाँ खाली रहती हैं।]

सभापति—(खड़े होकर) बहनो और भाइयो, आज हम लोग यहाँ जिस कार्य के लिये एकत्रित हुए हैं उसे आप लोग भली-भाँति जानते हैं। हमारे यूनियन क्लब के इतिहास में आज का दिवस अत्यन्त सन्तापकारी है। जिस यूनियन क्लब का उद्देश्य पुरुषों और महिलाओं का सच्चे सामाजिक जीवन का निर्माण करना है उसी के पुरुष और महिला पदाधिकारियों में जब आज इस प्रकार का झगड़ा उठ खड़ा हुआ है तब हमारे लिये आज से अधिक दुःखदायक और कौन-सा दिवस हो सकता है ? (कुछ ठहरकर गला साफ़ करते हुए) कौंसिल का चुनाव होनेवाला है। चुनाव में एक ही क्षेत्र से खड़े होनेवाले दो प्रतिस्पर्द्धी उम्मीदवारों में स्पर्द्धा होना स्वाभाविक है, परन्तु स्पर्द्धा एक बात है और झगड़ा सर्वदा दूसरी। स्पर्द्धा में प्रतिस्पर्द्धियों की आलोचना भी स्वभाव-सिद्ध है, परन्तु आलोचना एक बात है और गालियाँ बिलकुल दूसरी। फिर आपके सामने जो विषय उपस्थित है वह साधारण कलह और तू-तू मैं-मैं का है भी नहीं, परन्तु आपके क्लब की पदाधिकारिणी महोदया के चरित्र पर घृणित आक्षेप का है और वह आक्षेप भी एक पुरुष के द्वारा किया गया है। जो पुरुष अपने को स्त्रियों के रक्षक मानते हैं, जो अपनी परित्राण-शूरता की दुहाई देते हैं वे यदि······

ग्यान का दूसरा साथी—मोस्ट अनसिविलरस एक्ट इण्डीड।

वर्मा—(खड़े होकर) सभापति महोदय, यद्यपि आपके भाषण के

बीच में मेरा बोलना असंगत समझा जायेगा, तथापि जब मैं देखता हूँ कि जहाँ आपको अपनी कार्यवाही निष्पक्ष रूप से करनी चाहिये, वहाँ आप अपना आरम्भिक भाषण ही एक पक्ष में दे रहे हैं, तब मुझसे बिना बोले नहीं रहा जाता। मैं समझता हूँ, विषय को मीटिंग के सम्मुख उपस्थित कर देने के अतिरिक्त किसी एक पक्ष में आपका इस प्रकार का भाषण युक्ति-संगत नहीं है। मुझे क्षमा कीजियेगा, मैंने आपके भाषण के बीच में दखल दिया है, परन्तु······

सभापति—(मुस्कराते हुए) मिस्टर वर्मा, मैं अपने कर्त्तव्य को भली-भाँति जानता हूँ। (वर्मा बैठ जाता है) सभापति को किसी भी विषय पर अपना व्यक्तिगत मत देने का पूर्ण अधिकार है, परन्तु ख़ैर, मुझे जो कुछ कहना था वह मैं कह चुका, और मुझे कुछ नहीं कहना है। अब आपके सामने मिस विजया अपना प्रस्ताव उपस्थित करेंगी, जिसके लिए आज की मीटिंग बुलाई गयी है।

[बैठ जाता है। कुछ तालियाँ बजती हैं।]

विजया—(खड़ी होकर) जो प्रस्ताव मैं आपके सामने उपस्थित करना चाहती हूँ वह इस प्रकार है। (एक काग़ज़ शलूके की ज़ेब से निकालकर पढ़ती है।) 'यूनियन क्लब के सदस्यों की यह सभा मिस्टर त्रिवेणीशंकर शर्मा की पार्टी के द्वारा मिस कृष्णाकुमारी के चरित्र पर किये गये आक्षेपों को सर्वथा मिथ्या, अत्यन्त निन्दनीय और महान् घृणित समझती है। इस सभा की सम्मति है कि पुरुषों का महिलाओं पर इस प्रकार का आक्षेप

समाज में पुरुषों की ही प्रतिष्ठा को घटाता है और महिलाओं की रक्षा के उनके नैसर्गिक अधिकारों की इतिश्री करता है……

खान का दूसरा साथी—(बीच ही में) मोस्ट अनसिविलरस एक्ट इण्डीड ।

विजया—'चूँकि मिस्टर शर्मा ने अपनी पार्टी के इस घोर पापाचार का अब तक कोई खण्डन नहीं किया है, इसलिए यह सभा घोषित करती है कि मिस्टर त्रिवेणीशंकर पर इस सभा का विश्वास नहीं है और जनता कौंसिल के लिए मिस कृष्णाकुमारी को ही अपने वोट देवे।' (कुछ ठहर कर) भाइयो और बहनो, (लम्बी साँस लेकर) इस प्रस्ताव पर मैं क्या भाषण दूँ। इसे पढ़ने मात्र से मेरा हृदय भर आया है। मिस कृष्णाकुमारी पर किये गये आक्षेपों से केवल उन्हें दुःख पहुँचा हो, केवल उनका अपमान हुआ हो, यह बात नहीं है, इन आक्षेपों से नगर के समस्त नारी-समाज को दुःख पहुँचा है, उसका अपमान हुआ है।

खान का दूसरा साथी—मोस्ट अनशिविलरस एक्ट इण्डीड ।

कुछ व्यक्ति—शेम-शेम। शेम-शेम !

विजया—जो आक्षेप मिस कृष्णाकुमारी पर हुए हैं, वे किस प्रकार के हैं, यह केवल आप ही लोग जानते हों यह नहीं, सारे नगर-निवासी, और वे ही नहीं, इस नगर के बाहर भी दूर-दूर तक की जनता जानती है, पुरुष महिला पर इस प्रकार के आक्षेप करें, यह संसार के इतिहास में नवीन घटना है। जब मिस कृष्णाकुमारी

किसी कार्य के निमित्त घर से बाहर निकलती हैं तब सड़कों पर अनेक पुरुष मुँह फेर कर हँसते और तरह-तरह के ठट्ठे उड़ाते हैं। क्या यही पुरुषों का स्त्रियों की रक्षा करने और उन्हें समानाधिकार देने का दावा है ?

खान का दूसरा साथी—मोस्ट अनसिविलरस एक्ट इराडीड।

कुछ व्यक्ति—धिक्कार है! धिक्कार है!

विजया—यह कहा जाता है कि किस व्यक्ति ने मिस कृष्णाकुमारी पर ये आक्षेप किये हैं, यह ज्ञात नहीं है, परन्तु यह तो बड़ी पोची दलील है। यदि मिस कृष्णाकुमारी पर किये गये आक्षेपों में मिस्टर शर्मा और उनकी पार्टी का हाथ नहीं है तो उन्होंने और उनके दल ने उस पर्चे का अब तक खण्डन क्यों नहीं किया? यदि इस इश्तहार के लेखक या मुद्रक का नाम हमें मालूम होता तो, विश्वास रखिये, इस विषय को हम क्लब में न लाकर अदालत में ले जातीं, परन्तु आज तो हमारे पास इसे इस क्लब में लाने के अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं है। पुरुषों ने इस क्लब को पुरुष और स्त्री दोनों वर्गों के सच्चे यूनियन के लिये स्थापित किया है। पुरुषों के अनुनय-विनय करने से हम तीन महिलाएँ इसकी सदस्या हुई हैं। यदि आप सचमुच यह चाहते हैं कि दोनों वर्गों के उत्कर्ष, दोनों वर्गों के सामाजिक जीवन के विकासार्थ इस क्लब में स्त्री सदस्याओं की संख्या बढ़े तो यह अवसर है जब आप मेरे प्रस्ताव को पास कर स्त्री-समाज को विश्वास दिला दीजिये कि पुरुष स्त्रियों को सामाजिक और राजनैतिक जीवन में सचमुच आगे बढ़ाना चाहते हैं। इस क्लब में आज पुरुष ही अधिक

संख्या में हैं, अतः उन्हें अच्छी तरह से विचार कर लेना चाहिये कि मेरे प्रस्ताव पर मत देते समय उनका कितना बड़ा उत्तरदायित्व है। (बैठ जाती है।)

कुछ व्यक्ति—हियर-हियर ! हियर-हियर ! (तालियाँ)

अग्निहोत्री—(खड़े होकर) सभापति महोदय, बहनो और भाइयो, मैं मिस विजया के प्रस्ताव का हार्दिक समर्थन करता हूँ। इस प्रस्ताव पर भाषण आरम्भ करते समय मिस विजया ने कहा था कि प्रस्ताव पढ़ने-मात्र से उनका हृदय भर आया है, परन्तु उसके पश्चात् तो हम लोगों ने मिस विजया का करुणा-पूर्ण भाषण भी सुना है, अतः मेरा विश्वास है कि यहाँ एक भी पुरुष ऐसा न होगा जिसका केवल हृदय ही नहीं, परन्तु शरीर का प्रत्येक परमाणु गद्‌गद् न हो गया हो।

कुछ व्यक्ति—हियर-हियर ! हियर-हियर !

अग्निहोत्री—मैं यहाँ उपस्थित समस्त पुरुष सदस्यों की ओर से मिस कृष्णाकुमारी और उनकी मित्र दोनों अन्य महिलाओं को विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि यदि इन आक्षेपों से उन्हें और समस्त महिला-समाज को दुःख पहुँचा है तो पुरुष-समाज में भी सभी विचार-शील और प्रतिष्ठित व्यक्तियों को दुःख के साथ लज्जा भी आ रही है।

कुछ व्यक्ति—हियर-हियर ! हियर-हियर !

अग्निहोत्री—मिस विजया ने सड़कों पर कुछ पुरुषों के हँसने और ठट्ठे उड़ाने की बात कही है। ऐसे व्यक्तियों को मैं गुण्डे कहता हूँ। परन्तु इस प्रकार के व्यक्ति पुरुष और स्त्री दोनों समाजों में रहते हैं। चूँकि इस देश में बहुत

कम महिलाएँ घरों से निकलती हैं, अतः पुरुष ही इस सम्बन्ध में अधिक दोषी पाये गये हैं; परन्तु मैं कृष्णाकुमारी और उनकी अन्य दोनों मित्रों को विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि ऐसे इने-गिने व्यक्तियों को सारा पुरुष-समाज अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखता है।

कुछ व्यक्ति—अवश्य-अवश्य ! अवश्य-अवश्य !

अग्निहोत्री—मैं मानता हूँ कि मिस कृष्णाकुमारी के विरुद्ध जो पर्चा निकला है उससे यथार्थ में पुरुषवर्ग की परित्राणशूरता पर गहरा आघात हुआ है।

खान का दूसरा साथी—मोस्ट अनसिविलरस एक्ट इण्डीड।

अग्निहोत्री—मैं इस क्लब के समस्त पुरुष सदस्यों की ओर से मिस कृष्णाकुमारी तथा उनके साथ ही उनकी दोनों मित्रों एवं समस्त नारी-समाज के इस महान् दुःख में हार्दिक सहानुभूति प्रगट करता हूँ। मुझे विश्वास है कि इस क्लब के सदस्य मिस विजया के प्रस्ताव को स्वीकार कर तथा नगर के नागरिक मिस कृष्णाकुमारी को ही कौंसिल के लिये चुनकर मेरे इस कथन का पूर्ण समर्थन करेंगे। (बैठ जाता है।)

कुछ व्यक्ति—हियर-हियर ! हियर-हियर ! (तालियाँ)

त्रिवेणीशंकर—(खड़े होकर) सभापति महाशय, मैं भी अपनी सफाई में दो शब्द निवेदन करने का इच्छुक हूँ।

सभापति—हाँ, हाँ, आप कह सकते हैं।

त्रिवेणीशंकर—बहनो और भाइयो, सर्वप्रथम तो ईश्वर को साक्षी देकर और सत्य के नाम पर मैं यह कह देना चाहता

हूँ कि मिस कृष्णाकुमारी के चरित्र के विरुद्ध जो पर्चा निकला है उसमें. परोक्ष या प्रत्यक्ष किसी भी रूप से, मेरा कोई हाथ नहीं है; न मुझे उसके लेखक या मुद्रक का ही कोई पता मालूम है।

खान का दूसरा साथी—आप गॉड और ट्रूथ पर बिलीव करटा ?

त्रिवेणीशंकर—यदि मुझे ईश्वर और सत्य पर विश्वास न होता तो मैंने उनका आश्रय न लिया होता। पर खैर, जाने दीजिये उसे, अब इसका उत्तर सुनिये कि मैंने उस पर्चे का खण्डन क्यों नहीं किया। आपको मालूम होगा कि उस पर्चे से भी कहीं अधिक घृणित आक्षेपों से भरा हुआ एक पर्चा मेरे चरित्र के सम्बन्ध में उस पर्चे के बहुत पहले निकला था। उसका कोई खण्डन मिस कृष्णाकुमारी और उनके दल ने नहीं किया था। अतः मैंने भी इस सम्बन्ध में मिस कृष्णाकुमारी और उनके दल का ही अनुसरण किया है।

खान का दूसरा साथी—मोस्ट अनसिविलरस एक्ट इण्डीड।

त्रिवेणीशंकर—मोस्ट अनसिविलरस एक्ट से आपका क्या अभिप्राय है ? क्या आप समझते हैं कि हर परिस्थिति में महिलाओं की रक्षा का भार पुरुषों के ही कन्धों पर है ?

खान का दूसरा साथी—अनडाउटेडली।

त्रिवेणीशंकर—कदापि नहीं।

कुछ व्यक्ति—शेम-शेम ! शेम-शेम !

त्रिवेणीशंकर—चाहे आप मुझे धिक्कारें. शेम कहें या इससे भी कड़े शब्दों का उपयोग करें, परन्तु प्रत्येक व्यक्ति को अपना

मत रखने तथा उसके प्रकट करने का पूर्ण अधिकार है।

खान का दूसरा साथी—हम आपका मट नहीं सुनना चाटा।

कुछ व्यक्ति—बैठ जाइये, बैठ जाइये।

त्रिवेणीशंकर—सभापति महाशय, मैं आज यहाँ एक अभियुक्त की हैसियत से बोल रहा हूँ। सरकारी अदालतों में भी अभियुक्त को अपनी रक्षा और बचाव के लिये सब कुछ कहने का अधिकार रहता है, फिर यह तो सार्वजनिक क्लब है। भाषण और लेखन-स्वतन्त्रता के लिये आन्दोलन करनेवाले पढ़े-लिखे लोगों का यह व्यवहार सचमुच ही आश्चर्य-जनक है। कहिये, मैं अपना कथन पूर्ण करूँ या चुप होकर बैठ जाऊँ (बैठ जाता है।)

वर्मा—सचमुच यह तो बड़ा अन्याय है।

कृष्णाकुमारी—(खड़े होकर) मैं सब लोगों से प्रार्थना करती हूँ कि उन्हें मिस्टर शर्मा के कथन को अवश्य सुनना चाहिए। (बैठ जाती है।)

सभापति—(खड़े होकर) मैं आशा करता हूँ कि सब लोग मिस्टर शर्मा के कथन को अवश्य सुनेंगे। (शर्मा से) आप अपना कथन आरम्भ कीजिये। (बैठ जाता है।)

त्रिवेणीशंकर—(खड़े होकर) धन्यवाद ! मैं फिर कहता हूँ कि महिलाओं की रक्षा का भार हर परिस्थिति में पुरुषों के कन्धों पर नहीं है। वह समय अब बहुत कुछ बीत चुका है तथा शीघ्रता से बीतता जा रहा है जब महिलाओं की रक्षा का भार हर परिस्थिति में पुरुषों पर था। उस समय पुरुष अपने सुख-दुःख की कोई चिन्ता

न कर, अपने शरीर की कोई परवा न कर, अपने प्राणों को हथेली पर रखकर महिलाओं की रक्षा करते थे; इतना ही नहीं, उन्हें गृह-देवियाँ मानकर उनका सत्कार और पूजन तक करते थे।

कृष्णाकुमारी—(खड़ी होकर) बीच में बोलने के लिए क्षमा कीजिये।

त्रिवेणीशंकर—नहीं, नहीं, आप मुझे इण्टरप्ट कर सकती हैं। (बैठ जाता है।)

कृष्णाकुमारी—आपके कथन से तो यह जान पड़ता है कि महिलाएँ पुरुषों के लिए कुछ करती ही न थीं। सच तो यह है कि महिलाएँ तो अपने सुखों की उतनी चिन्ता भी न करती थीं और न आज करती है, जितनी पुरुष अपने सुखों की। वे तो पुरुषों के सुख में ही अपना सुख मानती थीं, उन्हें ईश्वरवत् समझती थीं। (बैठ जाती है।)

कुछ व्यक्ति—हियर-हियर ! हियर-हियर !

त्रिवेणीशंकर—(खड़े होकर) हाँ, यह भी मैं मानता हूँ, मिस कृष्णाकुमारी, महिलाएँ भी पुरुषों को ऐसा ही मानती थीं और अनेक आज भी मानती हैं, जैसा आप कह रही हैं। वे भी उनके सुखों में ही अपना सुख समझती थीं और इस प्रकार दोनों का परस्पर सम्बन्ध······

कृष्णाकुमारी—(खड़ी होकर) फिर इण्टरप्शन के लिए क्षमा कीजिये मिस्टर शर्मा। (शर्मा बैठ जाता है।) जिस प्रकार का सम्बन्ध आप कहते हैं वह परस्पर नहीं था। महिलाओं पर अधिकतर पुरुषों के अत्याचार ही होते थे और आज भी होते हैं। (बैठ जाती है)

त्रिवेणीशंकर—(खड़े होकर) यह भी होता था और होता है, यह भी मैं मानता हूँ, मिस कृष्णाकुमारी, परन्तु इससे जिस बात का मैं प्रतिपादन कर रहा था उसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। मैं कह रहा था कि हर परिस्थिति में पुरुषों पर महिलाओं की रक्षा का भार नहीं है। जिस परिस्थिति में पुरुषों पर महिलाओं की रक्षा का भार था वह अब बदल रही है।

विजया—अर्थात् निम्न क्षेत्र से महिलाएँ पुरुषों के बराबरी के क्षेत्र में आ रही हैं।

त्रिवेणीशंकर—पहले वे निम्नक्षेत्र में थीं, यह तो मैं नहीं मानता, परन्तु हाँ, इतना मानता हूँ कि उनके और पुरुषों के कार्यों का एक क्षेत्र नहीं था। मेरा तो अब भी यही मत है कि निसर्ग ने ही दोनों को भिन्न-भिन्न प्रकार से बनाया है, अतः दोनों के कार्य-क्षेत्र भी भिन्न-भिन्न होना स्वाभाविक है और दोनों में से कोई भी निम्न-कोटि का नहीं कहा जा सकता। परन्तु जब महिलाओं ने उसी क्षेत्र में पदार्पण किया है जिसमें पुरुष हैं, तब वे यह आशा नहीं कर सकतीं कि इस परिस्थिति में भी पुरुष उनके रक्षक ही रहेंगे। ऐसी परिस्थिति में जिस प्रकार का संघर्ष पुरुषों-पुरुषों के बीच में है, उसी प्रकार का संघर्ष पुरुषों-स्त्रियों के बीच में होगा। उदाहरणार्थ, अब महिलाएँ सेना का कार्य सीख रही हैं। यदि वे सेना में भरती हुईं, जैसा कहीं-कहीं होने भी लगा है, और उन्होंने युद्ध किया जैसा कहीं-कहीं वे करने भी लगी हैं, तो क्या वे आशा करती हैं कि स्त्री-सेना को देखते ही पुरुष-सेना अपने शस्त्र रख

देगी और परित्राण-शूरता के नाम पर अपने को नष्ट हो जाने देगी ?

वर्मा—(मुस्कराते हुए) ऐसा तो होना ही चाहिए। महाभारत में तो, जो पूर्वजन्म में स्त्री था ऐसे शिखण्डी के सामने आते ही भीष्म पितामह ने शस्त्र रख दिये थे।

त्रिवेणीशंकर—(मुस्कराकर) शिखण्डी एक था और भीष्मपितामह सब नहीं हो सकते। यदि उस समय भी स्त्रियों की सेनाएँ होतीं, और वे युद्ध करने जातीं तो पुरुष सेनाएँ कभी शस्त्रों को न रख देतीं। खैर! दूसरा उदाहरण लीजिये। अब महिलाएँ पुरुषों से मल्ल-युद्ध तक करने को अग्रसर हो रही हैं। कुछ ही दिन हुए, आस्ट्रेलिया के सिडनी नगर में एक स्त्री पहलवान डारिस एकोरोने ने एक पुरुष पहलवान लेसबीर्स के साथ कुश्ती लड़ी थी। क्या महिलाएँ यह आशा करती हैं कि ये पुरुषों को कुश्ती के लिए ललकारेंगी और इतने पर भी पुरुष या तो उनसे कुश्ती लड़ेंगे ही नहीं, क्योंकि न लड़ने पर भी उनकी शूरता में बट्टा लगता है, या परित्राण-शूरता के नाम पर चुपचाप उनके धक्का देते ही चित हो जायेंगे। यही बात अन्य क्षेत्रों के सम्बन्ध में भी है। जहाँ-जहाँ संघर्ष होगा, वहाँ-वहाँ जीवन-संग्राम के नियम का उपयोग होगा; परित्राण-शूरता का नहीं। यद्यपि मैं सत्य कहता हूँ कि मैं यह नहीं जानता कि मिस कृष्णाकुमारी के चरित्र के सम्बन्ध में वह विज्ञापन किसने निकाला है, तो भी मैं इतना कह सकता हूँ कि यदि मेरे चरित्र पर आक्षेप करनेवाला

विज्ञापन न निकला होता तो कदाचित् यह भी न निकलता।

वर्मा—कदाचित् क्यों, निश्चयपूर्वक न निकलता।

त्रिवेणीशंकर—नहीं, मिस्टर वर्मा, निश्चयपूर्वक तो मैं नहीं कह सकता।

वर्मा—क्यों ?

त्रिवेणीशंकर—इसलिए कि जिस प्रकार मिस कृष्णाकुमारी के चरित्र पर आक्षेप हुए बिना ही मेरे चरित्र पर आक्षेप हुआ, उसी प्रकार मेरे चरित्र पर आक्षेप हुए बिना ही मिस कृष्णाकुमारी के चरित्र पर भी हो सकता था। एक बार संघर्ष होने के पश्चात् प्रहार किस ओर से होता है, यह कभी निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता। हाँ, घात पर प्रतिघात होता है, यह स्वाभाविक नियम है। (कुछ ठहरकर) अब मुझे और कुछ न कहकर केवल इतना ही कहना है कि यदि आप लोग गम्भीरता-पूर्वक विचार करके देखेंगे तो आपको मालूम हो जायेगा कि यूनियन क्लब में आज जो प्रश्न उठा है वह यथार्थ में केवल मिस कृष्णाकुमारी और मुझसे सम्बन्ध नहीं रखता। यह तो स्त्री और पुरुष-समाज के पारस्परिक व्यवहार की जड़ से सम्बन्ध रखता है। मेरे चरित्र पर आक्षेप करनेवाले इश्तहार के निकलने के पश्चात् भी मेरे हृदय में मिस कृष्णाकुमारी के प्रति किसी प्रकार के रोष की उत्पत्ति नहीं हुई थी, मैंने यह निश्चय नहीं कर लिया था कि उसमें उनका और उनके दल का ही हाथ है, यद्यपि मैं यह सच-सच कह देना चाहता हूँ कि मुझे भी उनके दल पर सन्देह हुआ

था। पर इतने पर भी मैंने यूनियन क्लब में उनके या उनके दल के विरुद्ध कोई प्रस्ताव उपस्थित नहीं किया, और न कराया ही। मुझे खेद है कि मिस कृष्णाकुमारी उनके चरित्र पर आक्षेप होनेवाले पर्चे के निकलते ही मुझे और मेरी पार्टी को ही निश्चय-पूर्वक उसके लिए दोषी मानती हैं, और मिस विजया इस प्रकार का प्रस्ताव इस क्लब में उपस्थित कर रही हैं। मैं इस प्रकार के विज्ञापनों को बहुत बुरा मानता हूँ, मेरा यह भी मत है कि सार्वजनिक जीवन का यह बड़ा काला पहलू है, किन्तु क्या किया जाय? संघर्ष का यह अनिवार्य परिणाम जान पड़ता है। इस संघर्ष में स्त्री-समाज का खिंच आना मुझे अत्यन्त दुःख पहुँचाता है। मेरा मत है कि उनके इस क्षेत्र में आ जाने से हमारे गृहों में जो थोड़ा-बहुत सुख रह गया है वह भी न रह जायेगा। परन्तु कदाचित् मनुष्य-समाज के भाग्य में अभी और दुःख ही बदा है। (बैठ जाता है। तालियाँ बजती हैं।)

कृष्णाकुमारी—(खड़ी होकर) सभापति महोदय, भाइयो और बहनो, मैं सर्वप्रथम मिस्टर त्रिवेणीशंकर शर्मा को उनके अत्यन्त सुन्दर भाषण पर बधाई देती हूँ।

कुछ व्यक्ति—हियर-हियर। हियर-हियर।

कृष्णाकुमारी—मिस्टर शर्मा ने, इसमें सन्देह नहीं, अपने भाषण में विषय का तात्त्विक दृष्टि से प्रतिपादन किया है। यद्यपि उनकी कही हुई अनेक बातों से मैं सहमत नहीं हूँ, तथापि इतना मैं अवश्य मानती हूँ कि यदि महिलाएँ समाज के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों से स्पर्द्धा

करना चाहती हैं तो उन्हें पुरुषों से परित्राण-शूरता के नाम पर किसी बात की आशा न रखनी चाहिए, वरन् मैं तो मिस्टर शर्मा के भाषण के पश्चात् उस समय का स्वप्न देखने लगी हूँ, जब महिला-वर्ग पुरुष-वर्ग की रक्षा का भार अपने कन्धों पर लेगा।

त्रिवेणीशंकर (मुस्कराकर) इन्टरप्शन के लिये क्षमा। (कृष्णाकुमारी बैठ जाती है।) पुरुषवर्ग की रक्षा का भार तो एक प्रकार से अब तक भी आप लोगों के कन्धों पर रहा है, मिस कृष्णाकुमारी, और भविष्य में भी रहनेवाला है। आप ही तो पुरुषों को उत्पन्न करती हैं। उनकी उस समय रक्षा करती हैं, जब आपके अतिरिक्त कोई उनकी रक्षा का सामर्थ्य ही नहीं रखता। उन्हें पाल-पोसकर आप ही बड़ा करती हैं और तब अपनी रक्षा का भार उन्हें सौंपती हैं। (बैठ जाता है।)

कृष्णाकुमारी—(खड़ी होकर) नहीं, पुरुषों के बड़े होने पर भी अब हम उनकी रक्षा करना चाहती हैं। अपनी सीमा-बद्धता से हम ऊब उठी हैं। हमारे समस्त दुःखों की जड़ें ये सीमाएँ ही हैं। ये सीमाएँ ही हमारे उत्कर्ष के लिए बाधक हैं। हम इन सीमाओं को तोड़ देना चाहती हैं।

त्रिवेणीशंकर—सीमा-बद्धता नैसर्गिक नियम है।

कृष्णाकुमारी—कौन-सी सीमा नैसर्गिक है और कौन-सी कृत्रिम, यह कहना सरल नहीं है, मिस्टर शर्मा। इतना ही नहीं, आज तक के बड़े-से-बड़े दार्शनिक और तत्त्ववेत्ता भी एक मत से इस सम्बन्ध में कोई निश्चयात्मक निर्णय

नहीं कर सके हैं। खैर, जो कुछ हो, इस स्पर्द्धा में, इस संघर्ष में हमने सोच-समझकर ही पैर रक्खा है और हम पुरुषों के द्वारा अपनी रक्षा नहीं चाहतीं। (विजया से) बहन, मैं तुमसे प्रार्थना करती हूँ कि तुम अपना प्रस्ताव वापस ले लो। (बैठ जाती है। तालियाँ बजती हैं।)

[यवनिका-पतन।]

समाप्त।

पंडित गणेशप्रसाद द्विवेदी

[गणेशप्रसादजी को हिन्दी में मौलिक नाटकों के नितान्त अभाव की भावना ने ही नाटक लिखने को बाध्य किया। इसके पूर्व इन्होंने हिन्दी-साहित्य के ज्ञान-भाण्डार की पूर्ति और ही क्षेत्रों में की। हिन्दी के नवयुवक लेखकों में से वह हैं। अँग्रेज़ी-साहित्य का उनका अध्ययन अच्छा है। इसी कारण उनके नाटकों पर पाश्चात्य टेकनीक का प्रभाव अधिक पड़ा है। रंगमंच को ध्यान में रखकर ही, क्योंकि हिन्दी में रंगमंच है ही कहाँ, उन्होंने साहित्यिक दृष्टि से अपने नाटकों की सृष्टि की है। 'शर्माजी' में उन्होंने टेलीफ़ोन द्वारा दो पात्रों में बातचीत कराई है। उनके नाटक प्रायः सामाजिक हैं। भारतीय समाज का चित्रण उन्होंने किया है। उनके नाटकों में भारतीय जीवन का जीता-जागता चित्र मिलेगा। वरन् समाज की कुत्सित भावनाओं पर व्यंगपात किये बिना लेखक से रहा नहीं गया है। यद्यपि लेखक का दृष्टिकोण सुधारक का नहीं है। उनके एकांकी समय-समय पर हिन्दी की प्रसिद्ध पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। 'सोहाग-बिन्दी' लेखक के ६ एकांकी का संग्रह पुस्तक-बद्ध हो चुका है। 'हंस' में प्रकाशित उनका 'कामरेड' भी उल्लेखनीय है।

'सोहाग-बिन्दी' लेखक की सफल और अतिप्रिय रचना है। क्योंकि संग्रह इसके ही नाम से है। यह भारत की आधुनिक नारी की दुर्दशा की दर्द भरी कहानी है। अनजान में ऐसे कितने ही उत्सर्ग, इससे भी भयानक, स्त्रियों द्वारा हुए जिनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। यदि हम इसे Domestic Tragedy कहें तो अत्युक्ति न होगी। यदि प्रेम से वंचित सुन्दर नारी किस प्रकार घुल-घुलकर जान देती है और बुझते हुए चिराग़ के समान बुझने से पहिले एक नवयुवक युवक

का पदार्पण उसके जीवन में एक क्षण आशा के समान सिहर उठता है— आदि उसका कथानक है। यह नारी-हृदय का यथार्थ और स्वाभाविक बिम्ब है। कदाचित् नारी का पराये पुरुष से प्रेम अवांछित जान पड़े परन्तु क्या नारी को अपनी भावनाओं के प्रस्फुटन का अधिकार नहीं है ? अपने वातावरण से सन्तुष्ट नारी का मेरे विचार से यह पराये मनुष्य से कल्पित प्रेम नहीं, वरन् उसके हृदय की स्वतंत्र होने की आकांक्षा है। नारी-हृदय की समस्या इसमें हैं।

इसमें एक अंक और सात दृश्य हैं। काली बाबू की स्त्री के पत्र के शब्द संयत हैं और उससे वासना की गन्ध तनिक भी नहीं आती। पत्र पढ़ कालीबाबू को अपनी गलती मालूम पड़ती है। सब बना-बनाया खेल बिगड़ गया। विनोद का आगमन उनके घर में एक हत्यारे के रूप में हुआ। अस्थिखण्ड मृत स्त्री का उनके हाथ से फ़र्श पर गिर जाता है और एक बिल्ली आकर उससे खेलने लगती है। ऐसे संकेतात्मक प्रयोग पाश्चात्य शैली पर हैं। हिन्दी के लिये नई बात है। आख़िरी नाटकीय निर्देश अति गूढ़ और effective है। उनमें ही इसकी सफलता है।]

सोहाग-बिन्दी

नाटक के पात्र

काली बाबू—एक स्टेशन-मास्टर

प्रतिभा देवी—उनकी पत्नी

विनोद—एक कालेज का छात्र, काली बाबू का मौसेरा भाई।

चनकटा महाराज—स्टेशन का खलासी।

गजाधर—एक अहीर।

पुरोहित, काली बाबू की मामी तथा कुछ अन्य स्त्री पुरुष।

❀ ❀ ❀ ❀

पहला दृश्य

[बी० एन्० डबल्यू० आर का एक छोटा स्टेशन। यहाँ पैसेंजर ही खड़ी होती है, वह भी एक मिनट के लिये। पाएंटिंग किया हुआ लाल ईंटों का एक छोटा-सा कमरा। सामने थोड़ा-सा छाया हुआ बरामदा। बरामदे के एक ओर एक लकड़ी की बेंच पड़ी हुईहै, मुसाफ़िरों के बैठने के लिये। इसी के बग़ल ही में लोहे की तौलनेवाली मशीन। कमरे के एक ओर खिड़की, जिसमें टिकट काटने का यंत्र रक्खा हुआ है। खिड़की पूरी झिलमिली से ढकी हुई है और नीचे टिकट देने का छोटा-सा सूराख़ बना हुआ है। भीतर एक मेज़ पर टेलीग्राफ़ का यंत्र रक्खा हुआ है। दो-चार बही-खाते और पुराने कार्बन पेपर बहुत-से अस्त-व्यस्त रूप में इधर-उधर पड़े हैं। इसी कमरे के पिछवाड़े स्टेशन-मास्टर के रहने का

'क्वार्टर' है, जिसमें सिवा उनकी स्त्री के और कोई नहीं रहता। कमरे के पीछेवाली खिड़की से क्वार्टर पूरा दिखलाई पड़ता है। स्टेशन के एक-मात्र अफ़सर काली बाबू हैं। वे ही टेलीग्राफ़ करते हैं, वे ही टिकट भी देते हैं, वे ही सब करते हैं। ज़रूरत आ पड़ने पर कमरे से बाहर निकल-कर सिगनल भी डाउन कर देते हैं; क्योंकि उनके एकमात्र खलासी—बनकटा महाराज—ज़रा चिलम के शौकीन हैं, और 'बीड़ी-तमाखू' की गोष्ठी के लिये उन्हें बस्ती तक जाना पड़ता है। ऐसे मौकों पर ज़रूर देर हो जाती है। पर काली बाबू उनसे कुछ कहते नहीं। इसके दो कारण हैं। एक तो वे इनके घर का सब काम सँभाले रहते हैं, दूसरे इनमें आत्मभिमान की कमी बिलकुल नहीं है। काली बाबू ने एक ही बार आजमाइश के तौर पर ज़रा मुंशियाने ढंग से इनको डाँटने का साहस दिखाया था। इस पर ब्राह्मण देव ने वह रौद्र रूप धारण किया कि तब से काली बाबू चौकन्ने ही रहने लगे। काली बाबू की उम्र बाईस साल से ऊपर न होगी; पर महाराज चालीस से कम नहीं। काली बाबू कुछ ऊँघते हुए भीतर की कुर्सी पर हुक्का पी रहे हैं। तीसरा पहर दिन।]

[महाराज का कुछ देहातियों के साथ झगड़ते हुए प्रवेश।]

काली बाबू—(तन्द्रा से चौंककर झल्लाहट के साथ) आफ़त है इन लोगों के मारे! अरे भाई, लड़ने के लिये तुम लोगों को कोई दूसरी जगह नहीं मिलती? यह स्टेशन है।

महाराज—(बड़े क्रोध से चिल्लाते हुए एक देहाती का हाथ पकड़कर भीतर खींचते हुए—दो-तीन और भयभीत-से बाहर ही खड़े रह जाते हैं।) हजार दफा इन बदमासन से कहि चुके कि लैन किनारे गोरू न चरावा करो, सुना के सुनथ। अब के सब ओलियाय न दिहा त बनकटा नाहीं, चमार। [हाथवाले देहाती को तर्जनी से धमकाते हुए बड़ी-बड़ी आँखें निकालकर) सबका गुरू इहै गजधरा

है। अहिर है न। अइस वेपीर कौनौ जाति नहीं होत। कौनौ गोरू कटि जाय, मरि जाय, तोहार का, गऊहत्या से तई मनई न डेराथै !

गजाधर—(लापरवाही से खीस निकालते हुए) अरे त महराज—पू—कहाँ जाई पू चरावै पू—।

बावू—(आँखें मलकर ज़रा चैतन्य हो कुर्सी पर कुछ सँभलकर बैठते हुए) भई, तुम लोग दर असल बड़े बदमाश हो। जानते नहीं, अगर कोई जानवर यहाँ कट जाय, तो हमारे ऊपर एक हज़ार रुपया जुर्माना हो जायगा। अब ख़बरदार, अगर कभी कोई जानवर यहाँ दिखाई पड़ा !

गजाधर—(हाथ जोड़कर) सरकार, पू कहूँ चारा त हवै नहीं न, गोरू कहाँ जाय. कसन जिएँ पू हजूर ?

बावू—(चिल्लाकर, खड़े होकर) अरे तो मैं क्या करूँ बदमाश ! हमारो नौकरी लेगा ? लैन की घास चराकर तेरे गोरू पलेंगे तो इससे मेरा क्या फ़ायदा होगा ? मैं क्यों हुक्म देने लगा ?

महराज—(उसी क्रोध की मुद्रा से) कहा, बावू के सेर भर दूध पहुँचाइ जावा करौ, तौन सुनवै न किहिस। (काली बाबू पीछे घूमकर इधर-उधर घूरने लग जाते हैं।)

गजाधर—अरे महराज, सेर भर त कुल दुधवै होथै त कसता करी पू।

बावू—(महराज से बनावटी क्रोध से) क्या बे सिर-पैर की बातें करते हो महराज, मुझे नहीं चाहिये इन बदमाशों का दूध।

गजाधर—अरे सरकार, पू जवन होइ सकी पाउ आध सेर पहुँ-चावा जाई पू, हाँ पू।

वावू—क्या खामखाह के लिये पू-पू कर रहा है ? जा, निकल यहाँ से।

गजाधर—सरकार, दुइ पौत्रा माँ फरक न परी। मुदा महराज से कहि देंइ ऊपर से खफा न होवा करइ पू। अबै कालिहन सेर भर दहिउ पीइन है।

वावू—(स्वर वदलते हुए महराज से, कुर्सी पर बैठकर हुक्का सँभालते हुए) वदमाशों से हजार दफा कहा कि जब मवेशी लाओ तो .खुद मौजूद रहा करो। पर कौन सुनता है। महराज, अगर कोई साथ में न हो, तो पकड़कर मवेशीखाने में दाखिल कर दिया करो। अब निकालो इनको बाहर।

[भद्दे तरीक़े से सलाम करते हुए चरवाहों का प्रस्थान। गजाधर के मुँह पर वही अर्धशून्य हँसी।]

[चरवाहों का प्रस्थान]

महराज—(उन लोगों के साथ जाकर लौटता है, इधर काली बाबू अपना रेलवे का काला कोट और काली टोपी, जिसके आगे निकल के अँगरेज़ी अक्षरों में 'स्टेशन-मास्टर' लिखा हुआ है, पहन लेते हैं, और कुछ काग़ज़-पत्र सँभालकर खड़े हो जाते हैं) बाबू, गाड़ी आय रही है।

बाबू—आई तो आखिर। आज सिर्फ़ सवा घंटे लेट है। हम यहीं हैं। देखो, अगर कोई उतरे तो टिकट यहीं माँग लाना। कौन जाय। (बाबू फिर कुर्सी पर बैठकर हुक्का सँभालते हैं। महराज हरी और लाल दो झण्डियाँ लेकर बाहर जाता है। बाहर गाड़ी का शब्द और साथ ही गाड़ी छूटने की सीटी)

[महराज एक अजनबी के साथ भीतर घुसता है। अजनबी करीब पच्चीस वर्ष का सुन्दर युवा है। और अच्छे कपड़े पहिने है। खाकी निकर, ऊनी होज़, कनवास का जूता, कालरदार बनियाइन और नीला ब्लेज़र पहिने है। आधुनिक फ़ैशन के लम्बी कलमवाले बाल कटे हैं। हाथ में एक चमड़े का मँझोला सूटकेस है।]

आगन्तुक—मैंने कहा, काली भैया को आदाब अर्ज़ है। (कहकर मुसकुराता हुआ एक ओर खड़ा रह जाता है। काली बाबू की तन्मयता भंग होती है और ऊपर सिर उठाते ही पहचानकर तपाक से मिलते हैं।)

काली बाबू—अरे विनोद! ओफ़् ओह—भला इतने दिन बाद तुमने खबर तो ली।

विनोद—क्या करूँ, छुट्टी नहीं निकाल पाता था। हर वीकएंड को आपके यहाँ आने की सोचता हूँ। पर कोई-न-कोई इंगेजमेंट निकल ही आता है। उधर घर गये पूरे छः महीने हो गये। दशहरे की इतनी बड़ी छुट्टी सारी पिकनिक में खतम हो गई। फ़ादर सख्त नाराज़ हैं। पर आज आपके यहाँ आ ही गया। खासकर एक दफ़ा भाभी को देखने की बड़ी इच्छा थी।

काली बाबू—(मीठे तिरस्कार के स्वर में) चलो, हटो! चार वर्ष हम लोगों को यहाँ रहते हो गये, और आज आपकी सूरत दिखलाई पड़ी है। उनसे मैंने सालों से कह रक्खा है कि मेरा एक मौसेरा भाई यहाँ कॉलेज में पढ़ता है और उसने हर शनिवार यहाँ आने का वादा किया है। वह हमेशा रास्ता देखती है। जब कोई

नहीं आता तो ऐसा अफ़सोस करती है कि बस। भई, असल बात तो यह है कि यहाँ उनका जी बिलकुल नहीं लगता। न आदमी न आदमज़ात। कोई अच्छी बस्ती भी तो नहीं है पास में। रोज़ ज़िद करती है कि किसी बड़े स्टेशन में बदली कराओ; पर भाई, मेरे बस की बात हो तब तो। मगर यहाँ एक तरह से अच्छा भी है। बड़ी शान्ति है।

विनोद—(गम्भीर होकर) आप लोगों ने चार-चार वर्ष इस जंगल में बिता दिये। भाभी भी जब से शादी हुई, तब से शायद इस क्वार्टर के बाहर नहीं निकलीं। यह ज़ुल्म है, ताज्जुब है, जो अब तक वे पागल नहीं हो गईं।

काली बाबू—(हाथ पकड़कर प्रेम से कमरे के बाहर घसीटते हुए) अच्छा, चलो तो, तुम्हारी मुलाक़ात करावें।

दूसरा दृश्य

[स्टेशन-मास्टर साहब का क्वार्टर। एक कमरा। एक ओर एक पलँग और दो कुर्सियाँ। नीचे एक चटाई। एक ओर खूँटी पर कुछ कपड़े और किताबें। कमरे के दूसरी ओर एक दरवाज़ा, जो भीतर से बन्द मालूम होता है। काली बाबू और विनोद का कमरे में प्रवेश। पीछे-पीछे महराज सूटकेस लिये हुए आते हैं और उसे एक ओर रखकर बाहर चले जाते हैं]

काली बाबू—(बन्द दरवाज़े को धीरे से थपथपाते हुए) अरे, सुनो तो। यह देखो, कौन आये !

[एक युवती का प्रवेश। वयस अठारह वर्ष। रंग गोरा। शरीर सुगठित और सुन्दर, एक साधारण साड़ी पहने हुए यह काली बाबू की पत्नी प्रतिभादेवी हैं। आप ज़रा जल्दी से दरवाज़ा खोलकर कमरे में आती हैं, पर पति के साथ एक अपरिचित युवक को देखते ही फ़ौरन घूँघट खींचकर भीतर जाने को होती हैं।]

काली बाबू—(हँसते हुए) अरे सुनो तो, भागती क्यों हो? यह तुम्हारे देवर विनोद बाबू हैं। हमारे मौसेरे भाई हैं। शादी में थे, तुमने पहचाना नहीं?

[प्रतिभा ज़रा चौंककर थोड़ा-सा घूँघट हटाकर विद्युत्-गति से एक दृष्टि विनोद पर डालती हैं और फ़ौरन निगाह नीची कर लेती हैं।]

विनोद—(झुककर प्रणाम करता हुआ) भाभीजी, प्रणाम! पर मुझसे अगर इतनी शरम करेंगी तो मैं चला। (ज़रा चलता हुआ पीछे को देखता है। प्रतिभा लजाती हुई फिर उसकी ओर देखती है और धीरे-धीरे फिर घूँघट खोलती है। बाहर के दरवाज़े से महराज दौड़ा हुआ आता है।)

महराज—(काली बाबू से) बाबूजी, टेलीगिराफ़।

काली बाबू—अच्छा आया। (विनोद से) भई, तुम बैठो, बातें करो, चाय पियो। मैं स्टेशन का काम निपटाता आऊँ। (कहकर बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये ही प्रस्थान। विनोद और प्रतिभा कुछ देर एकटक उन्हीं की ओर देखते रह जाते हैं। फिर धीरे-धीरे एक दूसरे की ओर मुड़ते हैं)

विनोद—बड़ी कठिन नौकरी है। यहाँ इस जंगल में आपका जी कैसे लगता होगा? (प्रतिभा ज़रा घूँघट नीचा कर लेती है, एक दीर्घ निःश्वास)

प्रतिभा—आप कपड़े उतारिये, कुछ नाश्ता कीजिये।

विनोद—(कुर्सी पर बैठता हुआ) भाभीजी, आप मुझे 'आप' क्यों कहती हैं ? आप अगर सचमुच इतना तकल्लुफ़ करेंगी तो बस हो चुका। मुझे घबराकर भागना पड़ेगा।

प्रतिभा—(आधा घूँघट धीरे-धीरे उठाते हुए और आँचल का कोना थोड़ा-सा दाँतों में दबाते हुए) अच्छा बैठो तो। भागने की इतनी उतावली क्यों है ? क्या नई बीबी छोड़ आए हो ?

विनोद—नहीं, बीवी तो अभी नहीं है। जब होगी, तब आपको चलना होगा। चलेंगी न ?

प्रतिभा—ज़रूर, भला—(कहकर आलमारी खोलकर कुछ नाश्ते का सामान तश्तरी में रखकर सामने लाती है) लो, पानी तो पियो। इस जंगल में और क्या धरा है जो तुम्हें खिलाऊँ।

विनोद—क्या ख़ूब ! भाभी के हाथ की चीज़ें, ये मेरे लिए किस न्यामत से कम हैं।

प्रतिभा—ओफ़् ओह्—रहने भी दो ! अच्छा, यह बताओ रात को क्या खाओगे ? कुछ कचौड़ी वगैरह बनाऊँ ?

विनोद—इसके लिए माफ़ी चाहता हूँ। पकवान मैं कभी खाता ही नहीं। मुझे रोटी-चावल सबसे अधिक पसन्द है।

प्रतिभा—मगर यहाँ अच्छे सालन-वालन की आशा न रखना। रोटी क्या अच्छी लगेगी। ऐसी मनहूस जगह है कि यहाँ कुछ मिलता ही नहीं !

विनोद—यह आपने क्या शुरू किया भाभीजी ! इतना तकल्लुफ़ तो ....

प्रतिभा—तकल्लुफ नहीं भाई। तुम क्या रोज आते रहते हो? न मालूम किधर चाँद उगा, जो आज रास्ता भूलकर इधर आ पड़े। चले जाने पर शायद कभी याद भी न करोगे।

विनोद—(ज़रा झेंपते हुए) गुस्ताख़ी माफ़ हो। आप वह भाभी नहीं हैं, जो एक बार देखने पर भूल जायँ।

[प्रतिभा शरमाकर सिर नीचा कर लेती है ; कुछ देर के लिए दोनों निस्तब्ध]

प्रतिभा—कै दिन की छुट्टी है?

विनोद—(चौंककर मानों सोते से जगा हो) छुट्टी कहाँ! मुझे कल सुबह की गाड़ी से चले जाना होगा।

प्रतिभा—पागल तो नहीं हो गये! कल तुम्हारी दावत होगी।

विनोद—अगर ऐसा है तो रहना ही पड़ेगा।

[फिर कुछ देर दोनों चुप रहते हैं।]

विनोद—देखता हूँ, स्टेशन का सारा काम भाई साहब को ही करना पड़ता है। उन्हें तो इतनी भी फ़ुरसत नहीं कि इस तनहाई में आपके पास दो मिनट बैठें या ख़ुद भी कुछ आराम कर सकें। अकेले इस तरह आपका वक़्त कैसे कटता होगा। मैं तो हैरान हूँ।

[शरमाकर, ज़रा हँसकर तेज़ी से प्रतिभा बग़ल के कमरे में चली जाती है। विनोद मानों अपने कथन पर पश्चात्ताप करता हुआ कुछ देर सिर नीचा किए रहता है। सहसा उसी तेज़ी से प्रतिभा वैसे ही हँसती हुई अत्यन्त प्रसन्न-सी फिर कमरे में आती है।]

प्रतिभा—अभी तक खाया नहीं क्या? चुपचाप क्या सोच रहे हो? मेरे सामने शरम आती हो तो चली जाऊँ।

विनोद—शरम नहीं, सोच रहा था—(सिर ऊपर उठाकर अप्रतिम-सा) अगर जल्दी में कोई वैसी बात निकल गई हो तो ख्याल न कीजियेगा।

प्रतिभा—क्या? (विनोद सिर नीचा किए चुप) आखिर किस चिन्ता में डूब गये? कुछ बोलो भी।

विनोद—तो क्या लड़ूँ आपसे?

प्रतिभा—(खिलखिलाकर तनकर खड़ी होकर) आओ देखें—है ताक़त। (कहकर विद्युत्-गति से भीतर प्रस्थान। भीतर से आई हुई खिलखिलाहट की मधुर ध्वनि। विनोद आँखें फाड़कर उधर देखता है, जिस ओर वह गई है। नीचे के होंठ दाँतों से कुछ दबाकर मधुर हास्य। कुछ देर बाद खाना शुरू करता है। थोड़ी देर बाद शान्त भाव से एक हाथ में एक गिलास पानी और दूसरे में पानों की तश्तरी लिए हुए प्रतिभा का प्रवेश। कुछ देर तक मानों बरबस बनावटी गंभीरता से दोनों एक दूसरे को देखते रहते हैं, फिर दोनों एकाएक, साथ ही, अकारण, एक दूसरे को देखकर, खुलकर हँस पड़ते हैं मानों जन्म-जन्मान्तर के साथी हों। फिर धीरे-धीरे हँसी रुकती है। विनोद उनके हाथ से पानी लेकर पीता है और पान खाता है।)

विनोद—(सकपकाता हुआ खड़े होते हुए) जाऊं, ज़रा स्टेशन की तरफ घूम आऊं, देखूं, भाई साहब वहाँ क्या कर रहे हैं।

प्रतिभा—(मीठे ताने के स्वर में) इस दरबे में अभी दस मिनट में ही तबीयत घबरा उठी क्या? (विनोद उसके मुँह की ओर देखकर ज़रा हँस देता है।)

प्रतिभा—(अर्थ-पूर्ण-मुस्कराहट, हाथ पर ठुड्डी रखकर दरवाज़े के सहारे) हँसे, (जल्दी से) अच्छा क्यों हँसे ?

विनोद—हँसा क्या, सोचता हूँ, अगर मैं दस मिनट में घबरा गया, तो चार बरस में आपका क्या हाल होना चाहिए।

प्रतिभा—(निराशासूचक मुद्रा से) हम औरतों की बात छोड़ो। हम लोगों के लिए और उपाय ही क्या है (म्लान हँसी की क्षीण रेखा, फिर एकाएक गंभीरता) अच्छा, होते आओ। मैं इधर थोड़ा व्यालू का इन्तज़ाम कर लूँ। लो, वह महराज भी आ पहुँचे, मगर जल्दी आना।

[सब्ज़ी वगैरह लिए हुए महराज का प्रवेश। विनोद का प्रस्थान।]

प्रतिभा—महराज, आज ज़रा अच्छा खाना बनाना, शहर से बाबू आये हैं।

महराज—(दंभपूर्ण हँसी) अब जस हमसे बनी, बहूजी, अइस बनाई देई कि इंद्र मोहि जायँ, मगर माल चाही।

प्रतिभा—(कुछ रुष्ट-सी) लो न माल, क्या चाहिए, पैसे मैं देती हूँ, जो मन में आवे सो ले आओ। सालन मैं ख़ुद बनाऊँगी।

महराज—(अर्थपूर्ण हँसी से उसकी ओर देखते हुए) कुछ नाहीं, आप बैठी भर रहँइँ। बाबू ख़ुद ही दुइ रुपिया दिहेन हैं। कहेन, बस्ती ते बढ़िया तरकारी अउ घी वगैरह लै आओ। चार सेर दूध हम पहिले ही चढ़ाय दिहा खीर के वास्ते। अउर जवन आप कहँइँ।

प्रतिभा—(प्रसन्नता की हसी) अच्छा, तो सब तैयार करो, मैं ज़रा

कपड़े बदल लूँ। (अन्दर जाती है। महराज सब्ज़ी वगैरह अलग-अलग एक ओर रखता है। विनोद का प्रवेश।)

विनोद—भाई साहब कहाँ गये? स्टेशन में तो नहीं हैं?

महराज—(खींस निकालकर हँसने की चेष्टा करता हुआ) उइ साहब, बस्ती में गये हैं, दरोगाजी का बुलावै।

विनोद—(बनावटी आश्चर्य से) दारोगाजी! क्या मुझे पकड़वाने के लिए?

महराज—(अट्टहास) अरे नाहीं साहेब, भला अइसा हुइ सकत है (अभिज्ञता-सूचक स्वर में) हियाँ जौन दरोगाजी हैं, तौन बड़े सौखीन हैं। सब बाजा, फोनोगिराफ, तबला, हरमुनियाँ, सब हैं उनके पास। उनहीं का बुलावै गये हैं। पहिले हमसे कहेन रहे कि जाओ बुलाइ लाओ दरोगाजी के, ई कहिके कि बाबू के भाई आये हैं। तौन हरमुनियाँ बहुत अच्छा बजावत हैं। कहेओ कि बाजा-आंजा सब लेत आवैं। हम कहा, साहेब ई तो आपके गये से ठीक होई। हमका दाम देके बजार भेजेन सौदा का। आप बैठेइँ, बहूजी अबहिने आवथैं। कपड़ा-ओपड़ा बदलति अहैं। (विनोद आराम से कुर्सी पर बैठकर सिगरेट-केस जेब से निकालकर एक सिगरेट जलाता है। महराज आसन मार कर तरकारी बनाने में लग जाता है।)

विनोद—(एक कश पीकर) महराज, यह तो बड़ी मनहूस जगह है। भाई साहब यहाँ कैसे रहते हैं, यही नहीं समझ में आता। खासकर भाभीजी; क्योंकि भाई तो तुम्हारे दारोगाजी वगैरह के यहाँ बैठकर जी बहला लेते होंगे।

महराज—(बड़ी सहानुभूति से गद्‌गद् स्वर में) कुछ न पूछैं साहेब। बहूजी का हद-बेहद तकलीफ़ हइ। मगर बाबूजी एकर कुछ परवाहै नहीं करते। ओ बेचारी कई दफ़ा कहि चुकीं कि कोई अच्छी जगह बदली की कोसिस करो। मगर ओ मूड़ी उठाय के देखे तक नहीं। जल्दी-जल्दी आये, खाना खाइन और भागे। बस, वही खाने के बखत बहूजी को दुइ-एक बात करैक मौका मिलत है, फिर नहीं। बहूजी जहाँ बदली-ओदली के बारे में कुछ कहेन कि बाबू खफा हो जाथैं। बहूजी अपनी कोठरी में चली जाथैं और उही खिड़की पर बैठ के लैन ओरी देखै लागथैं। मोती अस भरभर आँसू गिरैं लाग थैं। ऐसे महीना पर महीना साल पर साल कटत चला जाथै।

विनोद—बस वहीं हमेशा खिड़की पर बैठी रहती हैं? (स्वगत-सा) By God! far too Severe than Solitary Confinement even!!

महराज—का कहेन हजूर, हम झूठ नही कही थैं।

विनोद—नहीं, झूठ की बात नहीं। हम कह रहे थे यह तो कालकोठरी से भी ज्यादा खराब है।

महराज—और का हजूर, कालकोठरी त बरु भला। बस बहूजी का एक आसरा है—उहै दुनौं बखत के गाड़ी। चार टिरेन आवथैं, दिनरात में, दुइ एहर से, दुइ ओहर से और यह खिड़की से सब देखाथैं। बस घंटन पहले से ओ बेचारी उहैं खड़ी टिरेन की बाट जोहत रहथैं। जब स्टेशन से गाड़ी 'पास' होथैं तो बड़ी मगन होइ के देखथैं, जानो कौनो तसवीर खड़ी होइ के कोई क बोलावथ।

विनोद—(सँभलकर गौर से सुनने को तैयार हो जाता है) वाह ! महराज, तुम तो शायरों की तरह बयान करते हो।

महराज—सायर का साहेब, आँखिन के जइसन देखा, ओइसइ जस के तस आपसे कही थै, अउर का।

विनोद—(बढ़ती हुई दिलचस्पी के साथ सामने झुककर) नहीं-नहीं, कहते चलो, हमको बहुत अच्छा लग रहा है। हाँ, अच्छा फिर ?

महराज—फिरि का साहेब, उहै गाड़ी क मनई उनकर जीवन-अधार हैं। जब तक गाड़ी जायँ, एक-एक डिब्बा के लोगन के बड़े ध्यान से देखथैं, जानो सब उनके मुलाकाती हैं। कभौं-कभौं गाड़ी में के कौनौ एकै मनई क चेहरा मन में बैठ जाथैं, दिन भर ओही के बात सोचथैं औ हमसे सब कहथैं, ऊ का पहिने रहा, ओकर नाक कस रही, ओकर मुँह कस रहा। फिर कई दिन तक ओही क जिकिर रहेथैं। जब मालगाड़ी आवथैं, तब ओकर डिब्बा गिनथैं, कौनौ में चालीस, कौनौ में पचपन ! हमसे कहथैं, महराज, तुमहूँ गिना करौ। फिर हमसे आपन गिनती मिलावथैं। कभौं-कभौं दोनों के एक गिनती होथैं, कभौ फरक पड़ि जाथैं।

विनोद—और जब गाड़ियाँ निकल जाती हैं तब क्या करती हैं ?

महराज—फेरि का, जब तक गाड़ी दिखाथैं, तब तक एकटक देखत रहथैं। जब बिलकुल निगाह से ओझल होइ जाथैं, तब उदास होइ के सामने क मैदान देखथैं। हियाँ से हुआँ तक जब हरिहर खेत फैला रहथैं तब चंदन खेत देखथैं। उनका एक-एक खेत का भेद मालूम है। (खिड़की से इधर इशारा करते हुए) उई

लम्बा खेत जहाँ खतम होथैं, एक छोटा सा गाँव है। उइ माँ दुइ ठो बड़े-बड़े पेड़ हैं। ओह के ऊपर जब सूरज देवता आवथैं, तब जानथैं कि संझा भइ और दिया-बाती, रसोई-पानी की फिकर करथैं। ऐसे दिन-बीतत जाथैं।

विनोद—और जब खेतों में हरी फसल न रहती होगी, तब तो और मनहूस जान पड़ता होगा।

महराज—ए सरकार, तब की न पूछैं। जब जेठ बेसाख की दुप-हरिया सनसनात रहथै और सब खेतन क माटी फटि फटि जाथैं, तब इहै मंदनवा खाय दौड़ा थै। असाढ़ में जब बदरी होथै, तब औरो बेकल होइ जाथैं, मुला बैठी रहथैं। एक दिन देखा, खूब छकाछक पानी बरस रहै। हमका टेसिन पर से बाबू पान लावै भेजिन। हम कहा सरकार खुद जायँ, बहूजी अकेल हैं। कहेन, नहीं, हियाँ हवा अच्छी है। जाव। छाता लइके पान लिया-इन, देखा बहूजी इहै खिड़की पर बैठी अहैं। बौछार से सारी भाजी अहै। सिरपर टपाटप ओरी चुइ रही है और साथै उनकी आँखी से भी सावन-भादों क झड़ी लगी है। हम त साहब देखतै रहि गये। (महराज की आँखें भर आती हैं) हमका देखिकै पुक्का फारिकै रोइ उठीं पर तुरंतै सँभारिकै पूछेनि, पान मँगाइन है ? अब हम का बोली। खड़ा रहे, फिर पान दिहिन, लैकै गये (विनोद सकते की हालत में आ जाता है।)

विनोद—(डबडबाई आँखों और वाष्प रुद्ध स्वर से एकदीर्घ निःश्वास के बाद) हूँ—अच्छा फिर ?

महराज—(कन्धे पर के अँगौछे से आँख पोंछते हुए) फेरि का साहेब, ऐसे बरसात, गर्मी, जाड़ा सब एक ढंग से बेचारी का कलपते बीतथै। पर अब ऊ सब बन्द है। अब न केउ हँसतै देखै न रोअत। एक बाबू से कहेन कि ई दोनों टिरेन से बड़ा शोर होत है जब देखो तब धड़धड़। बन्द होइ जाय तो अच्छा होत। बाबू कहेन, फिर खिड़की पर खड़ी होकर लोगों का मुँह देखने को कैसे मिलेगा। बहुत जोर कइकै वहू सिर्फ इहै कहेन कि वाह, अपना तो लोगों में जाकर ही जी बहला आते हैं, हमको टिरेन में आदमियों को देखकर दुख नहीं होता ? बाबू का जानी, कुछ सुनेन समझेन की नाहीं। हमसे कहेन, जाओ देखो, टेलीग्राफ तो नहीं आया !

विनोद—(विस्फारित नेत्र, दीर्घ निःश्वास) रहने दो महराज, अब नहीं सुना जाता।

[बगल का दरवाज़ा एकाएक खुलता है। बढ़िया रंगीन नीले रंग की रेशमी सारी पहने प्रतिमा का प्रवेश। केशपाश सुव्यवस्थित, भाल में लाल रंग की बिन्दी का टीका, जो उसके गोरे रंग पर ख़ूब खिल रहा है, महराज और विनोद, दोनों कुछ देर एकटक उसके एक नवीन रूप को देखते रह जाते हैं।]

प्रतिमा—(विनोद से अति प्रसन्न मुद्रा से) यह तो मानो आसमान से गिर पड़े।

विनोद—आसमान से मैं गिरा या आप ? सचमुच मैं तो तुम्हें पहचान न सका। इसमें कोई शक नहीं कि वेषभूषा से आपका रूप बहुत बढ़ जाता है।

प्रतिभा—देखती हूँ तुम्हारा सिर घूम गया। एक साथ ही 'तुम' और 'आप'।

विनोद—जल्दी में निकल गया। वापिस लेता हूँ।

प्रतिभा—वापस मैं देने कब लगी। भाई, अब जब 'तुम' शुरू किया है, तो चलने दो। अब ख़बरदार 'आप' न कहना।

विनोद—अच्छा, जो कहियेगा वही करूँगा। पर एक बात है। इस नीली साड़ी पर यह लाल बिन्दी तो बस—आज आपको सचमुच प्रणाम करने को जी चाहता है।

प्रतिभा—(एकाएक खिलखिलाकर हँस पड़ती है) क्या बक रहे हो?

विनोद—वाह! भाभी, आप हंसती हैं?

महराज—(तरकारियाँ समेटते हुए खीसें निकालकर अति प्रसन्न-सा स्वगत) की तो बहूजी जौने दिन आई रहीं उहि दिन अस देखात रहीं की तो आज।

[आप ही आप ख़ुशी में बड़बड़ाता हुआ बग़ल के कमरे में चला जाता है। विनोद या प्रतिभा, कोई उसकी बात नहीं सुनते, न उसकी ओर इनका ध्यान ही आकर्षित होता है।]

प्रतिभा—(उसी प्रकार) क्यों हँसी, यह सुनोगे तो तुम भी हँसोगे।

विनोद—अरे बताओ-बताओ।

प्रतिभा—(एक-एक शब्द के बीच में हँसने के लिये रुकते हुए) बात यह हुई कि बहुत दिन से कपड़े-वपड़े पहनने का कोई मौक़ा तो आया नहीं था। आज बिन्दी लगाने की तबीयत हुई, और बक्स में देखा तो बिन्दी की शोशी जो साथ लाई थी, कब की सूखी पड़ी है।

आज चार वर्ष से ऊपर हुए। ख़ैर, अब क्या करें, लड़कपन में हम लोग—(काफ़ी देर तक हँसने के लिये रुकती है।)

विनोद—(आनन्द-विभोर-सा, पर खीझकर) ओफ़् ओह। अच्छी आफ़त है, आख़िर कहां भी—

प्रतिभा—(जी भर हँस लेने के बाद विनोद उत्कंठा से व्याकुल होता है) लड़कपन में हम लोग जब दुलहिन-दुलहिन खेलते थे, तो बिन्दी के लिए लाल फूल कुचलकर उसका रंग लगा लिया करते थे। सोचते-सोचते आज वही मज़ाक फिर सूझा। यहाँ स्टेशन पर इस तरह के फूल बहुत हैं। जाकर लाई, और फिर—

विनोद—(हँसने के स्थान पर गंभीर होकर) मगर मेरे आने से सचमुच इतनी ख़ुशी क्यों, मैं तो—

प्रतिभा—(बनावटी गाम्भीर्य) अच्छा तो अब नाराज़ होती हूँ।

विनोद—(बात बदलकर हँसने की चेष्टा से) नहीं-नहीं, यह मेरा मतलब थोड़े ही था। बात यह है कि मैं तो किसी लायक हूँ नहीं। और फिर—

प्रतिभा—(मानों बात लग गई) अगर ख़राब लगती हो तो यह बिन्दी मिटा दूँ।

विनोद—(हँसता हुआ नज़दीक जाकर प्यार से) भाभी, तुम नाराज़ हो गई ! मेरा मतलब यह था कि यह बनावटी बिन्दी इतनी अच्छी लग रही है, तो सचमुच की बिन्दी लगाने पर न जाने—

प्रतिभा—(मचलकर ज़रा हटकर) रहने भी दो, बड़े झूठी तारीफ़ करनेवाले।

विनोद—(बड़ी गम्भीरता से) यह बात नहीं भाभीजी, सजने पर सचमुच आप बड़ी सुन्दर लगती हैं। मैंने असल बात ही कही है।

प्रतिभा—(आश्चर्य की मुद्रा से सिर हिलाती हुई) अच्छा! यह एक नई बात आज मालूम हुई। मगर इससे तो तुम्हारा कुछ फायदा नहीं होगा। शादी करते वक्त, खूब खूबसूरत बहू देख-भालकर चुनना। न हो, मैं ही एक तुम्हारे पसन्द की चुन दूँगी। यह काम मुझे सौंपना।

विनोद—(कुछ बेसुरा होकर) हाँ-हाँ, सो तो होगा ही।

[बैठ जाता है]

प्रतिभा—अच्छा, यहीं बैठो, अब चलती हूँ रसोई में।

विनोद—(मुग्धवत्) मैं भी चलूँगा। देखूँगा खाना कैसा पकाती हो।

प्रतिभा—(विचित्र भाव से मुँह देखती हुई) चलोगे?

[बाहर की ओर से महराज का प्रवेश]

महराज—(विनोद से) साहेब, बाबू आये हैं। संग में दरोगाजी और देवानजी दोनों हैं। अवर कई जने हैं। एक जने बहुत अच्छा गावत हैं। करमअली ढोलहा भी है। यहाँ बस्ती भर में ओकरे मोकाबिले ढोलक कोई नहीं बजावत। सब बैठे हैं। उही पिलेटफारम पर। पानी छिड़काय के जाजिम बिछाय दीन हैं। बस आपै क इन्तजार है। बाबू कहेन, जाओ, बोलाय ले आओ।

(प्रतिभा और विनोद कुछ देर तक चुपचाप शून्य दृष्टि से एक दूसरे की ओर देखते रह जाते हैं, फिर दोनों साथ ही मुसकरा उठते हैं)

प्रतिभा—तो जाओ न, देखते क्या हो ? मैं यहीं रसोई में से तुम्हारा बाजा सुनूँगी। (निराश दृष्टि से सिर नीचा कर उपेक्षापूर्ण दार्शनिक हँसी के साथ विनोद का प्रस्थान)

महराज—(प्रतिमा से) बहूजी, बाबूजी कहिन हैं, एक पचास बीड़ा के अन्दाज़ पान लगाइ के बड़ी तश्तरी में भेज देईं। हम इन लोगन का बैठाय के सब ठीक-ठाक करिके आइत हैं। आप तब ताईं सब सामान ठीक के राखें।

[जाता है]

तीसरा दृश्य

[स्थान वही स्टेशन-मास्टर के क्वार्टर का कमरा। काली बाबू और प्रतिभा पास-पास बैठे हैं। समय प्रातःकाल। प्रतिभा बहुत सुस्त और उदास है। वेष-विन्यास में काफ़ी लापरवाही स्पष्ट है]

प्रतिभा—विनोद बाबू को उस दिन आने की बात थी। अभी तक आये नहीं। आज एक हफ़्ता हो गया—

कालीबाबू—उस दिन इधर से पास तो हुआ था। मैंने बहुत कहा, मगर उतरा नहीं। कहने लगा, आज बड़ा जरूरी काम है। फिर आऊँगा।

प्रतिभा—(तीव्र उत्कण्ठा दबाते हुए) अब क्या आवेंगे ?

[निराशा का अस्फुट स्वर]

कालीबाबू—(कोट उतारते हुए और उसे प्रतिभा को देते हुए) इसे ज़रा धोबी को दे देना। बहुत मैला हो गया है।

प्रतिभा—(कोट लेते हुए उसकी जेब में कोई भारी चीज़ पाकर) यह क्या है ? (निकालने पर एक बढ़िया उपहार के योग्य

सुन्दर सोहाग-बिन्दी की लाल शीशी पाकर) अरे, यह क्या। यह शीशी किस तरह आपकी जेब में आई?

कालीबाबू—(सकपकाकर सिर पर हाथ फेरते हुए) अरे, यह तो मैं तुम्हें देना ही भूल गया था। उस रोज़ जब विनोद इधर से पास हो रहा था, यह शीशी मुझे ट्रेन ही पर से देता गया था तुम्हारे लिये।

प्रतिभा—(स्तब्ध होकर) क्या ख़ूब! आज चार रोज़ से यह शीशी आपकी जेब में पड़ी है और आपको एक दफ़ा भी ख़याल न हुआ?

कालीबाबू—(पछतावे की मुस्कराहट) क्या बतावें, काम-काज इतना रहता है कि—तुम तो जानती हो, किसी बात की सुध ही नहीं रह पाती।

प्रतिभा—अच्छा ख़ैर, फिर कब आने को कह गये?

कालीबाबू—कहा तो तुमसे। उसने कोई दिन नहीं बताया। कहा आऊँगा, ज़रूर आऊँगा। बस इतने में ट्रेन भी चलती बनी।

प्रतिभा—अब क्या—

कालीबाबू—आखिर इतनी उतावली क्यों? कहा है, तो कभी-न-कभी आवेगा ही। अब हमारा तबादला भी एक बड़े स्टेशन में होनेवाला है। वहाँ तुम्हारा जी बिल्कुल न ऊबेगा। आशा है, अगले साल तक हो जायगा।

प्रतिभा—(उपेक्षा से) उँह, क्या होगा (कहकर शीशी को यत्न से लेकर भीतर की ओर जाते-जाते) हमारे लिये. यही ठीक है। बल्कि इससे भी किसी मनहूस जगह बदली करवा लीजिये तो जान बचे। (कालीबाबू गौर से उसका मुँह देखते रह जाते हैं।)

———

चौथा दृश्य

[एक साल बाद]

[क्वार्टर का एक बहुत अच्छा कमरा ! अँगरेज़ी ढंग से सजा हुआ। कुर्सी, टेबल, आलमारी, पलँग, तिपाई आदि सभी अपटुडेट फर्नीचर मौजूद हैं। कमरे के दोनों ओर एक-एक और पीछे की ओर दो-दो बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ हैं, जिनसे बाहर बड़े स्टेशन का दृश्य साफ़ दिखाई देता है। आराम कुर्सी पर काली बाबू बैठे हुक़ा पी रहे हैं। देखने से पहिले की अपेक्षा काफ़ी साफ़-सुथरे और प्रसन्न-चित्त हैं। पलँग पर प्रतिभा एक गाव-तकिये के सहारे पड़ी हुई है। पहले से बहुत क्षीण और म्लान, मानों सालों से बीमार है। आँखें विस्फारित और एक अस्वाभाविक ज्योति से दमकती हुईं। चेहरा तमतमाया हुआ मानों बुखार है।]

कालीबाबू—कहो, यह जगह पसन्द आई ? अब तुम्हारा जी भी न ऊबेगा, और तन्दुरुस्ती भी ठीक हो जायगी। एक दिन रेलवे के बड़े डाक्टर को लावेंगे। (कुछ ठहर कर) बल्कि आज ही। आज उनका टर्न भी है इधर आने का।

प्रतिभा—(क्षीण स्वर से) क्या होगा, मैं अच्छी तो हूँ, मुझे क्या हुआ है ?

कालीबाबू—नहीं, अब इलाज कराना ही होगा। मैं जब कहता हूँ तब टाल जाती हो। कहती हो कुछ हुआ ही नहीं। ऐसे तो काम नहीं चलेगा। जब देखो तब बुख़ार, सिर में दर्द, खाना कुछ खाती ही नहीं। बदन सूखकर काँटा हो गया है।

प्रतिभा—उँह, यह सब तो होता ही रहता है (जरा सिहरकर) मुझे जाड़ा लग रहा है। जरा कुछ उढ़ा दो (विचित्र भाव से)

कालीबाबू—(लपककर माथे पर हाथ रखकर शरीर का ताप देखने के बाद) ओफ् ओह ! तवे की तरह बदन जल रहा है (बाहर की ओर देखकर ज़ोर से) महराज ! (महराज आते हैं, व्यग्र से) महराज, वह बड़ीवाली रज़ाई तो ले आओ ।

[महराज जाकर रज़ाई ले आते हैं । काली बाबू उसे यत्न से ओढ़ाते हैं । प्रतिभा का शरीर थरथर काँप रहा है, रज़ाई को चारों ओर से लपेटकर लेट जाती है ।]

कालीबाबू—(अत्यन्त उत्तेजित-सा) महराज, देखो तुम यहीं बैठो, मैं अभी जाकर डाक्टर लाता हूँ ।

प्रतिभा—(रज़ाई के नीचे से अस्फुट स्वर में) तुम रात के जगे हो, जाओ नहा-धोकर ख़ुद ही निकालकर कुछ खा-पीकर सो रहो; मेरा बुख़ार अभी उतर जायेगा ।

कालीबाबू—अच्छा, अच्छा, नहाने ही जा रहे हैं, तुम आराम से पड़ी रहो ।

प्रतिभा—(बाहर सिर निकालकर हाथ से इशारा करती हुई) और देखो ! वहीं आलमारी में कुछ बर्फ़ियाँ रक्खी हुई हैं, रात को बनाई थी तुम्हारे लिये । (आधी उठकर कमर से चाबियों का गुच्छा निकालती हुई) यह चाबी लो । (एक चाबी अलग कर हाथ में देती हुई) देखो इसी चाबी से खोल लेना और (फिर लेट जाती है । काली बाबू फिर अच्छी तरह से ओढ़ा देते हैं और जाने को उद्यत होते हैं, पर प्रतिभा उन्हें रोककर कहती है)

प्रतिभा—और देखो मटके में दही है, सँभालकर निकाल लेना, और खाकर यहीं आना और उस सफ़ेद मुरादाबादी कटोरदान में—

चौथा दृश्य

[एक साल बाद]

[क्वार्टर का एक बहुत अच्छा कमरा ! अँगरेज़ी ढंग से सजा हुआ। कुर्सी, टेबल, आलमारी, पलँग, तिपाई आदि सभी अपटुडेट फर्नीचर मौजूद है। कमरे के दोनों ओर एक-एक और पीछे की ओर दो-दो बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ हैं, जिनसे बाहर बड़े स्टेशन का दृश्य साफ़ दिखाई देता है। आराम कुर्सी पर काली बाबू बैठे हुक्का पी रहे हैं। देखने से पहिले की अपेक्षा काफ़ी साफ़-सुथरे और प्रसन्न-चित्त हैं। पलँग पर प्रतिभा एक गाव-तकिये के सहारे पड़ी हुई है। पहले से बहुत क्षीण और म्लान, मानों सालों से बीमार है। आँखें विस्फारित और एक अस्वाभाविक ज्योति से दमकती हुई। चेहरा तमतमाया हुआ मानों बुखार है।]

कालीबाबू—कहो, यह जगह पसन्द आई ? अब तुम्हारा जी भी न ऊबेगा, और तन्दुरुस्ती भी ठीक हो जायगी। एक दिन रेलवे के बड़े डाक्टर को लावेंगे। (कुछ ठहर कर) बल्कि आज ही। आज उनका टर्न भी है इधर आने का।

प्रतिभा—(क्षीण स्वर से) क्या होगा, मैं अच्छी तो हूँ, मुझे क्या हुआ है ?

कालीबाबू—नहीं, अब इलाज कराना ही होगा। मैं जब कहता हूँ तब टाल जाती हो। कहती हो कुछ हुआ ही नहीं। ऐसे तो काम नहीं चलेगा। जब देखो तब बुख़ार, सिर में दर्द, खाना कुछ खाती ही नहीं। बदन सूखकर काँटा हो गया है।

प्रतिभा—उँह, यह सब तो होता ही रहता है (ज़रा सिहरकर) मुझे जाड़ा लग रहा है। ज़रा कुछ उढ़ा दो (विचित्र भाव से)

कालीबाबू—(लपककर माथे पर हाथ रखकर शरीर का ताप देखने के बाद) ओफ़ ओह ! तवे की तरह बदन जल रहा है (बाहर की ओर देखकर ज़ोर से) महराज ! (महराज आते हैं, व्यग्र से) महराज, वह बड़ीवाली रजाई तो ले आओ ।

[महराज जाकर रजाई ले आते हैं । काली बाबू उसे यत्न से ओढ़ाते हैं । प्रतिभा का शरीर गनगन काँप रहा है, रजाई को चारों ओर से लपेटकर लेट जाती है ।]

कालीबाबू—(अत्यन्त उत्तेजित-सा) महराज, देखो तुम यहीं बैठो, मैं अभी जाकर डाक्टर लाता हूँ ।

प्रतिभा—(रजाई के नीचे से अस्फुट स्वर में) तुम रात के जगे हो, जाओ नहा-धोकर ख़ुद ही निकालकर कुछ खा-पीकर सो रहो; मेरा बुख़ार अभी उतर जायेगा ।

कालीबाबू—अच्छा, अच्छा, नहाने ही जा रहे हैं, तुम आराम से पड़ी रहो ।

प्रतिभा—(बाहर सिर निकालकर हाथ से इशारा करती हुई) और देखो ! वहीं आलमारी में कुछ बर्फ़ियाँ रक्खी हुई हैं, रात को बनाई थी तुम्हारे लिये । (आधी उठकर कमर से चाबियों का गुच्छा निकालती हुई) यह चाबी लो । (एक चाबी अलग कर हाथ में देती हुई) देखो इसी चाबी से खोल लेना और (फिर लेट जाती है । काली बाबू फिर अच्छी तरह से ओढ़ा देते हैं और जाने को उद्यत होते हैं, पर प्रतिभा उन्हें रोककर कहती है)

प्रतिभा—और देखो मटके में दही है, सँभालकर निकाल लेना, और खाकर यहीं आना और उस सफ़ेद मुरादाबादी कटोरदान में—

कालीबाबू—(रोककर) अच्छा! अच्छा!! तुम ज़रा खामोश होकर पड़ी तो रहो, मैं डाक्टर को लिवाता लाऊँ।

प्रतिभा—(शरीर पर से रजाई हटाती हुई) नहीं, खाना खाकर आराम से सोना, रात भर तुम्हारी ड्यटी रहती है, और नहीं तो यहीं आकर हमारे पास बैठना। डाक्टर बुलाना हो—तो इसके बाद बुलाना (कहकर स्थिर दृष्टि से स्वामी के मुँह की ओर देखती है और मुसकराने की चेष्टा करती है, काली बाबू उसे फिर उढ़ाकर, महराज को वहीं मौजूद रहने का इशारा कर तेजी से कमरे के बाहर निकल जाते हैं। कुछ देर सन्नाटा, फिर प्रतिभा सिर बाहर निकालती है और चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर महराज से)

प्रतिभा—महराज, वह किधर गये तुम्हें मालूम है ?

महराज—डाक्टर साहेब के कार्टर ओर गये हैं। अब्बैं आवत हैं। अब जी कैसन है ?

प्रतिभा—अच्छा है, जरा अँगोछा लाओ, मुझे पसीना आ रहा है।

महराज—(तुरत खूँटी पर से उठाकर तौलिया देता हुआ) अब बुखार तुरतै उतर जाई।

प्रतिभा—(ललाट पर से पसीने की बूँदें पोंछती हुई) अब कुछ ठंडक मालूम होती है।

महराज—बहूजी, आप नाहक जी खराब किये रहत हैं। अब हियाँ सहर में कौनो तकलीफ न होई आपके। मालूम विनोद बाबू इहीं बड़े कालिज में पढ़त हैं। कौनो दिन जायके बुलाय के लाउब।

प्रतिभा—(म्लान मुसकराती हुई) उँह, अब क्या होगा उन्हें

बुलाकर (मानो उसका कंठस्वर किसी दूसरे लोक से आ रहा है) अब इन सब बातों का जिक्र न किया करो।

महराज—(अत्यन्त सहानुभूति के भाव से) ऐसन न कहैं बहूजी, आपका जवन तकलीफ है ऊ है तो बहुत. पर अइस जिउ छोट किये से का फायदा। हम आजैं जहाँ कहीं ओ मिलिहैं बुलाय ले आउब। अब त बाबू के भी तरक्की भई है। भगवान की दया से सब अच्छै हैं। यही एक खराबी है कि बाबू के कहीं उठै-बैठै के फुरसत नहीं रहत। बेचारे रात भर डिउटी किहेन, दिन भर सोएन। हुआँ त बरु घरी दुइ घरी बैठत भी रहैं, हियाँ उहौ नाहीं।

प्रतिभा—(रजाई फेंककर पलँग से उतरकर टहलती हुई) उँह महराज, तुम क्या अंडबंड बकते हो। तुम क्या समझते हो, किसी के आने न आने से हमारी तबियत खराब होती है।

[दरवाजा खुलता है। एक सूट-बूट चश्माधारी डाक्टर के साथ काली बाबू का व्यग्र भाव से प्रवेश। स्त्री को आराम से कमरे में टहलती देखकर ज़रा प्रसन्नता-मिश्रित आश्चर्य में पड़ जाते हैं। डाक्टर की उम्र पचास के लगभग, शरीर लम्बा-चौड़ा 'क्लीन शेव्ड' चेहरे पर स्वाभाविक प्रसन्नता और सहानुभूति के भाव बहुत स्पष्ट हैं।]

कालीबाबू—(स्त्री से) अरे, यह क्या, तुम्हें बुखार इस क़दर हो रहा है और तुम इस तरह कपड़े फेंक-फाँककर टहल रही हो।

प्रतिभा—(मुस्कराकर हाथ बढ़ाते हुए) कहाँ है बुखार, लो देखो!

डाक्टर—(मुस्कराकर एक कुर्सी पर बैठता हुआ अत्यन्त प्रसन्न और दृढ़ भाव से) कौन बोलता इनको बोखार होआ। ए तो बौत अच्छा हाय।

कालीबाबू—क्या ख़ूब, आपको भी क्या मज़ाक सूझा। ज़रा एक्ज़ामिन तो कीजिये।

डाक्टर—हाँ-हाँ, हम देखेगा, मगर घबराने का कोई बात नेइ हाय (जेब से थर्मामीटर और स्टेथेस्कोप निकालते हुए, थर्मामीटर प्रतिभा को देते हुए) थोड़ा टेम्परेचर लीजिये तो प्रतिभा थर्मामीटर आधा मिनट लगाकर उसको देती है, डाक्टर गौर से उसे देखता है)

डाक्टर—कुछ नेइ हाय, बिलकुल नार्मल, आच्छा अब आप थोड़ा लेट जाइये, हार्ट एक्ज़ामिन करेगा।

[प्रतिभा को यह सब नागवार मालूम होता है, पर पति के ज़ोर देने पर राजी होती है, डाक्टर स्टेथेस्कोप से दिल और फेफड़े वगैरह की परीक्षा करता है।]

डाक्टर—ओही बात, जो हाम आगे बोला। इनको कोई डिज़ीज नेई, सिरिफ मेंटलवरी हाय। आसल बात खुश रैने आउर खुब ओपान एआर में घूमने आउर एकसरसाइज़ का जोरूरत हाय। खूब आच्छा-आच्छा खाना दीजिये। फ्रेश फ्रूटस और ग्रीन स्टफ जितना खाय उतना आच्छा, आउर सबसे जरूरी हाय 'चेंज'। कोई पहाड़ ओहाड़ हो तो आच्छा। कोई दावाइ का काम नेई, सिरिफ पोर्टवाइन और हिमोग्लोबिन सिराप दोनों एक-एक बड़ा चम्मच (डेज़र्ट) रात सोते वखत; बास आउर कुछ नेई। दो माइना में अंगूर का माफिक हो जायेगा। ताजा दूध खूब दीजिए।

कालीबाबू—सुनती हो, क्या कह रहे हैं ?

प्रतिभा—(मुस्कराती हुई) हूँ। मगर यह क्या तो पीने को कह रहे हैं।

डाक्टर—(उठकर टोप सिर पर रखता हुआ और स्टेथेस्कोप वग़ैरह पाकेट में सँभालता हुआ) आच्छा तो हाम चोले (खड़ा होता हुआ।)

कालीबाबू—बहुत तक़लीफ़ की डाक्टर साहब आपने, बड़ी मिहरबानी की आपने, मगर यह तो बताइये, क्या सचमुच इनके इलाज की जरूरत नहीं ?

डाक्टर—ई कौन बोलता जे इलाज का जोरूरत नेइ हाय। हाम जो इलाज बोला, उसको आप दिल्लगी समझता। ओही सबसे बड़ा इलाज हाय, अगर आप करने सके। आउर ओइसे बोले तो प्रेसक्रिपशन लिख दे, दस रुपया रोज़ का।

कालीबाबू—(झेंपता हुआ) नहीं-नहीं, यह मेरा मतलब नहीं था। अच्छा यह बताइये—पहाड़-ओहाड़ तो हमारे लिये ज़रा मुश्किल है। कहीं देहात में भेज देने से काम हो जायेगा ?

कालीबाबू—ख़ूब होगा। थोड़ा हेल्दी जायगा होना चाहिये।

कालीबाबू—अच्छी बात है। कल ही लीजिये।

पाँचवाँ दृश्य

[स्थान वही, जो चौथे दृश्य में है। समय संध्या आठ बजे। काली बाबू आराम-कुर्सी पर लेटे हुए हुक्का पी रहे हैं। फ़र्श पर महराज बैठा हुआ है। दोनों चिन्तित हैं]

महराज—बाबू, घरवा बड़ा सून जानि परत हैं। बहूजी क चिट्ठी-उट्ठी कुछ आवत है कि नाहीं? अब तो अच्छी होइहैं। उनके बिना सब घर खाँ-खाँ करत रहत है।

कालीबाबू—(ज़रा झल्लाकर) अरे तो क्या करें, घर खाँ-खाँ करता है तो जाके लिवा लाओ न। अभी तो कल ही उनकी चिट्ठी आई है, हर चिट्ठी में बराबर यही लिखती हैं कि मैं अब अच्छी हूँ।

महराज—अरे बाबू, ओ त अस कहबै करिहैं। (आँखों में आँसू लाता हुआ) आज छ छ बरिस भवा, कबहूँ आपसे कहिन हैं कि हमका कोई तकलीफ है।

कालीबाबू—(गौर से महराज को घूरते हुए) तो गोया हमसे ज्यादा तुम्हीं उनको पहिचानते हो। अच्छा तो तुम्हारा ख्याल है कि उनको हमारे साथ बड़ी तकलीफ थी?

महराज—बाबू, हम गँवार मनई, दिहाती, आप पढ़ा, लिखा, होशियार होइ के जवन न समुझिहैं ऊ हम का समुझब। मुदा एतना जरूर कहब कि ओने का खुस हम कबहूँ नहीं देखा।

कालीबाबू—(विस्फारित नेत्र) महराज, तुम आज घास तो नहीं खा आये हो? मैंने उन्हें तकलीफ दी है? कभी कड़ा

वात तक तो कही ही नहीं आज तक। अब इस पर भी किसी को तकलीफ़ हो तो क्या करें।

महराज—(रहस्य से) इहै त वतियै है—मगर सरकार, कसूर माफ रहै, एक वात कहब (आवेश और गम्भीरता से) आप कभौं ई जानैक कोसिसो त नहीं किहेन कि उनके मन में कहाँ कौन दुख है। एक आध दफे वहूजी कुछ इसारा किये रहीं पै आप कुछ खियालै न किहेन। फिर वहूजी भी मन वटोरि लिहिन।

कालीवावू—(लापरवाही से) तुम पागल हो।

[टेलीग्राफ़-पिउन का प्रवेश]

पिउन—(एक टेलीग्राफ़ काली वावू को देता हुआ) वावूजी, आप का तार है। (काली वावू जल्दी से लिस्ट पर हस्ताक्षर कर तार ले लेते हैं, चपरासी सलाम कर चला जाता है। कालीवावू एक साँस में तार खोलकर पढ़ लेते हैं और एकदम घबरा उठते हैं।)

महराज--(बड़ी दुश्चिन्ता से) का है वावूजी ?

कालीवावू—है क्या, वही उनकी मामी का तार है, जिनके यहाँ वे ठहरी हुई हैं। कहती हैं, हालत वहुत ख़राव है। फ़ौरन आओ, मैं चला, देखें भगवान्—(महराज डवडवाई आँखों से चिन्ता में डूब जाता है, कालीवावू जल्दी-जल्दी बाहर जाने की तैयारी में लगते हैं।)

छठा दृश्य

[एक देहाती गाँव में छोटा-सा घर। पीछे की ओर दो छोटे-छोटे कमरे दिखाई देते हैं, सामने एक लम्बा बरामदा है, जो खपरैल से छाया हुआ है। इसी बरामदे में एक लकड़ी के खम्भे के सहारे एक अधेड़ स्त्री खड़ी है। आँखें लाल हैं और रोते-रोते सूजी हुई-सी जान पड़ती हैं। पीछे फर्श पर दो-तीन और स्त्रियाँ उदास बैठी हुई हैं। इसी समय घबराये हुए काली बाबू का प्रवेश। उन्हें देखते ही वह प्रथम स्त्री जो खड़ी थी, पुक्का फाड़कर रो उठती है।]

स्त्री—सब समाप्त हो गया भैया। आख़ीर वक़्त तक उसकी आँखें खुली ही रह गईं, मानो किसी की प्रतीक्षा कर रही हैं। आज सबेरे ही सब खतम हो गया!

[कालीबाबू सन्न होकर वहीं ज़मीन पर बैठ जाते हैं। पागलों की-सी हालत हो जाती है। आँखें बिलकुल लाल, सूरत भयावनी, बाल रूखे, कपड़े भी सब अस्त-व्यस्त।]

स्त्री—(अत्यन्त सहानुभूति से हाथ पकड़कर उठाती है) चलो कपड़े बदलो, हाथ-मुँह धोओ। वह तो लक्ष्मी थी, अब चली ही गई। अब उसके लिये जी छोटा न करो। मर्द बच्चे हो। बहुत देर तक तुम्हारी राह देखी, पर आखिर में लोग ले ही गये, अब सब लौटते होंगे, करीब चार-पाँच घण्टे हुए होंगे।

कालीबाबू—मामीजी, वह क़िसी तरह हमें छोड़कर यहाँ आने पर राज़ी न होती थी। मैंने ही ज़बरदस्ती यहाँ भेजा। आख़ीर तक यही कहती थी मुझको क्या हुआ है, अच्छी तो हूँ।

स्त्री—(फिर रोकर) यहाँ भी तो उसका यही कहना था। दवा बड़ी मुश्किल से खाती थी। फिर एकाएक कल सवेरे से तबीयत एकदम बहुत ख़राब हो गई, उसी वक्त़ तुमको तार दिया।

कालीबाबू—कुछ कहती थी?

स्त्री—कहती तो क्या थी, प्रलाप बीच-बीच में बकती थी; कभी मुसकराती, कभी रोती, कोई विनोद बाबू हैं? दो-एक बार आँखें बन्द कर, मुसकराकर, 'विनोद बाबू' 'विनोद बाबू' कहा। फिर बोली—'हम तुम्हारी बिन्दी की शीशी बड़ी जतन से रक्खे हुए हैं।' बात बिलकुल बे-सर-पैर की थी। मैंने पूछा भी 'बिटिया, ये विनोद बाबू कौन हैं?' उसने मुसकराकर आँखें बन्द कर लीं। फिर थोड़ी देर बाद पूछने लगी 'अभी वे नहीं आये'। मैंने कहा 'बिटिया, तार कभी मिल गया होगा, अब आते ही होंगे।' फिर कुछ नहीं बोली, टकटकी लगाये दरवाज़े की ओर देखने लगी और अन्तिम घड़ी तक इसी तरह देखती ही रह गई।

[कालीबाबू बड़े गौर से, किन्तु विक्षिप्त-से सब सुनते हैं, मानों कुछ कहने की सामर्थ्य उनमें नहीं रह गई। इसी समय कुछ लोग बाहर से बरामदे में आते हैं। सब नंगे पाँव और शोकपूर्ण मुद्रा में हैं और गंगा स्नान कर लौटे हुए जान पड़ते हैं। ये लोग ध्यान से कालीबाबू को देखते हैं। इनमें से एक वृद्ध, जो पुरोहित-से लगते हैं, हाथ में अस्थि-खण्ड लिये हुए कालीबाबू की ओर अग्रसर होते हैं और बड़ी सहानुभूति से कहते हैं]

पुरोहित—बेटा, ले लो। इसे अपने हाथ से ही प्रवाह कर देना।
(कालीबाबू चित्रलिखे-से उसे ले लेते हैं और पागलों की-सी हालत में वहाँ से चल पड़ते हैं।)

सातवाँ दृश्य

[स्थान वही दृश्य पाँच का, कालीबाबू का क्वार्टर। कालीबाबू पागल अपने पलँग पर लेटे हैं। बगल में वही अस्थिखण्ड है। महराज पंखा झल रहा है, बहुत खिन्न है।]

महराज—बाबूजी, (अस्थिखण्ड की ओर इशारा करते हुए) ई आप परबाहि नाहीं दिहेनि। शास्तर में कहा है।

कालीबाबू—(स्थिर गंभीर स्वर से) महराज, मैं इसे अपने पास ही रक्खूँगा। जरा चाबी का गुच्छा तो लाओ। उनके सन्दूक में उनकी और सब चीज़ें हिफाज़त से रक्खी हैं, वहीं यह भी रहेगी, सदा हमारे हाथ। (महराज चाबियों का गुच्छा देता है, कालीबाबू सन्दूक खोलकर एक-एक चीज़ बड़े यत्न से निकाल-निकालकर पलँग पर रखते हैं चीज़ों में ज़्यादातर कपड़े हैं, जिनमें से अधिकांश पर बड़े-बड़े लाल-लाल ख़ून के-से धब्बे लगे हुए हैं।) ये कपड़े सब किस तरह खराब हो गये—ओह! यह बात है। देखो यह लाल बिन्दी की शीशी कितनी हिफ़ाजत से रक्खी हुई थी। (शीशी को बड़ी श्रद्धा से निकालकर देखता है। वह बिलकुल ख़ाली है, फिर मानों आप ही आप कहता है) इतनी हिफ़ाजत से रखने पर भी फिर न जानें किस तरह गिर पड़ी। (फिर उसी सन्दूक में से एक चिट्ठी लिखने का कागज़ निका-

लता है, जिसके ऊपरवाले पन्ने पर एक अधूरी चिट्ठी-सी लिखी हुई है। वह भी बिन्दी के रंग से लथपथ-सी हो रही है। पूरी इबारत पढ़ी नहीं जाती, तो भी वह आप ही आप विक्षिप्त प्रलाप के तौर पर बड़े प्रेम से आँखें फाड़-फाड़कर पढ़ने लगता है।) "मेरे न जानें कौन विनोद बाबू, तुम आने को कहकर फिर क्यों नहीं आये, मैं हर घड़ी तुम्हारी राह देखा करती हूँ। फिर तुम्हें चिट्ठी भी कैसे लिखूँ, तुम्हारा पता तो मालूम नहीं। और फिर किससे पूछूँ तुम्हारा पता। कैसे पूछूँ?" इसके आगे पढ़ा नहीं जाता (कालीबाबू एकाएक सन्न होकर लेटरपेपर को हाथ में लिये सन्दूक बन्द कर देते हैं और मूर्च्छित से पलँग पर पड़ जाते हैं, आँखें बन्द हो जाती हैं। थोड़ी देर में वह अस्थिखंड उनके दूसरे हाथ से फर्श पर आ गिरता है। महराज दीर्घ निःश्वास के साथ कुछ अस्फुट उच्छ्वास-सा करता हुआ बाहर निकल जाता है, मानों यह दृश्य उसके लिये असह्य हो। थोड़ी देर बाद एक बिल्ली उधर से आती है और उस अस्थिखंड को लेकर खेलने-सी लगती है।)

[यवनिका-पतन]

श्रीउपेन्द्रनाथ 'अश्क'

[आपका जन्म-स्थान जालंधर है। बी० ए० तक वहीं शिक्षा प्राप्त कर आप स्थानीय स्कूल में अध्यापक के पद पर नियुक्त हो गए। कुछ ही दिनों में अध्यापन-कार्य अरुचिकर प्रतीत हुआ और लाहौर चले आए। यहाँ वकालत का इम्तहान पास किया परन्तु आपने प्रेक्टिस नहीं की। शुरू से ही आपकी प्रकृति साहित्यिक है। प्रेमचन्दजी के समान पहले आप भी उर्दू में लिखा करते थे। आपकी कहानियों का संग्रह 'नौरत्न' नाम से उर्दू में प्रकाशित हुआ। यही आपकी सर्वप्रथम कृति है। हिन्दी में लिखने की ओर आपका ध्यान स्वर्गीय प्रेमचन्दजी ने ही सर्वप्रथम आकर्षित किया। हिन्दी में आपने कहानियाँ, नाटक, एकांकी आदि लिखे हैं। हाल में आपने कविता भी लिखी। आपके एकांकी यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। अभी उनका कोई संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ है।

'लक्ष्मी का स्वागत' नामक एकांकी 'हंस' के 'एकांकी नाटक-अंक' में प्रकाशित हुआ था। 'विशाल भारत' में प्रकाशित 'पापी' भी अच्छा बन पड़ा है। 'अधिकार का रक्षक' सामाजिक है। हलका-सा व्यंग्य भी इसमें है। एक भारतीय नेता का संसार की ओर दृष्टिकोण, समाज की ओर उसका ध्यान कितना अधिक होता है परन्तु अपने गृहस्थ की ओर कितना न्यून इसका कथानक है। Charity begins at home वाली कहावत यहाँ चरितार्थ नहीं होती। यह उसका अपवाद है। स्त्री और बच्चों के लिये उनके पास बिल्कुल वक़्त नहीं। अधिकार के रक्षक का Chameleon जैसा चरित्र चित्रित करना ही लेखक का ध्येय है। यत्र-तत्र शिष्ट हास्य के भी छींटे नज़र आते हैं। नाटकीय

संकेत काफ़ी व्यापक हैं। घनश्यामदास बाहर कुछ और भीतर कुछ है। नौकर को फटकार पड़ती है। बच्चा रोता है। उनकी बला से। उन्हें अधिकार की आकांक्षा ने पागल बना रक्खा है। लेखक का ध्येय एक घटना को लेकर उसकी चरम सीमा क्लाइमेक्स तक पहुँचाना नहीं है, वरन् एक व्यक्ति-विशेष का विभिन्न परिस्थितियों में व्यवहार और दृष्टिकोण। भाषा इसकी व्यावहारिक बोलचाल की है। मुहावरेदार है। कथानक की अपेक्षा लेखक का ध्यान कथोपकथन की ओर अधिक है। इसके संवाद काफ़ी मनोरंजक हैं।]

अधिकार का रक्षक

पात्र

घनश्यामदास—एक दैनिक पत्र के मालिक तथा प्रान्तीय असेम्बली के उम्मीदवार।

रामलखन—उनका नौकर।

भगवती—रसोइया।

कालेज के दो लड़के, सम्पादक, श्रीमती घनश्याम नन्हा, बलराम इत्यादि।

❀ ❀ ❀ ❀

समय—आठ बजे सुबह।

स्थान—घनश्यामदास के मकान का ड्राइङ्ग रूम।

[सामने बाईं ओर दीवान के साथ एक बड़ी मेज लगी हुई है, जिस पर एक रैक में करीने से पुस्तकें चुनी हैं, दायें-बायें कोने में लोहे की दो ट्रे रक्खी हैं, जिनमें एक में आवश्यक काग़ज़-पत्र आदि और दूसरी में समाचार-पत्र रक्खे हैं। बीच में शीशे का एक डेढ़ वर्ग-गज का चौकोर टुकड़ा रक्खा है, जिसके नीचे जरूरी कागज दबे हैं। शीशे के टुकड़े और किताबों के रैक के मध्य में एक सुन्दर कलमदान रक्खा हुआ है और एक दो होल्डर शीशे के टुकड़े पर बिखरे पड़े हैं।

मेज़ के इस ओर गद्देदार कुर्सी है, जिसके पास ही दाईं ओर एक ऊँचा स्टूल है, जिस पर टेलीफोन का चोंगा रक्खा हुआ है। स्टूल के दाईं ओर एक तख्त-पोश है, जिस पर सफ़ाई से बिस्तर बिछा हुआ है।

कुर्सी और तख़्त-पोश के बीच में स्टूल इस तरह रक्खा हुआ है कि उस पर पड़ा हुआ टेलीफ़ोन का चोंगा दोनों जगहों से सुगमता के साथ उठाया जा सकता है। तख़्त-पोश के पास एक आराम-कुर्सी पड़ी हुई है। बाईं दीवार के साथ एक कोच का सेट है। बाईं दीवार में दो खिड़कियाँ हैं, जिनके मध्य में कैलेण्डर लटक रहा है। दाईं ओर दीवार में एक दरवाज़ा है, जो घर के बरामदे में खुलता है।

पर्दा उठाने पर घनश्यामदास कुर्सी पर बैठे कोई समाचार-पत्र देखते नज़र आते हैं।]

[टेलीफ़ोन की घण्टी बजती है।]

[घनश्यामदास समाचार-पत्र ट्रे में फेंककर चोंगा उठाते हैं]

"हैलो!"

(ज़रा और ऊँचे) "हैलो!"

"हाँ-हाँ, मैं ही बोल रहा हूँ। घनश्यामदास! आप......अच्छा-अच्छा, इलाराम जी। मन्त्री हरिजन-सभा हैं। नमस्ते, नमस्ते! (ज़रा हँसते हैं) सुनाइए महाराज! कल के जलसे की कैसी रही?"

"अच्छा आपके भाषण के बाद हवा पलट गई। सब हरिजन मेरे हक में प्रचार करने को तैयार हो गये?"

"ठीक-ठीक! आपने खूब कहा, खूब कहा आपने! वास्तव में मैंने अपना समस्त जीवन पीड़ितों, गिरे हुओं और पददलित लोगों को ऊपर उठाने में लगा दिया है। बच्चों को ही लीजिए। हमारे घरों में उनकी दशा कैसी शोचनीय है? उनके लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा के तरीक़े कितने पुराने और दक़यानूसी हैं? उनके स्वास्थ्य की ओर कितना कम ध्यान रक्खा जाता है

रामलखन—(दरवाज़े से झाँककर) बाबूजी, भंगिन……

घनश्याम—(टेलीफ़ोन पर बात जारी रखते हुए) मैं वहाँ भी हरिजनों की सेवा करूँगा। आप अपनी हरिजन-सभा में इस बात की घोषणा कर दें।

रामलखन—(ज़रा अन्दर आकर) बाबूजी……

घनश्याम—(क्रोध से) ठहर पाजी, (टेलीफ़ोन में) नहीं-नहीं, मैं नौकर से कह रहा था (खिसियाने-से होकर हँसते हैं) हाँ, तो आप ऐलान कर दें कि मैं असेम्बली में हरिजनों के पक्ष की हिमायत करूँगा और वे मेरे हक में प्रोपेगेण्डा करें।

"हैं………क्या ? ………अच्छा, अच्छा, मैं अवश्य ही जलसे में शामिल होने की कोशिश करूँगा, क्या करूँ अवकाश ही नहीं मिलता।"

"अच्छा नमस्कार।"

[टेलीफ़ोन का चोंगा रख देते हैं।]

(नौकर से) "तुम्हें तो कहा था, इधर मत आना।"

रामलखन—आपने ही तो कहा था कि कोई आए तो इत्तला कर देना। भंगिन आई है और दो महीने की मजूरी……

घनश्याम—(गुस्से से) कह दो भंगिन से, अगले महीने आये। मेरे पास समय नहीं। चले जाओ। किसी को मत आने दो।

भंगिन—(दरवाज़े के बाहर से विनीत स्वर में) महराज, दूधों नहाओ, पूतों फलो ! दो महीने हो गये हैं।

घनश्याम—कह जो दिया, फिर आना। जाओ। अब समय नहीं।

[भगवती प्रवेश करता है।]

भगवती—जयरामजी की बाबूजी।

घनश्याम—तुम इस समय क्यों आये हो भगवती ?

भगवती—बाबूजी, हमारा हिसाब कर दो !

घनश्याम—(बेपरवाही से) तुम देखते हो, आजकल चुनाव के कारण कुछ नहीं सूझता। कुछ दिन ठहर जाओ।

भगवती—बाबूजी, अब एक घड़ी भी नहीं ठहर सकता। आप मेरा हिसाब चुका ही दीजिए।

घनश्याम—(ज़रा ऊँचे स्वर से) कहा जो है, कुछ दिन ठहर जाओ। यहाँ अपना तो होश नहीं और तुम हिसाब-हिसाब चिल्लाये जा रहे हो।

भगवती—जब आपकी नौकरी करते हैं तो खाने के लिये कहाँ माँगने जायँ।

घनश्याम—अभी चार दिन हुए दो रुपये ले गये थे।

भगवती—वे कहाँ रहे ? एक तो मार्ग में बनिये की भेंट हो गया था। दूसरे से मुश्किल से आज तक काम चला है।

घनश्याम—(जेब से रुपया निकालकर फ़र्श पर फेंकते हुए) तो लो। अभी यह एक रुपया ले जाओ।

भगवती—नहीं बाबूजी, एक-एक नहीं। आप मेरा सब हिसाब चुका दीजिए। वेतन मिले तीन-तीन महीने हो गये हैं। एक-एक दो-दो से कितने दिन काम चलेगा ? हमारे भी आख़िर बीबी-बच्चे हैं; उन्हें भी खाने-ओढ़ने को चाहिये। आप एक दिन के चाय-पानी में जितना ख़र्च कर देते हैं, उतना हमारे एक महीने……

घनश्याम—(क्रोध से) क्या बक-बक कर रहे हो ? कह जो दिया अभी यह ले जाओ, बाकी फिर ले जाना।

भगवती—हम तो आज ही सब लेकर जायेंगे।

घनश्याम—(उठकर, और भी क्रोध से) क्या कहा ? आज

लोगे। अभी लोगे ! जा, नहीं देते। एक कौड़ी भी नहीं देते। निकल जा यहाँ से, जा, जाकर पुलिस में रिपोर्ट कर दे। पाजी, हरामखोर, सूअर ! आज तक सब्जी में, दाल में, सौदा-सुलुफ में, यहाँ तक कि बाजार से आनेवाली हर चीज में पैसे रखता रहा, हमने एक बात तक न की और अब यों अकड़ता है। जा निकल जा। जाकर अदालत में मामला चला दे। देखना चोरी के अपराध में चार महीने के लिये जेल भिजवा देता हूँ या नहीं।

भगवती—सच है बाबू। ग़रीब लाख ईमानदार हो तो भी चोर है, डाकू है और यदि आँखों में धूल झोंककर हज़ारों पर हाथ साफ कर जाय, चन्दे के नाम पर सहस्रों····

घनश्याम—(क्रोध से पागल होकर) तू जायगा या नहीं। (नौकर को आवाज़ देते हैं) रामलखन, रामलखन !

रामलखन—जी बाबूजी, जी बाबूजी ! (भागता हुआ भीतर आता है।)

घनश्याम—इसको बाहर निकाल दे।

रामलखन—(भगवती के बलिष्ठ चौड़े शरीर को नख से शिख तक देखकर) इसको बाहर निकाल दूँ, यह हमसे कब निकलेगा ? यह तो हमीं को निकाल देगा······

घनश्याम—(बाज़ू से रामलखन को परे हटाकर) हट, तुझसे क्या होगा ?

[भगवती को पकड़कर बाहर निकालते हैं।]

"निकलो, निकलो।"

भगवती—मार लें और मार लें। हमारे चार पैसे रखकर आप लक्षाधीश नहीं हो जायेंगे।

[घनश्यामदास उसे बाहर निकालकर ज़ोर से दरवाज़ा बन्द कर देते हैं।]

(रामलखन से) "तुम यहाँ खड़े क्या कर रहे हो? निकलो।

[रामलखन डरकर निकल जाता है।]

घनश्याम—(तख़्तपोश पर लेटते हुए)—मूर्ख, नामाकूल ! फिर उठकर कमरे में इधर-उधर घूमते हैं, फिर सीटी बजाते हैं और घूमते हैं, फिर नौकर को आवाज़ देते हैं) "रामलखन, रामलखन !"

रामलखन—(बाहर से) आया बाबूजी ! (प्रवेश करता है)

घनश्याम—अख़बार अभी आया है कि नहीं ?

रामलखन—आ गया बाबूजी, बड़े काका पढ़ रहे हैं, अभी लाये देता हूँ।

घनश्याम—पहले इधर क्यों नहीं लाया ? कितनी बार कहा है, अख़बार पहले इधर लाया कर। लाओ दौड़कर।

[रामलखन दौड़ता हुआ जाता है।]

घनश्याम—(घूमते हुए अपने आप) मेरा बयान कितना जोरदार था, छात्रों में हलचल मच गई होगी, सबकी सहानुभूति मेरे साथ हो जायेगी।

[टेलीफ़ोन की घंटी बजती है। घनश्याम जल्दी से चोंगा उठाते हैं]

(टेलीफ़ोन पर, धीरे से) "हेलो !"

(ज़रा ऊँचे) "हेलो !......कौन साहब ?...... मन्त्री होजरी यूनियन ! अच्छा-अच्छा, नमस्कार-नमस्कार। सुनाइए आपके चुनाव-क्षेत्र का क्या हाल है ?"

"क्या ?......सब मेरे हक में वोट देने को तैयार हैं। मैं कृतज्ञ हूँ। मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ।"

"इस ओर से आप बिल्कुल तसल्ली रक्खें। मैं उन आदमियों में नहीं जो कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं। मैं जो कहता हूँ वही करता हूँ और जो करता हूँ वही कहता हूँ। आपने मेरा इलेक्शन मैनीफेस्टो, चुनाव सम्बन्धी घोषणा नहीं पढ़ी। मैं असेम्बली में जाते ही मजदूरों की हालत सुधारने की कोशिश करूँगा। उनकी स्वास्थ्य-रक्षा, सुख-आराम, पठनपाठन और दूसरी माँगों के सम्बन्ध में खास बिल असेम्बली में पेश करूँगा।"

"क्या ? हाँ-हाँ, इस ओर से भी मैं बेपरवाह नहीं। मैं जानता हूँ, इस सिलसिले में श्रमजीवियों को किस मुसीबत का सामना करना पड़ता है। ये पूँजीपति ग़रीब मजदूरों के कई-कई महीनों के वेतन रोककर उन्हें भूखों मरने पर विवश करते हैं। स्वयं मोटरों में सैर करते हैं, आलीशान होटलों में खाना खाते हैं और जब ये ग़रीब दिन-रात मेहनत करने के बाद—खून-पसीना एक कर देने के बाद अपनी मजदूरी माँगते हैं तब उन्हें हाथ तंग होने के, कारोबार में हानि होने के और ऐसे ही दूसरे बहाने बनाकर टाल देते हैं। मैं असेम्बली में जाते ही एक ऐसा बिल पेश करूँगा जिससे वेतन के बारे में मजदूरों की सब शिकायतें सरकारी तौर पर सुनी जायँ और जिन लोगों ने ग़रीब श्रमियों की तनख्वाहें तीन महीने से ज्यादा दबा रक्खी हों उनके विरुद्ध मामला चलाकर उन्हें दण्ड दिया जाय।"

"हाँ, आपकी यह माँग भी सोलहों आने ठीक है। मैं असेम्बली में इस माँग का समर्थन करूँगा। सप्ताह में ४२ घंटे काम की माँग कोई अनुचित नहीं। आखिर मनुष्य और पशु में कुछ तो अन्तर होना ही चाहिये। तेरह-तेरह घंटे की ड्यूटी! भला काम की कोई हद भी है!"

[धीरे-धीरे दरवाजा खुलता है और सम्पादक महोदय भीतर आते हैं।]

[पतले-दुबले-से—आँखों पर मोटे शीशे की ऐनक चढ़ी है। गाल पिचक गये हैं और ऐसा प्रतीत होता है जैसे आपको देर से प्रवाहिका की तकलीफ़ हो।]

[धीरे से दरवाजा बन्द करके खड़े रहते हैं]

घनश्याम—(सम्पादक से) आप बैठिये। (टेलीफोन पर) ये हमारे सम्पादक महोदय आये हैं। अच्छा तो फिर शाम को आपकी सभा हो रही है। मैं आने की कोशिश करूँगा। और कोई बात हो तो कहिए। नमस्कार!

[चोंगा रख देते हैं]

(सम्पादक से) "बैठ जाइए, आप खड़े क्यों हैं?"

सम्पादक—नहीं-नहीं, कोई बात नहीं।

[तकल्लुफ़ के साथ कोच पर बैठते हैं। रामलखन अख़बार लिए आता है।]

रामलखन—बड़े काका तो देते नहीं थे, पर जबरदस्ती ले आया।

घनश्याम—(समाचार-पत्र लेकर) जा, जा बाहर बैठ। [कुर्सी को तख़्तपोश के पास सरकाकर उस पर बैठते हैं, पाँव तख़्त-

पोश पर टिका लेते हैं और समाचार-पत्र देखने लगते हैं]

सम्पादक—मैं..........

घनश्याम—(अखबार बन्द करके) हाँ-हाँ, पहले आप ही फरमाइए।

सम्पादक—(ओठों पर जबान फेरते हुए) बात यह है कि मेरी... मेरा मतलब है कि मेरी आँखें बहुत ख़राब हो रही हैं।

घनश्याम—आपको डाक्टर से परामर्श करना था। कहिए डाक्टर खन्ना के नाम रुक्का लिख दूँ।

सम्पादक—नहीं, यह बात नहीं, (थूक निगलकर) बात यह है कि मेरी आँखें इतना बोझ नहीं सह सकतीं। आप जानते हैं मुझे दिन के बारह बजे आना पड़ता है। बल्कि आजकल तो साढ़े ग्यारह बजे ही आता हूँ। शाम को छः-सात बज जाते हैं, फिर रात को नौ बजे आता हूँ और फिर एक भी बज जाता है, दो भी बज जाते हैं, तीन भी बज जाते हैं।

घनश्याम—तो आप इतनी देर न बैठा करें। बस जल्दी ही काम निपटा दिया करिए।

सम्पादक—मैं तो लाख चाहता हूँ पर जल्दी कैसे निपट सकता हूँ। एक मैं हूँ और दो दूसरे आदमी हैं, जो न ठीक अनुवाद कर सकते हैं, न ठीक लेख लिख सकते हैं, और पत्र बड़े-बड़े आठ पृष्ठों का निकलना होता है। फिर भी शायद काम जल्दी ख़त्म हो जाय पर कोई समाचार रह गया तो आप नाराज़......।

घनश्याम—हाँ-हाँ, समाचार तो न रुकना चाहिए।

सम्पादक—और फिर यही नहीं, आपके भाषणों की रिपोर्ट की भी प्रतीक्षा होती है। उन्हें ठीक करते-कराते डेढ़ बज जाता है। अब आप ही बताइए पहले कैसे जा सकते हैं ?

घनश्याम—(बेज़ारी से) तो आखिर आप चाहते क्या हैं ?

सम्पादक—मैंने पहले भी निवेदन किया था कि यदि एक और आदमी का प्रबन्ध कर दें तो अच्छा हो। दिन को वह आ जाये करे और रात को मैं और फिर प्रति सप्ताह बदली भी हो सकती है। इससे·········

घनश्याम—मैं आपसे पहले ही कह चुका हूँ, यह असम्भव है; बिल्कुल असम्भव। अख़बार कोई बहुत लाभ पर नहीं चल रहा है। इस पर एक और सम्पादक के वेतन का बोझ कैसे डाला जा सकता है ? अगले महीने पाँच रुपये मैं आपके बढ़ा दूँगा।

सम्पादक—मेरा स्वास्थ्य आज्ञा नहीं देता। आखिर आँखें कब तक बारह-बारह तेरह-तेरह घंटे काम दे सकती हैं ?

घनश्याम—कैसी मूर्खों की बातें करते हो। छः महीने में पाँच रुपया वृद्धि तो सरकार के घर में भी नहीं मिलती। वैसे आप काम छोड़ना चाहते हैं तो शौक से छोड़ दें। एक नहीं, दस आदमी मिल जायेंगे, लेकिन······

[रामलखन भीतर आता है]

रामलखन—बाहर दो लड़के हैं, आपसे मिलना चाहते हैं।

घनश्याम—कौन हैं ?

रामलखन—अपने को सेक्रेटरी कहते हैं।

घनश्याम—जाओ, बुलालाओ। (सम्पादक से) आज के पत्र में मेरा जो वक्तव्य प्रकाशित हुआ है, मालुम होता है, उसका कालेज के लड़कों पर अच्छा प्रभाव पड़ा है।

सम्पादक—(अन्यमनस्कता से) अवश्य पड़ा होगा।

घनश्याम—मैंने छात्रों के अधिकारों की हिमायत भी तो ख़ूब की

है। स्टूडेण्ट-फेडरेशन (छात्रसंघ) ने जो माँगें यूनिवर्सिटी के सामने पेश की हैं, मैंने उन सबका समर्थन किया है।

[दो लड़के प्रवेश करते हैं। दोनों सूट पहने हुए हैं, एक ने टाई लगा रक्खी है, दूसरे के खुले गले की कमीज़ है।]

दोनों—नमस्ते।

घनश्याम—नमस्ते।

[दोनों कोच पर बैठते हैं।]

घनश्याम—कहिये मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ।

खुले कालरवाला—हमने आज का आपका बयान पढ़ा है।

घनश्याम—आपने कैसा पसन्द किया ?

वही लड़का—छात्रों में सब ओर उसी की चर्चा है। बड़ा जोश प्रगट किया जा रहा है।

घनश्याम—आपके मित्र किधर वोट दे रहे हैं ?

वही लड़का—कल तक तो कुछ न पूछिये; लेकिन मैं आपको निश्चय दिलाता हूँ कि इस बयान के बाद ७५ प्रतिशत आपकी ओर हो गये हैं। अभी हमारी सभा हुई थी। छात्रों का बहुमत आपकी ओर था।

घनश्याम—(उल्लसित होकर) और मैंने ग़लत ही क्या लिखा है ? जिन लोगों का मन बूढ़ा हो चुका है वे नवयुवकों का प्रतिनिधित्व क्या करेंगे ? युवकों को तो उस नेता की आवश्यकता है जो शरीर से चाहे बूढ़ा हो चुका हो, पर जिसके विचार न बूढ़े हों, जो रिफार्म से ख़ौफ न खाय, सुधारों से न कतराय।

वही लड़का—हम अपने कालेज के प्रबन्ध में भी कुछ परिवर्तन चाहते थे। परन्तु कालेज के सर्व-सर्वाओं ने हमारी बात ही नहीं सुनी।

घनश्याम—आपको प्रोटेस्ट (विरोध) करना चाहिए था।

वही लड़का—हमने हड़ताल कर दी है।

घनश्याम—आपने क्या माँगें पेश की हैं ?

वही लड़का—हम वर्तमान प्रिंसिपल नहीं चाहते। न वह ठीक तरह पढ़ा सकता है, न ठीक प्रबन्ध कर सकता है। कोई छींके तो जुर्माना कर देता है, कोई खाँसे तो बाहर निकाल देता है। छात्रों से उसका व्यवहार सर्वथा अनुचित है और उनके नातेदारों से अत्यन्त अपमानजनक !

घनश्याम—(उदासीनता से) तो आप क्या चाहते हैं ?

दोनों—हम योग्य प्रिंसिपल चाहते हैं।

घनश्याम—(गिरी हुई आवाज़ से) आपकी माँग उचित है, पर अच्छा होता आप हड़ताल करने के बदले वैधानिक रीति प्रयोग में लाते, प्रबन्ध कर्त्ताओं से मिल-जुलकर मामला ठीक करा लेते।

वही लड़का—हम सब करके देख चुके हैं।

घनश्याम—हुँ !

टाई वाला लड़का—बात यह है जनाब कि छात्र कई वर्षों से वर्तमान प्रिंसिपल से असन्तोष प्रगट करते आ रहे हैं, पर व्यवस्थापकों ने तनिक भी परवा नहीं की। कई बार आवेदन-पत्र कालेज की प्रबन्ध कमेटी के पास भेजे गये, पर कमेटी के कानों पर जूँ भी नहीं रेंगी। हार कर हमने हड़ताल कर दी है पर मुश्किल यह है कि कमेटी काफी मज़बूत है, प्रेस पर उसका अधिकार है। हमारे विरुद्ध सच्चे-झूठे बयान प्रकाशित कराये जा रहे हैं, और हमारा समाचार तक नहीं छापा जाता।

आपने छात्रों की सहायता का, उनके अधिकारों की रक्षा का बीड़ा उठाया है। इसीलिए हम आपकी सेवा में उपस्थित हुए हैं।

घनश्याम—(रुखाई से) मैं आपका सेवक हूँ। ये हमारे सम्पादक हैं। आप कल दफ्तर में जाकर इनको अपना बयान दे दें। ये जितना उचित समझेंगे, छाप देंगे।

दोनों—(उठते हुए) बहुत बेहतर, कल हम सम्पादकजी की सेवा में हाजिर होंगे।

घनश्याम और सम्पादक—नमस्कार।

[दोनों का प्रस्थान]

घनश्याम—(सम्पादक से) यदि वे कल आयें तो इनका बयान हर्गिज न छापना। प्रिंसिपल हमारे मेहरबान हैं और कमिटी के सदस्य हमारे मित्र !

सम्पादक—(मुँह फुलाये हुए) बहुत अच्छा।

घनश्याम—आप घबरायें नहीं, यदि आपको कुछ दिन ज्यादा काम ही करना पड़ गया तो क्या आफत आ गई। जब मैंने अखबार शुरू किया था तब चौदह-चौदह, पन्द्रह-पन्द्रह घंटे काम किया करता था। यह महीना आप किसी न किसी तरह निकालिये, चुनाव होले, फिर कोई प्रबन्ध कर दूँगा।

सम्पादक—(दीर्घ निःश्वास छोड़कर) बहुत अच्छा।

[प्रस्थान]

[घनश्याम समाचार-पत्र पढ़ना शुरू कर देते हैं। दरवाज़ा ज़ोर से खुलता है और घसीराम का बाजू थामे निमेश बगुले की भाँति प्रवेश करता है।]

मिसेज घनश्याम—मैं कहती हूँ, आप बच्चों से कभी मुहब्बत करना सीखेंगे भी। जब देखो, घूरते, झिड़कते, डाँटते नज़र आते हो, जैसे बच्चे अपने न हों, पराये हों। भला आज इस बेचारे से क्या अपराध हो गया जो पीटने लगे? देखो तो सही अभी तक कान कितना लाल है।

घनश्याम—(पूर्ववत् समाचार-पत्र पर दृष्टि जमाये हुए) तुम्हें कभी बात करने का सलीका भी आयेगा। जाओ इस समय मेरे पास वक्त नहीं है।

मिसेज घनश्याम—आपके पास हमारी बात सुनने के लिए कभी वक्त होता भी है? मारने और पीटने के लिए न जाने कहाँ से समय निकल आता है? इतनी देर से ढूँढ़ रही थी इसे। नाश्ता कब से तैयार था, बीसों आवाज़ें दीं, घर का कोना-कोना छान मारा। आखिर देखा कि भूसे की कोठरी में बैठा सिसक रहा है। आखिर क्या बात हो गई थी?

घनश्याम—(क्रोध से अखबार को तख़्त-पोश पर पटक कर) क्या बके जा रही हो? बीस बार कहा है कि इन सबको सँभाल कर रक्खा करो। आ जाते हैं सुबह दिमाग चाटने के लिए।

[मिसेज घनश्याम बच्चे के दो थप्पड़ लगाती है, बच्चा रोता है।]

मिसेज घनश्याम—तुझे कितनी बार कहा है, इस कमरे में न आया कर। ये बाप नहीं, दुश्मन हैं। लोगों के बच्चों से प्रेम करेंगे, उनके सिर पर प्यार का हाथ फेरेंगे, उनके स्वास्थ्य के लिए बिल पास करायेंगे, उनकी

उन्नति के लिए भाषण झाड़ते फिरेंगे और अपने बच्चों के लिए भूलकर भी प्यार का एक शब्द जबान पर न लायेंगे। (बच्चे के एक और चपत लगाती है।) तुझे कितनी बार कहा है, न आया कर इस कमरे में। मैं तुझे नौकर के साथ मेला देखने भेज देती। (आवाज़ ऊँची होते-होते रोने की हद को पहुँच जाती है।) स्वयं जाकर दिखा आती। तू क्यों आया यहाँ—मार खाने कान तुड़वाने ?

घनश्याम—(क्रोध से पागल सा होकर, पत्नी को ढकेलते हुए) मैं कहता हूँ इसे पीटना हो तो उधर जाकर पीटो। यहाँ इस कमरे में आकर क्यों शोर मचा दिया ? अभी कोई आ जाय तो क्या हो ? कितनी बार कहा है, इस कमरे में न आया करो। घर के अन्दर जाकर बैठा करो।

[मिसेज घनश्याम तन कर खड़ी हो जाती हैं।]

मिसेज घनश्याम—आप कभी घर के अन्दर आयें भी। आपके लिए तो जैसे घर के अन्दर आना गुनाह करने के बराबर है। खाना इस कमरे में खाओ, टेलीफोन सिराहने रखकर इसी कमरे में सोओ, सारा दिन मिलने वालों का ताँता यहाँ लगा रहे। न हो तो कुछ न कुछ लिखते रहो, लिखो न तो पढ़ते रहो, पढ़ो न तो बैठे सोचते रहो। आखिर हमें कुछ कहना हो तो किस समय कहें ?

घनश्याम—कौन-सा मैंने उसका सिर फोड़ दिया है, जो कुछ कहने की नौबत आ गई ? जरा-सा उसका कान पकड़ा था कि बस आकाश सिर पर उठा लिया।

मिसेज घनश्याम—सिर फोड़ने का अर्मान रह जाता हो तो वह भी निकाल डालिये। कहो तो मैं ही उसका सिर फोड़ दूँ।

[उन्मत्तों की भाँति बच्चे का सिर पकड़ कर तख्त-पोश पर मारती हैं। घनश्याम उसे तड़ातड़ पीटते हैं।]

घनश्याम—(पीटते हुए पूरी-पूरी आवाज़ से) मैं कहता हूँ, तुम पागल हो गई हो। निकल जाओ यहाँ से। इसे मारना है तो उधर जाकर मारो, पीटना है तो उधर जाकर पीटो, सिर फोड़ना है तो उधर जाकर फोड़ो। तुम्हारी नित्य की बक-बक से तंग आकर मैं इधर एकांत में आ गया हूँ। अब यहाँ आकर भी तुमने चीखना-चिल्लाना शुरू कर दिया। क्या चाहती हो? यहाँ से भी चला जाऊँ?

मिसेज घनश्याम—(रोते हुए) आप क्यों चले जायें? हम ही चली जायेंगी!

[भर्राई हुई आवाज़ में नौकर को आवाज़ देती है]

"रामलखन, रामलखन!"

रामलखन—आया बीबीजी!

[प्रवेश करता है]

मिसेज घनश्याम—जाओ! जाकर ताँगा ले आओ। मैं मायके जाऊँगी।

[तेज़ी से बच्चे को लेकर चली जाती है। दरवाजा ज़ोर से बन्द होता है]

घनश्याम—बेवकूफ़!

[आराम कुर्सी पर बैठकर टाँगें तख्तपोश पर रख लेता है और पीछे को लेटकर अखबार पढ़ने लगता है। टेलीफोन की घंटी बजती है।]

घनश्याम—(वहीं से चोंगा उठाकर कर्कश स्वर में) हेलो ! हेलो ! नहीं, यह ३८१२ है, गलत नम्बर है।

[बेजारी से चोंगा रख देता है]

"इडियट्स" (मूर्ख) !

[टेलीफ़ोन की घंटी फिर बजती है]

(और भी कर्कश स्वर में) "हेलो ! हेलो !"

कौन श्रीमती सरलादेवी ! (उठकर बैठता है। चेहरे पर मृदुलता और आवाज़ में माधुर्य आ जाता है) माफ कीजियेगा, मैं ज़रा परेशान हूँ। सुनाइये तबीयत तो ठीक है ?"

(दीर्घ निःश्वास छोड़कर) "मैं भी आपकी कृपा से अच्छा हूँ। सुनाइये आपके महिला-समाज ने क्या पास किया है ? मैं भी कुछ आशा रक्खूँ या नहीं।"

"मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ, अत्यन्त आभारी हूँ। आप निश्चय रक्खें। मैं जी-जान से स्त्रियों के अधिकारों की रक्षा करूँगा। महिलाओं के अधिकारों का मुझ से बेहतर रक्षक आपको वर्तमान उम्मीदवारों में नज़र न आयेगा।"

[पर्दा गिरता है]

श्री भुवनेश्वरप्रसाद वर्मा

[श्री भुवनेश्वरप्रसाद ने साहित्य में अभी हाल में ही पदार्पण किया है। उनका पहला नाटक 'हंस' में सन् ३३ में छपा। हिन्दी साहित्य में आपने मौलिक एकांकी लिखकर जो अपनी सृजन शक्ति का परिचय दिया वह अद्वितीय है। हिन्दी को आपसे बड़ी आशा है।

यह हिन्दी के उन इने-गिने कलाकारों में से हैं जिन्होंने समस्या मूलक नाटकों की Problem Plays की सृष्टि की। बड़े नाटक में पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र का जो स्थान है, छोटे नाटक में वही आपका है। दोनों ही निस्सन्देह पश्चिम की नाट्य-प्रणाली से खूब प्रभावित हुए हैं। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में योरप के साहित्य में समस्यामूलक नाटकों की बाढ़-सी आ गई थी। इब्सन इस प्रवृत्ति के प्रथम महा-पुरुष हैं। इसी वस्तुवाद को भुवनेश्वरप्रसाद ने भी अपनाया है। इब्सन और शा इनके गुरु हैं। इनके 'श्यामा' पर तो उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है शा के Candida की छाप पड़ी है। इतना ही नहीं। उनकी प्रत्येक कृति पश्चिम का स्मरण दिलाती है। भारतीय जीवन की आपने कठिन आलोचना की है। जीवन की असम्पूर्णता भी उनमें है। आपने समाज के खोखलेपन को खूब अच्छा दिखलाया है। उनकी व्यंग्यात्मक और पैनी दृष्टि से बाहर से आदर्शवादी और अन्दर से निकृष्ट पात्र बच नहीं सके हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो समाज की दृष्टि में पतित और विद्रोही हैं, परन्तु वास्तव में साहसी और वीर हैं। विद्रोह और रूढ़िग्रस्त समाज के प्रति असन्तोष जो इनके नाटकों में है अन्यत्र नहीं। आपका एकांकी नाटकों का एक संग्रह 'कारवाँ' नाम से भारती भण्डार से

प्रकाशित हो चुका है । इसके अतिरिक्त भी यत्र-तत्र आपके नाटक प्रकाशित हो रहे हैं । 'हंस' में प्रकाशित 'ऊसर' और 'स्ट्राइक' मुख्य हैं । 'कारवाँ' के विषय में प्रकाशचन्द्र गुप्त[1] का कथन है:—'कारवाँ' हिन्दी साहित्य में एक नई शक्ति का चिह्न है······'कारवाँ' की कृतियों पर पाश्चात्य 'टैकनीक' और विचार धारा की गहरी छाप है······अवसाद और उद्विग्नता की जो अन्तर्ध्वनि यहाँ सुन पड़ती है, वह नष्ट होते हुए समाज में स्वाभाविक है। उनका नग्न यथार्थवाद से प्रेरित चित्रों की ओर झुकाव है जिसका अभिव्यंजन व्यापक, लचकदार, मौलिक, कवित्वपूर्ण और प्रभावशाली भाषा में हुआ है जो अन्यत्र दिखाई नहीं देता । उनके नाटकीय संकेत (Stage Directions) लम्बे और व्यापक बने हैं ।

'ऊसर' इनकी सर्वोत्तम कृति है। इसमें इनका दृष्टिकोण मनोवैज्ञानिक है। आधुनिक मनोविज्ञान की विकसित और फैलती हुई शाखाओं का यह साहित्यक रूप है। लेखक पर पश्चिमीय Unconscious मनोवैज्ञानिक Freud फ्रायड के मग्नचेतन के सिद्धान्त का पूर्ण प्रभाव पड़ा है । साइको एनलिसिस की सहायता से कलाकार ने अपने कथानक की सृष्टि की है। लेखक का दृष्टिकोण Objective है, लेखक 'ऊसर' के डाक्टर के रूप में ही आधुनिक भारतीय समाज की आलोचना, एक Decorous age का चित्र हमारे सम्मुख उपस्थित करता है । 'ऊसर' एक पश्चिम मनोवैज्ञानिक के शब्दों में व्यवहारिक का नियम है । व्यवहारिक मनोविज्ञान अथवा Empirical Psychology का अर्थ मनुष्य के गुप्त रहस्यों का उद्घाटन व्यवहार व्यापार द्वारा है । विषय पर कोई निर्धारित शब्द-सूची का व्योरेवार उच्चारण किया जाता है और सुनने वाला सुन कर सबसे प्रथम मस्तिष्क में आने

१ देखिये प्रकाशचन्द्र गुप्त का 'हमारे नाटक' 'हंस' नं० ३८ ।

वाले वाक्य और शब्द द्वारा उसका उत्तर देता है[२] । यही 'ऊसर' का कथानक है । हिन्दी नाट्य-साहित्य के लिये मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों को साहित्यक रूप में परिणत करने का यह प्रथम सराहनीय उदाहरण है इसके अध्ययन के लिये मनोविज्ञान का प्रारम्भिक ज्ञान अनिवार्य है । 'ऊसर' का वातावरण न तो काल्पनिक है, न धूमिल । समाज की नग्न यथार्थता इसमें है । इसकी भाषा सरल, कठोर मिश्रित गतिशील है जिसका प्रभाव हृदय पर तुरन्त ही होता है ।]

---

२ "One of the psychologist's methods of exploring the dark interior is that of free association; A list of words is spoken to the subject, to each of which he answers the first word that comes into his head." Cecil Day Lewis: "A Hope for Poetry" पृष्ठ २० ।

गृहस्वामी—(खिड़की के बाहर थूककर) और अँग्रेजी तो आप सब भूल गये; अब कभी मेहमान आयें तो आप अपने ट्यूटर के साथ……

[थूकता है । लड़का बाहर की ओर देखता है और युवक जो गृहस्वामी के आते ही उठकर खम्भे के सहारे खड़ा हो गया है भीतर की तरफ़ धीरे-धीरे बढ़ता है ।]

गृहस्वामी—(युवक से) तुम कहाँ गये थे—? मैं कहता हूँ कि जब रात को तुम्हें पढ़ाना हुआ करे तो शाम को साइकिल बाज़ी न किया कीजिये । (थूकता है) भाई जान, इसमें आप ही का फ़ायदा है ।

युवक—(चुप है जैसे चुप रह कर वह उसे हरा देगा ।)

गृहस्वामी—और तुम भीतर आ सकते थे……(सहसा) और तुमने चाय कहाँ पी……

युवक—जी नहीं ।

[गृहस्वामी जैसे इस जवाब से एकदम असन्तुष्ट हो उठा । उसने दियासलाई बाहर फेंक दी और ट्यूटर (युवक) की तरफ़ से फिरकर एक कुर्सी पर बैठ गया, फिर उठकर बत्ती जला दी । उसे सन्तोष से देखा और फिर बैठ गया—ट्यूटर बजाने खिसक कर लड़के के पास आना चाहता है लड़का चुपचाप कुत्ते की तरफ़ बिना देखे टाँगों से खेल रहा है ।]

ट्यूटर—आज तो मिसेज़ मिचल अच्छी हैं ?

गृहस्वामी—(जैसे उसने मिसेज़ मिचल का अपमान किया हो ।) क्या अच्छी हैं । ज़रा-सी पार्टी पर आप देखिये इतने भर [illegible] हार्ट से पड़ी रहेंगी । अब उन लोगों को घूम-घूमकर मकान और बाग़ दिखाया जा रहा है फिर इन लोगों को……

ट्यूटर—मैं आज आप से सुबह से कुछ कहना चाहता था, पर आप सुबह से बिज़ी थे और शायद कल आप दौरे पर चले जायेंगे......?

गृहस्वामी—(एकटक उसकी तरफ़ देखता रहता है जैसे यह कोई बड़ा बेहूदा सवाल है।)

ट्यूटर—मैं सोचता हूँ कि यह इन्टेलेक्चुअल एक्सपेरीमेंटर का जीवन जो मैं......

[कुत्ता चीख पड़ता है शायद उसका पैर जूते से कुचल गया है। ट्यूटर एक छोटी घड़ी के समान रुक जाता है। गृहस्वामी उछल पड़ता है।]

गृहस्वामी—देखोजी......(लड़का कुत्ता बगल में दबाकर भीतर भाग जाता है।)

गृहस्वामी—(ट्यूटर के बोलने का इन्तज़ार करके) मैं इस भीड़-भड़क्के से बहुत भड़कता हूँ और औरतों को तुम नहीं जानते, जब बाहर के आदमी होंगे तो वे बिल्कुल दूसरी ही हो जायेंगी और अपने पति से भी यही उम्मीद करेंगी। मैंने आपके टेबुल पर फिंगर बोल, मैंने सुनी भी न थी पर मेरी मेम साहब शायद यह दिखलाना चाहती थीं कि जैसे हम लोग हफ़्ते में दस दिन फिंगर बोल बरतते हैं—हुँह......

[ट्यूटर के हँसने का इन्तजार करता है।]

और अगर किसी ने कुर्सी पर गीला तौलिया टाँग दिया तो हरएक आदमी को वह निशान देखना पड़ेगा—जैसे वह कोई क्यूबिज्म का डिजाइन हो।

ट्यूटर—(गंभीरता से) अब तो मिसेज सिवल अच्छी हैं—पहले से?

गृहस्वामी—अच्छी क्या है ! (रुककर) उम्र का तक़ाज़ा है अब देखो बाईस साल की मैरिड लाइफ में—(रुक जाता है जैसे ट्यूटर से ये बातें नहीं की जा सकतीं।)

ट्यूटर—(नीची नज़र हाथ से हाथ दबाये) मैं आपसे कुछ कहना चाहता था……मुझे आपके यहाँ पूरे दो महीने हो गये……

गृहस्वामी—(बाहर की आवाज़ों को सुनते हुए) मैं सब समझ सकता हूँ यह आपकी मेहरबानी है, पर मैं मजबूर हूँ। आमदनी का यह हाल है—उजला खर्च, मैं कतई मजबूर हूँ यह मदरासी मेम ७५) पर तैयार थी मुझे कहना न चाहिये मैंने सिर्फ़ आपकी इमदाद की गरज़ से, समझे, यह इन्तज़ाम किया था।

ट्यूटर—मुझे अफ़सोस है !

गृहस्वामी—(कुछ समझ नहीं पाता) तो तुम बाइसिकल पर कहाँ-कहाँ गये थे ?

ट्यूटर—मैं बाइसिकल पर कहीं नहीं गया; मैं गया ही नहीं…… मैं……(एक बारगी रुक जाता है।)

[सन्नाटा हो जाता है पर यह साफ़ है कि किसी का बोलना ज़रूरी है।]

गृहस्वामी—(टाँग हिलाते) मेरा जिन्दगी का एटीट्युड बिल्कुल मुख्तलिफ है। तुम अपने शोसलिज्म-ओशलिज्म के जोश में शायद यह समझे बैठे हो कि जिन्दगी का गहरा से गहरा मतलब तुम्हारे लिये साफ़ हो गया, जैसे कोई बड़ा सरकश घोड़ा तुम्हारे काबू में आ गया; पर जिन्दगी अगर इस तरह लटकों और फारमूलों में बाँधी जा सकती, तो आज तक कब की खत्म हो

जाती। जी......साहब सोशलिस्ट हैं पर आज जो कुछ भी हम 'कुत्तों' की समाज से आप इन्सानों को मिला है हम वापस ले लें—

[ट्यूटर साफ है कि इन बातों को निरर्थक समझता है]

हाँ हमारे स्कूलों, यूनिवर्सिटियों की तालीम, हमारी लाइब्रेरियाँ, हमारे बाजार हमारे........।

ट्यूटर—(उठकर बाहर खिड़की की तरफ झाँकता है। गृहस्वामी भी उठ खड़ा होता है)

गृहस्वामी—क्या वे लोग आ रहे हैं ?

ट्यूटर—(चुपचाप बाहर झाँक रहा है)

गृहस्वामी—यह कैसी पार्टी है ! (टहलता हुआ) हम लोग वाकई......(फिर बैठ जाता है) मैं कहता हूँ कि आने वाली जेनेरेशन चाहे वह बिल्लियों की हो या सर्पों की, हम से अच्छी होगी। हमसे.........

ट्यूटर—(मुस्कराता है) वे शायद पीछे से पार्क में चले गये।

गृहस्वामी—(चौंककर) पार्क में ! और कुसुम की तबियत स्ट्रेंड हार्ट, कैफ़िया स्परीन......मैंने एक किताब पढ़ी थी, उसमें हमारी सभ्यता, तहज़ीब की तसबीह एक बड़ी दुकान से दी गई थी—ऊपर, ऊपर, ऊपर—चढ़े चले जाइये; पर नीचे जमीन की आँतें हमें हजम करने के लिए बेताब हैं। वाकई आने वाली जेनरेशन—पर मैं कहता हूँ कि कोई जेनरेशन आती नहीं। यहाँ जमीन की आँतें जब बजाय हजम करने के कै कर देती हैं......।

[भीतर कुछ आवाजें सुनाई देती हैं। गृहस्वामी सहसा ट्यूटर की तरफ कड़ाई से देखता है। ट्यूटर उस

नज़र को बचाकर चुपचाप बाहर चला जाता है। भीतर वे दरवाज़े से एक मोटी अधेड़ रमणी भारी बनारसी साड़ी पहने, एक ज़रा दुबली रमणी महीन सफेद बेल लगी सफेद धोती पहने, दो युवतियाँ दोनों नीली साड़ियाँ पहने, एक युवक अचकन चूड़ीदार पजामे में आते हैं। चेहरे से वे सभी थके हुये मालूम देते हैं, पर वे सब बराबर हँस रहे हैं, जैसे जवान लड़कियाँ आपस में हँसती हैं, जब वे एक दूसरे का कोई साहसपूर्ण भेद जानती हैं।]

मोटी रमणी—(पास की कुर्सी पर बैठ जाती है, गृहस्वामी उसके बैठ जाने के बाद बैठिये कहता है) हम लोग पार्क में चले गये थे। (हाँफकर) आपका डिनेमाइट भी हमने देखा (सब हँस पड़ते हैं)

गृहस्वामी—(जबरन हँसी में शामिल होकर) कैसा डिनेमाइट ?

[युवक उन लड़कियों को बैठाल देता है, सफ़ेद धोती वाली भी जो गृहस्वामिनी है बैठ जाती है, उसके बैठ जाने पर गृहस्वामी भी बैठ जाता है, सिर्फ युवक खड़ा रहता है।]

मोटी रमणी—आपका डिनेमाइट (फिर हँसी होती है।)

गृहस्वामी—(गंभीर होकर) ख़ैर, यह तो मज़ाक है पर यह मैं मानता हूँ। मेरा यक़ीन है कि दुनिया के सब गोले बारूद एक आदमी की मर्ज़ी से चाहे वह हज़ारों मील दूर बैठा हो फट सकते हैं।

[अब की वह खुद हँसी शुरू करता है]

गृहस्वामिनी—यह योग-जोग बहुत जानते थे अब सब बेचारे भूल गये।

[फिर हँसी होती है पर पहले से कुछ धीमी]

युवक—पापा का यह ख़्याल चाहे मज़ाक हो, पर हिटलर और मुसोलिनी के लिए हमें ऐसी ताकत पैदा करनी होगी।

गृहस्वामी—(हँसकर) हिटलर और मुसोलिनी ही क्यों—? और ऐसी ताकत अब दुनिया में मौजूद है, अगर हज़रत आदमी की औलाद बहुत उछल-कूद मचायेगी तो वह ताकत काम में लाई जायेगी। वेचारा गान्धी क्या कहता है—

युवक—गान्धी तो सठिया गया है।

[लड़कियां आपस में धीमी हँसी हँसती हैं]

मोटी रमणी—मैं तो यह कुछ जानती नहीं। लेकिन हाँ, अभी विक्टोरिया-सी कोई मलका हो जाय तो सब फिर ठीक हो जाय। दुनिया पर यह तवाही विक्टोरिया के मरने के बाद आई।

युवक—विक्टोरिया क्या करेगी ?

मोटी रमणी—तुम्हारा तो कहीं पता भी न था तब। विक्टोरिया के ही राज में तो सुख था।

गृहस्वामी—खैर लड़ाई-भिड़ाई की तो बात छोड़िये। मैं आपको एक किस्सा सुनाता हूँ......।

गृहस्वामिनी—क्या हम लोग यहीं बैठे रहेंगे—कहीं घूम आयें।

गृहस्वामी—खाना खाकर चलेंगे, सिनेमा या और कहीं......।

युवक—लड़कियों के पास ही कुर्सी खिसकाकर बैठ जाता है बड़ी लड़की उसकी तरफ़ देखकर लाज से सिमट जाती है) हाँ, तो आपका वह क़िस्सा—

गृहस्वामी—वह कुछ नहीं, लखनऊ में जब हिन्दू-मुसलमानों का दंगा हुआ तो हम लोग आगा तुराव के हाते के पास एक बंगले में रहते थे। हम वहाँ तीन हिन्दू थे और

तीन ही चार घर मुसलमानों के थे। ख़ैर हम लोग सब मिलकर उन मुसलमानों के पास गये कि या तो वे लोग हाता छोड़कर मुसलमानों की बस्ती में चले जायँ या हम लोग हिन्दुओं की। जब वहाँ गये तो मालूम हुआ कि वे लोग ख़ुद हम से डरे हुये हैं और लाठियाँ लिये अपना सामान और बीबी बच्चे लिये जा रहे हैं। हाँ, उसी तरह यूरप में सब एक दूसरे से ......

गृहस्वामिनी—बेबी क्या घूमने गया है—?

युवक—(अवाक् सा) तो हम लोग नौ बजे तक क्या करेंगे ?

[सब अपनी घड़ियाँ देखते हैं]

छोटी लड़की—(धीरे से) अब साढ़े सात बजे हैं।

गृहस्वामिनी—रिकार्ड सुनाइयेगा ? पर कोई नया रिकार्ड तो हमारे पास है नहीं !

युवक—(ओठ दबाकर) कोई गाना ही गाये।

[लड़कियाँ ख़ासकर बड़ी शरमाती-सी हैं]

गृहस्वामी—हाँ, बेटियो, गाओ न !

मोटी रमणी—आप गाइये, इन बेचारियों को क्या आता है !

गृहस्वामी—ओहो, तो आप ही गाइये !

[सब हँस पड़ते हैं और फिर एकबारगी सन्नाटा हो जाता है।]

मोटी रमणी—(युवक की तरफ़ देखकर) अब तुम कोई अपना विलायत का किस्सा सुनाओ।

युवक—(ऊबा सा) विलायत का किस्सा—आप लोग ब्रिज खेलते हैं ?

मोटी रमणी—ये लड़कियाँ खेलती हैं, इनके दादा ने मुझे कितना सिखाया, मुझे आया ही नहीं।

गृहस्वामी—ब्रिज क्या होगा ? आइये······

[गृहस्वामिनी एक बारगी उठकर भीतर जाना चाहती है]

मोटी रमणी
गृहस्वामिनी } —कहाँ !!

गृहस्वामिनी—(द्वार के पास रुककर) आप लोगों के लिए काफ़ी-आफ़ी ही मँगाऊँ।

मोटी रमणी—काफ़ी क्या होगी—बैठिये बातें करें—अभी तो खाना खाना है।

[सब फिर हँस पड़ते हैं, और घड़ियाँ देखते हैं और सन्नाटा हो जाता है।]

गृहस्वामी—(युवक से) राजाजी, तुम आज ट्यूटर से बात कर लेना।

मोटी रमणी—ट्यूटर कौन !!

गृहस्वामिनी—बेबी के लिए रखा है, बवाल जान हुआ जा रहा है।

गृहस्वामी—(मुस्कराते हुए) वह समझता है कि वह हम लोगों से बहुत ऊँचा है और जो नौकर और मालिक का सम्बन्ध हम में है, वह इस क़दर हमको छोटा बना देता है कि वह हमारा मुक़ाबला भी नहीं करता। उनका पाक ख्याल है कि वह हम लोगों के साथ एक इन्टेलेक्चुअल एक्सपेरीमेंट कर रहे हैं।······

[कुछ समझदारी से और कुछ ना समझी से लोग इस विचित्र आदमी पर ख़ुश हो रहे हैं, केवल युवक गंभीर है।]

गृहस्वामी—उन्हीं का नहीं, आज सब जवान आदमियों का यह हाल है। वे किताबों के अध-कचरे असर से बगावत

तो करना चाहते हैं, पर नहीं कर सकते; और मैं आपसे पूछता हूँ (एक बारगी युवक की तरफ देखकर नज़र हटा लेता है) वह बग़ावत किसके खिलाफ़ है ? आप नेचर से बैर कर सकते हैं ? नहीं कर सकते ! आप छत पर से गिरेंगे तो दुनिया की कोई ताक़त आपका सर फटने से नहीं रोक सकती······(एक बारगी धीमा पड़कर) तुम उन्हें समझा देना······

गृहस्वामिनी—मुझे तो आपकी बात पसन्द आई कि विक्टोरिया-सी मल्का कोई हो जाय तो अभी सब ठीक हो जाय, वही बातें फिर लौट आयें।

मोटी रमणी—(गर्व से तन कर) लिखा है, 'जथा राजा तथा प्रजा'। राजा तो ईश्वर है······

गृहस्वामी—ख़ैर, मैं तो यह नहीं मानता······

युवक—(ऊबा-सा) आइये कुछ खेलें······

गृहस्वामी—ताश से तो मुझे नफ़रत है, बिल्कुल छिछोरा खेल है।

गृहस्वामिनी—फिर क्या खेलें तुम्हीं बताओ !

मोटी रमणी—मैं एक खेल बताती हूँ, हम लोग खेला करते थे—इनके पापा, हम, बीबीजी वग़ैरा (सब लोग उनकी तरफ गौर से देख रहे हैं) एक आदमी जैसे मैं कुछ चीज़ों के नाम लूँ, जैसे कमरा—

छोटी लड़की—(चटक आवाज़ में) नहीं, ऐसे नहीं, सब लोग एकाएक काग़ज़ और पेंसिल ले लें और कुछ लोग नहीं एक आदमी बिना सोचे कई चीज़ों के नाम ले जैसे 'कमरा' और सब लोग उस लफ्ज़ को सुनकर एकदम जो उनके मन में आये अपने काग़ज़ पर लिख लें, फिर सबके काग़ज़ पढ़े जायँ।

युवक—क्या खेल है—(अपने को सँभाल कर) यह तो अच्छी खासी साइकोलोजिकलस्टडी है।

गृहस्वामिनी—(उत्साह से) मैं कागज़ लाती हूँ।

[भीतर जाती है और ज़रा देर में चिट्ठी लिखने का पैड, दो कलम और कुछ पेंसिलें लेकर आती है, लड़कियाँ इस बीच में आपस में कुछ घुस-पुसाती हैं, गृहस्वामी निर्विकार बैठा है, केवल युवक अनमना है।]

गृहस्वामिनी—लीजिए।

[युवक पैड लेकर सबको कागज़ दे देता है, दोनों लड़कियाँ कागज़ लेती हैं और फिर रख देती हैं, मोटी रमणी भी कागज़ ले लेती है, पर फ़ौरन कहती है।]

मोटी रमणी—मैं—मैं तो नाम लूँगी।

गृहस्वामिनी—(कागज़ लेता हुआ) अरे कागज़ ! लाओ बेटी।

[लड़कियाँ झेंपती हुई कागज़ उठा लेती हैं और दो पेंसिलें ले लेती हैं। युवक अपना फाउन्टेनपेन निकाल कर गृहस्वामिनी (अपनी माता) को दे देता है और खाली हाथ खड़ा है।]

मोटी रमणी—तुम भी कागज़ ले लो, राजाजी !

युवक—मैं तो नाम लूँगा।

मोटी रमणी—(पेंसिल उठाते) अच्छा।

युवक—(सबको तैयार देखकर) अच्छा मैं क्या कहूँ ? (हँसता है) अच्छा 'कमरा' (सब लिखते हैं)

युवक—अच्छा, 'बिजली'। (फिर सब लिखते हैं)

युवक—अच्छा-अच्छा 'पेरम्बूलेटर।' (फिर सब लिखते हैं)

युवक—अच्छा अब क्या—अच्छा 'सेक्स।'

गृहस्वामी
मोटी रमणी } —सेक्स !!

युवक—हाँ, हाँ !

गृहस्वामी—क्यों, सेक्स !

युवक—यह भी लफ्ज़ है। आपने कहा था बिला सोचे नाम लो।

[सब लिखते हैं]

युवक—अच्छा बस।

[सबसे पहले लड़कियाँ अपने कागज़ मेज पर रखती हैं, सबसे बाद में गृहस्वामी]

मोटी रमणी—(कागज़ उठाती हुई) मैं पढ़ूँगी (कागज़ उलटती-पलटती है) सबसे पहले मिस्टर सिबल का पर्चा है।

[पर्चा उठाकर, सब गौर से सुन रहे हैं]

मकान—'जिम्मेदारी', ठीक ! बिजली, क्या लिखा है, हाँ,—'दिमाग़', बिल्कुल ठीक दिमाग़ ने ही तो ऐसी चीजें निकाली हैं। पेरम्बूलेटर—'शादी' वाह-वाह; मिस्टर सिबल ! (गृह स्वामी भद्दा झेंपता है) अच्छा, सेक्स—'साइंस', बहुत ख़ूब। अब किसका कागज़ है, मिसेज सिबल का ?

गृहस्वामिनी—मेरा सबसे बाद में पढ़ियेगा।

मोटी रमणी—नहीं, बाद में क्यों ? सभी के तो पढ़े जायँगे, तो सुनिये।

गृहस्वामिनी—मेरा बाद में पढ़ियेगा।

गृहस्वामी—पढ़ने न दो कुसुम !

मोटी रमणी—अच्छा, कमरा—'बाथरूम।'

गृहस्वामी—बाथरूम, बाथरूम क्यों ?

युवक—ख़ैर, यह भी तो कमरा है।

गृहस्वामी—अच्छा।

मोटी रमणी—बिजली—'अँधेरा'।

गृहस्वामी—हैं।

गृहस्वामिनी—बिजली फ़ेल हो जाती है तो मोमबत्तियाँ नहीं ढूँढ़ना पड़ती हैं।

मोटी रमणी—पेरम्बूलेटर—'वेबी'।

गृहस्वामी—कुसुम, यह क्या है ? बेबी क्या पेरम्बूलेटर पर चढ़ने के क़ाबिल है ? मैं कहे देता हूँ तुम लड़कों का सत्यानाश मारे देती हो।

गृहस्वामिनी—मैंने तो वेवी लिखा था। अपना बेबी थोड़ी ! तुम्हीं ने कहा था विना सोचे।

मोटी रमणी—अच्छा सेक्स—'शाहनजफ रोड'।

गृहस्वामी—क्या ?

मोटी रमणी—सेक्स,—'शाहनजफरोड'।

गृहस्वामी—यह क्या है ? आखिर इसका क्या मतलब ?

गृहस्वामिनी—(अपराधी-सी) तुमने कहा था बिना सोचे……

गृहस्वामी—तुम्हारा मतलब क्या था ?

गृहस्वामिनी—कुछ नहीं मैंने वैसे ही लिख दिया।

गृहस्वामी—वैसे ही। सेक्स—'शाहनजफ रोड'। वाह-वाह !

युवक—पापा, यह तो खेल है ! अच्छा अब अगला पढ़िये।

गृहस्वामी—नहीं, इसे साफ़ हो जाने दीजिये। सेक्स, 'शाहनजफरोड' वाह-वाह ! (उठकर) इसके माने क्या हैं ?

युवक—पापा, यह तो खेल है।

[मोटी रमणी सब कागज़ रख देती है। लड़कियाँ अपना कागज़ उठा लेती हैं। युवक व्यग्र-सा बैठ जाता है।]

युवक—मैं कहता था……

गृहस्वामी—कमरा—'बाथरूम' सेक्स—'शाहनजफ रोड'। क्या कहना है।

[सब लोग चुपचाप गंभीर बैठे हैं; केवल युवक कुछ व्यग्र है। पाँच ही मिनट बाद ज़रा-सा परदा खिसका कर भीतर से नौकर कहता है—मेज लगाऊँ 'हज़ूर'

गृहस्वामिनी—हाँ-हाँ ! (तेज़ी से उठकर भीतर चली जाती है भीतर से उसकी आवाज़ सुन पड़ती है—बेबी आ गया, नहीं आया अभी ?)

[मोटी रमणी और लड़कियाँ भी उठकर चली जाती हैं। युवक और गृहस्वामी रह जाते हैं, दो मिनट बाद गृहस्वामी भी उठकर भीतर चला जाता है, युवक व्यग्र बाहर बरामदे की तरफ़; पर दरवाज़े के पास ही ट्यूटर मिल जाता है और दोनों कमरे में लौट आते हैं।]

ट्यूटर—(अपराधी-सा) मैं अपनी डिक्शनरी यहाँ भूल गया था।

युवक—आप क्या यहीं बैठे थे ?

ट्यूटर—जी हाँ।

युवक—यहीं बरामदे में ?

ट्यूटर—जी हाँ ?

युवक—हूँ. (टहलता है। ट्यूटर अनहोनी जगहों में किताब खोजता है।)

युवक—आज पापा से आपकी बात-चीत हुई ?

ट्यूटर—जी हाँ।

युवक—क्या बात-चीत हुई ?

ट्यूटर—कुछ नहीं—उन्होंने कहा कि आनेवाली जेनरेशन, चाहे बिल्लियों की हो या साँपों की, पर हम से अच्छी होगी।

युवक—(चौंककर और ट्यूटर के पास आकर) किसने कहा ?

ट्यूटर—मिस्टर सिब्बल ने—

[युवक कुछ देर टहलता रहता है और फिर भीतर चला जाता है। स्टेज पर सिर्फ़ ट्यूटर रह जाता है और वह एक कुर्सी पर बैठकर एक अधजला सिगरेट निकाल कर सुलगाता है।]

श्री जैनेन्द्रकुमार

[आप दिल्ली के निवासी हैं। हिन्दी साहित्य के प्रमुख आलोचक, गल्पकार, सुधारक, नाटककार और उपन्यासकार हैं। अँग्रेजी साहित्य का आपका अध्ययन अच्छा है और इसका आप पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। 'वातायन' आपकी कहानियों का संग्रह है और जैनेन्द्र के विचार नामक आपके दार्शनिक और विचारात्मक निबन्धों का संग्रह प्रकाशित हो चुका है। आपकी प्रवृत्ति दार्शनिक और विचारक की है। पर दार्शनिक की-सी अपने प्रति उदासीनता उनमें नहीं है। वे दार्शनिक बुद्धिवादी हैं, और यही अकर्मण्यता का विशेष कारण है। उन्होंने मानव जीवन का गहन अवलोकन किया है। उसी द्वारा उद्भूत अपने विचारों का विश्लेषण कर उन्होंने जनता के सम्मुख रक्खा है। उनमें विरोधी भावनाओं का Opposities का समावेश है और यह कहना अभी कठिन है कि उनका झुकाव अधिकतर किधर है। 'विष्णु' के शब्दों में, "उसके शब्द, वाक्य, भाव और शैली सब अपने अनोखे हैं······जैनेन्द्र के स्वभाव में साहित्यिकता कूट-कूट कर भरी है और उसके भीतर लिखने के लिये खजाना भरा पड़ा है; पर वह निरा अकर्मण्य है।"[1] उनके विचार मौलिक हैं। 'कला कला के लिये है' वाले सिद्धान्त में उन्हें अविश्वास है। उनके विचार से कला वास्तविक है और वह जीवन की वस्तु है। Style is man वाला सिद्धान्त उन पर पूर्णतया लागू होता है।

उन्होंने एकांकी भी लिखे। 'टकराहट' अभी उनकी सर्वोत्तम कृति है। एकांकी के विषय में उनका विचार है कि हिन्दी में रंगमंच के

---

१ 'हंस' मार्च ३६ पृष्ठ १४७

अभाव में एकांकी लिखना भ्रम पूर्ण है। एकांकी नाटक आज के लिये कुछ कृत्रिम चीज़ है—यह उनका ख़्याल है। उनको एकांकी में प्रयुक्त कोष्टक अरुचिकर हैं। लम्बे-लम्बे नाटकीय संकेतों के भी वे विरुद्ध हैं। फिर भी उन्होंने एकांकी लिखे हैं। उनमें उनका दार्शनिक का स्वरूप ही विद्यमान है। 'टकराहट' उनका अनेक दृश्य वाले एकांकी का उदाहरण है, वह एक विचारात्मक और समस्यात्मक Problem play रचना है। हिन्दी नाट्य-साहित्य की प्रवृत्ति इस ओर वेग से बढ़ रही है। लीला अथवा लिली उसकी प्रमुख पात्री है और उसी का ही मानसिक विश्लेषण लेखक का ध्येय है। स्वार्थ और परमार्थ का द्वन्द्व, सेवा की भावना और चार्ल्स के प्रेम और मरणासन्न माता की ममता के बीच फँसी हुई लीला का मानसिक संघर्ष नाटक की उच्चता का प्रमाण है, क्योंकि यह निर्विवाद सिद्ध है कि आन्तरिक संघर्ष बाह्य की अपेक्षा नाटकीय विकास का द्योतक है। हिन्दी साहित्य में लेखकों का ध्यान इसकी ओर अभी हाल ही में ही हुआ है। चरित्र-चित्रण और घटनाओं के घात प्रतिघात की लेखक में पूर्ण क्षमता है। कैलाश का सेवाश्रम और त्याग, लिली की शुद्धि, चार्ल्स का आगमन, लीला का संघर्ष आदि उनके कथानक में है। पूर्ण का अपूर्व त्याग और पश्चिम की बुद्धिवादी सभ्यता इसमें दर्शाया गया है। संघर्ष व्यक्तिक न रह कर सामूहिक हो गया है। पश्चिम की बढ़ती हुई तकलीफ़ों का कारण उनका Materialism ही है और उसकी वृद्धि उनके लिये हानिकर है। उनका उपकार पूर्व के त्याग, सेवा भाव आदि अन्य सात्विक तथा आधिभौतिक भावनाओं द्वारा ही हो सकता है। यही इसकी समस्या है। इसका नाम इसके कथानक का सूचक है। लीला की मानसिक टकराहट से यहाँ मतलब है।]

टकराहट

पहला-दृश्य

[एक बड़े कमरे का भीतरी भाग। दीवारें सफ़ेद, कोरी। सामान बहुत कम। फ़र्श नग्न। रामदास के आसपास कागज़ फैले हैं, कुछ लिख रहा है। बैठा चटाई पर है, सामने चौकी है। एक ओर मोटा गद्दा बिछा है, उस पर चाँदनी, एक मसनद। पास, अलग एक डेस्क।

कैलाश प्रवेश करते हैं। क्षण-इक दरवाजे पर ठिककर सब देखते हैं। रामदास सहसा उन्हें देखते ही घबराया-सा उठ खड़ा होता है।]

कैलाश—नहीं। बैठो-बैठो। राम के दास को घबराहट! (ज़ोर से हँसते हैं। रामदास उनके पैर छूता है।) अच्छा हुआ। कहो, सब मजे में? तुम्हारे प्रयोग चल रहे हैं न?

रामदास—जी हाँ।

कैलाश—तो महात्मा रामदास बनने की ठानी है। (हँसते हुए चलकर बिछे गद्दे पर तकिये के सहारे बैठ जाते हैं। रामदास कुछ कागजों की फाइल लाकर सामने रखता है।) लेकिन उस कोने में मकड़ी के जाले की जरूरत क्यों हुई? (हँसते हैं) कल कमरे की सफाई हमारे ऊपर। समझे? (रामदास चुप रहता है। कैलाश फ़ाइल देखने लगते हैं। कुछ देर में नायर का प्रवेश। वह कुछ झिझक रहा है।)

कैलाश—(देखकर) आओ। कहो।

नायर—मिस सिंक्लेयर आपसे कब मिलें ?

कैलाश—लिली न ? आज से उन्हें लीला कहो। इन कागज़ों से निबटूँ तब भेजना। उनकी व्यवस्था तो सब ठीक है ?

नायर—सब ठीक है।

कैलाश—आश्रम का खाना उन्हें अनुकूल होता है ? देखो, मेह-मान के लिए हमें अपने नियमों का आग्रह नहीं हो सकता। तुम उनसे मिलते रहते हो न ?

नायर—जी हाँ।

कैलाश—क्या ख़याल है। यहाँ रहेंगी ?

नायर—अभी तो आपस मिलने को उत्सुक हैं।

कैलाश—(सामने घड़ी देखकर) कला का क्या हाल है ?

नायर—वैसा ही है। टेम्परेचर हो आता है। उन्हें काम से नहीं रोका जा सकता। हर घड़ी कुछ न कुछ करते रहने का आग्रह करती हैं। उन्हें आप कहीं सेनेटोरियम जाने को लाचार करें तो ठीक हो। हमारी किसी की तो सुनती नहीं।

कैलाश—पगली है ! अच्छा, तो अब मुझे छोड़ो।

नायर—मिस सिंक्लेयर को आप अभी समय दे सकते तो……।

कैलाश—वह अधीर है ?

नायर—जी, कुछ व्यग्र हैं। रुष्ट मालूम होती हैं कि मैं अमरीका से चलकर आई और पाँच रोज़ से बैठी हूँ, फिर भी आपसे मिलना न हुआ।

कैलाश—अच्छा तो अभी भेजो। (नायर को वहीं खड़े देखकर) क्यों कुछ और ?

नायर—अमरीका से यह तार भी आया है। (तार देता है)

कैलाश—(पढ़कर) इन्हें लिख तो दिया न कि खुशी से आवें।

नायर—मालूम होता है कि मिस सिंक्लेअर की खातिर—। एक तार उनके नाम भी था।

कैलाश—तो ?

नायर—मैं······फिर······देख लीजिये।

कैलाश—(खिल-खिलाकर हँसते हुए) वह मैं समझा। तुम सब सरल चाहते हो। पर वक्र से हमें डरना न चाहिए। तार दे दो कि जरूर आवें। अच्छा, अब लीला को भेज दो। याद रक्खो, लीला। न मिस, न लिली।

[नायर चला जाता है। कैलाश सामने के कागज़ों में लगते हैं]

कैलाश—रामदास, इनमें कोई ऐसा तो नहीं है जो कल तक ठहर सके ?

रामदास—जी, सब जरूरी हैं।

कैलाश—अच्छा, तो मुझे सुनाते जाओ। जवाब लिखते जाना।

रामदास—(पास बैठकर पढ़ना शुरू करता है) मजदूरों के साथ मुआहिदे को फिर मालिकों ने तोड़ दिया है। हड़ताल का छठा रोज है। आप कब तक पहुँच सकेंगे ? या तारीख दें कि हमारे प्रतिनिधि आवें।

कैलाश—शनिवार लिख दो। पाँच बजे। और देख लो कि वह वक्त खाली है न।

रामदास—अदायगी की तारीख आ गई है। सेठजी आपके आदेश बिना कुछ न करेंगे। ऐसा न हो कि नौबत अदालत की आवे। कृपया सेठजी को प्रेरित करें। आज्ञा दें तो सेवा में पहुँच कर मामला सब खुलासा रखूँ।

लीला—सुख तो नहीं, लेकिन मैं दुख से बचना चाहती हूँ। मैं अपने से, दुनिया से बचना चाहती हूँ। मैं अमरीका से भागी आई हूँ, क्यों? सुना था कोई हिन्दुस्तान में कैलाश है जिसे दुनिया नहीं छूती। क्या यह सच है? यहाँ दुनिया मुझे नहीं छू सकेगी? अगर कहो कि ऐसा है तो मैं यहाँ रहना चाहती हूँ।

कैलाश—(हँसकर) तुम्हारा सवाल तो बड़ा है। (हाथ में घड़ी लेकर उसे देखते हुए) पर अभी तो तुम हो ही। अब हम फिर शाम को मिलें या रात को सोने के पहले। शाम को साथ घूमने चल सकती हो?

लीला—क्या आपके किसी और काम का समय हो गया है?

कैलाश—हाँ, सो तो हो ही गया है। वैसे भी मिलने-जुलने का समय और है। पर तुम्हें शंका की ज़रूरत नहीं है। शाम को फिर बातें होंगी। मुझे अमरीका और योरप के बारे में बहुत कुछ जानना है। तुमने भी तो इस छोटी उम्र में विचित्र अनुभव पाये हैं। अभी तीस की तो नहीं हुई हो न?

लीला—अगले जन्मदिन पर छब्बीस वर्ष पूरे होंगे।

कैलाश—(खिलखिलाकर हँसते हुए) लेकिन मैं बूढ़ा हो गया। पर देखोगी कि तुम्हारे सामने मैं तीस वर्ष का-सा दीखने का साहस करूँगा। फिर भी घड़ी पल-पल चलती है। समय किसी को जवान रहने देता है? तुम्हारी अँग्रेज़ी की कहावत है, Time is money लेकिन Time is much more. Money is nothing. (घड़ी आगे करके) And one time is up.

देहाती घर में तुमने अपना अमरीका कैसे सुरक्षित रखा है।

लीला—शाम आप अकेले हो सकते हैं ?

कैलाश—देखता हूँ तुम कठिन हो। तिस पर हृदय-हीन मुझे कहा जाता है। (खिल-खिलाकर हँसते हैं।) अकेली मेरी शाम चाहती हो, तो वह सही।

[लीला इस पर बिना कुछ बोले चली जाती है।]

कैलाश—रामदास, लो भाई, अब आ जाओ।

[रामदास पास आकर पढ़ना चाहता है। कैलाश तकिये पर झुककर मानो जरा विश्राम करते हैं।]

दूसरा दृश्य

[संध्या, नदी का किनारा। कैलाश और लीला।]

कैलाश—चली चलोगी या यहाँ बैठें ? (नदी-तट की एक चट्टान की ओर बढ़ते हुए) आओ, बैठो।

[कैलाश बैठते हैं। ज़रा नीचे की ओर लीला भी बैठती है]

कैलाश—कहो-कहो, रुको नहीं। बस इतना याद रखना है कि प्रार्थना का समय साढ़े-सात है।

लीला—मैं कहती थी, मैं पूछना चाहती हूँ कि पाप क्या चीज़ है। मैं पाप नहीं मानना चाहती। आप सच क्या उसे मानते हैं ?

कैलाश—पाप को नहीं मानने के लिये प्रार्थना है।

लीला—मैं अब तक आश्रम की प्रार्थना में नहीं शामिल हुई। न होना चाहती हूँ। आप इससे नाराज़ हैं ?

कैलाश—बात तो नाराज़ होने की है।

लीला—तो आप नाराज़ हो सकते हैं। मैं यहाँ कुछ रोज रहना भी चाहती हूँ और अपने मन के खिलाफ़ भी कुछ नहीं करना चाहती। आप कहेंगे तो मैं नहीं रहूँगी। अगर मुझे अपनी तरह रहने देकर भी रख सकते हैं तो मैं ज़रूर यहाँ कुछ दिन रहना चाहती हूँ। मुझे जानना है कि वह शांति क्या है जो आपके आस-पास प्रतीत होती है। क्या वह जड़ता से कुछ भिन्न है ?

कैलाश—अच्छी तो बात है। रहो और जानो। लेकिन देखो, विद्रोह झेलने की चीज़ है। फैलाने की वह चीज़ नहीं। द्वन्द्व भड़काना नहीं चाहिए। उसकी मंदता उत्तम है।

लीला—मंदता क्या जड़ता नहीं है। सन्तोष भी हीनता है। आसमान कितना बड़ा है, कैसा नीला है, कैसा सूना है। चिड़ियाँ यहाँ कहाँ उड़ आती हैं। मैं क्यों न उनकी तरह उडना चाहूँ। क्यों न आसमान बन जाना चाहूँ। मुझे हक नहीं है कि मैं बेचैन रहूँ। फिर आपकी शांति मुझे असम्भव लगती है। शांति अन्धे बनने में है। आँख खोलकर जो शान्त है वह······उसे मैं नहीं समझती। हाँ, अगर है तो शान्ति पाप है। अपनी अपूर्णताओं को लेकर कोई कैसे शान्त हो सकता है।

कैलाश—(मुस्कराकर) ठीक तो है !

लीला—क्या ठीक है ! अशान्ति ठीक है। अशान्ति को आप समझते भी हैं। मैं अशान्त हूँ। मुझे बताइये मैं क्या करूँ ?

कैलाश—प्रार्थना में शामिल हुआ करो।

लीला—छोड़िये प्रार्थना। मैं अपना दिल आपके सामने रखती हूँ। जी में होता है, मैं चलती रहूँ, चलती रहूँ। एक छन न ठहरूँ। आज आकाश कल पाताल। मुझे होश रहे ही नहीं, ऐसी बेहोश रहूँ। अच्छा, सच बताइये, आपने कभी नशा किया है ?

कैलाश—नहीं।

लीला—तब आप कुछ नहीं जानते। मैं चाहती हूँ नशा, जो उतरे नहीं।

कैलाश—जो नहीं उतरता, वह भी क्या नशा रहा ? लेकिन अगर नशा न हो तो सामने देखती तो हो,—उस नशे के लिए शराब हर घड़ी हर कहीं मौजूद है। नदी बह रही है; पेड़ हौले-हौले हिल रहे हैं; घास की हरियाली बिछी है; आसमान है, जो सबको लेकर फिर भी सूना है और यह धरती जो सब सहती है और गूँगी है। इस सब कुछ के भीतर क्या वह नहीं है जो अक्षय है ? वह कभी नहीं चुकता। उसका नशा कभी नहीं चुकता। उसको चाहो, उसको पाओ। वह नशा है, जो उतरेगा नहीं। वह अशान्ति में भी शान्ति देगा।

लीला—बस ! मैं नहीं सुन सकती। आपका मतलब है, ईश्वर। और मतलब है, धर्म। मुझे नहीं चाहिए ईश्वर, नहीं चाहिए धर्म। ईश्वर को मैंने ढकोसला पाया है। मैं चाहती हूँ चैन। मुझे यह भीतर से क्या उकसाहट सताती रहती है। मानो कोई कहता रहता है, 'और आगे !' 'और आगे !' ऐसा जी क्यों होता है कि सब पा जाऊँ, और फिर उस सबको मसल दूँ। सबको पैरों के नीचे रौंद दूँ और फिर छाती से लगा लूँ !

कैलाश—(करुणा की हँसी हँसकर) मैं सम .ता हूँ। आज चलो प्रार्थना में शामिल हो जाओ। मेरे विचार में शान्ति अपनी मर्यादाओं की स्वीकृति है। प्रार्थना में हम अपनी सीमाओं को कृतज्ञ भाव से स्वीकार करते हैं। प्रार्थना में हम अपने को अज्ञ मानते हैं, इसी कारण प्रार्थना से बल मिलता है।

लीला—नहीं-नहीं। अपनी मर्यादाएँ मुझे काटती हैं। मैं खुल जाना चाहती हूँ, जैसे हवा। जिसके लिए कहीं रोक नहीं, कहीं निषेध नहीं। जिसका नियम बस अपने में है।

[कैलाश की ओर मानो अवश भाव से देखती है। कैलाश मुसकराते रह जाते हैं।]

लीला—आप हँसते हैं। हँसना निर्दय है। फिर भी आपके ही सामने मैं आज सब कहूँगी। आपके पास अमरीका से एक तार आया है। जो व्यक्ति आना चाहता है, वह मुझे बेहद प्रेम करता है। मैं उसके प्रेम को प्रेम करती हूँ। लेकिन उसकी भूख ऐसी है कि वह चाहता है कि मैं उसी के लिए होऊँ। मैं क्या करूँ। औरों ने भी मुझे प्रेम किया है। उन सबके प्रेम को मैंने प्रीति-पूर्वक स्वीकार किया। मैं किसी एक आदमी के लिए किसी दूसरे आदमी के प्रेम को कैसे छोड़ूँ। मैं कुछ नहीं छोड़ना चाहती। यह आदमी नरक तक मेरा पीछा करना चाहता है कि मुझे स्वर्ग में ले जाये। मुझे उसके सदाशय पर विश्वास है। मुझे उसके स्वर्ग पर विश्वास है। पर मैं वह नहीं चाहती। मुझे अपने भाग्य पर विश्वास नहीं है। वह आदमी इतना मुझे प्यार करता है कि उसका सारा प्यार मैं न ले सकी तो अचरज नहीं

कि इसी पर वह मुझे मार दे। मुझे मरने से डर नहीं है। उसके हाथों मरना मुझे बुरा न लगेगा। लेकिन मुझे मारने के बाद उनकी क्या हालत होगी यह सोचती हूँ तो डर जाती हूँ। फिर भी मैं अपने तन को उसके हाथ में नहीं सौंप सकती। मैं विवाह नहीं कर सकती। अब तक जिन्होंने मुझे प्रेम किया, उन सबके प्रति विवाह कृतघ्नता होगी। मै तंग हूँ। आप मुझे अपने आश्रम में रहने दें तो बड़ा आभार हो। पर मुझमें विष है जो मैंने बता दिया। मुझे इस आश्रम पर, आप पर, सब पर ईर्षा होती है। बच्चा हँसता है तो मुझे क्रोध आता है। कोई कैसे धीर, कैसे शान्त, कैसे प्रसन्न रह सकता है, जब मुझमें इतने प्रश्न और इतनी अशान्ति भरी हुई है। कहाँ से यह सब कुछ मेरे भीतर भर आया है। अब तो मैंने पढ़ना भी छोड़ दिया है। फिर कल्पना क्यों चुप नहीं रहती ? जान पड़ता है कि गति मुझे चाहिए,—गति, गति, गति। रुकी कि मरी। लेकिन भागते रहने से मैं तंग हूँ। चाहती हूँ कोई जबर-दस्ती मुझे पकड़ ले और रोक ले। आप क्या मुझे रोक नहीं सकते हैं ?

कैलाश—तो वहाँ मत रुको। अँधेरा हो रहा है। अब चलें।

[खड़े हो जाते हैं। लीला गिरकर उनके पैर पकड़ लेती है।]

लीला—थोड़ा रुकिये। अँधेरे से मुझे डर लगता है। वह मुझे लीलने को आता है। लेकिन मैं अभी आपको यहाँ से हटने देना नहीं चाहती। प्रार्थना में क्या थोड़ी देर बहुत होगी ?

कैलाश—चलो, तुम भी प्रार्थना में चलो।

लीला—जरा देर रुक नहीं सकते ?

कैलाश—देखो यह घड़ी। यह कहती है कि चलो। इसका कहना काल देवता का आदेश है। (हाथ पकड़कर लीला को उठाते हैं) चलो, उठो।

[लीला चुपचाप उठकर साथ चल देती है, जैसे मन्त्रबद्ध हो। सहसा वह चिहुँकती है, चकिता-भीता-सी देखती है]

लीला—आप वहाँ इनकार लिख दीजिए।

कैलाश—कहाँ, अमरीका ? मैंने लिख दिया है कि वह जरूर खुशी से यहाँ आवें।

लीला—नहीं-नहीं। मैं उस राह नहीं जाऊँगी।

कैलाश—घबराओ नहीं।

लीला—मैं उधर न जाऊँगी। मैं अपने को मोड़ूँगी। मैं प्रार्थना में शामिल होऊँगी। मैं आश्रम-वासिनी बनूँगी। उन्हें आप जरूर इनकार लिख दें। मै क्लेरा से कम नहीं होऊँगी। आप फ़ौरन इनकार का तार दे दें।

कैलाश—घबराओ नहीं।

लीला—वचन दीजिए कि आप चार्ल्स को मुझ तक न आने देंगे। मुझसे न मिलने देंगे। मैं उनकी निगाह के नीचे बेवश हो जाती हूँ। उनकी आँख में जाने क्या है। लेकिन आप देखेंगे मैं क्लेरा से कम नहीं हूँ।

कैलाश—सुनो, अगर आश्रम की बनकर आश्रम में रहना चाहते हो, तो कल से अपने उपयुक्त काम चुन लो। यह याद रक्खो कि तुम सदा आजाद हो। अपना शासन शक्ति देता है। दूसरे का शासन बँधना है। हम सबको

लीला—नहीं, मैं अब अच्छी हूँ। कल से फिर अपना काम ले लूँगी।

कला—इतना अपने को थकाओ मत, लीला! या अपने से बदला लेना चाहती हो?

लीला—और तुम जो इतना काम करती रहती हो?

कला—मेरी और बात है। तुम तो सुकुमार हो। अभी नई हो। मैं अभ्यासी हो गई हूँ। मेरे मन में अब कामनाएँ नहीं हैं। तुम क्यों अपने को खोती हो?

लीला—मैं तुम-जैसी क्यों नहीं हो सकती हूँ। तुम भी कभी सुन्दरी थीं। प्रशंसकों से घिरी रहती थीं। अब भी कौन तुम्हारी उम्र ज्यादा है। सच बताओ, तुम्हें यह क्या सूझा? सब छोड़ यहाँ क्यों आ गई? और यह कैसी शक्ल बना ली है?

कला—(मुस्कराकर) भाग्य!

लीला—भाग्य नहीं सच बताओ।

कला—और क्या बताऊँ। राग-रंग में मेरा मन नहीं था। बहुत भटकी, पर मालूम हुआ जो खोजती थी वह और है। वह क्या है? भटक में यहाँ आ लगी तो अब जी नहीं है कि और भटकूँ।

लीला—कभी तुम्हें विलायत की जिन्दगी याद नहीं आती?

कला—मतलब, चाह नहीं होती। हाँ चाह नहीं होती।

लीला—किस तरह की चाह नहीं होती? पुत्र की चाह, पति की चाह, प्रेम की चाह।

कला—नहीं वैसी तो चाह नहीं होती।

लीला—फिर भी समझती हो, तुम स्त्री हो?

कला—नहीं तो कौन हूँ?

लीला—मैं नहीं जानती। पर तुम स्त्री नहीं हो। सच बता... कैलाश को तुम प्रेम नहीं करतीं ?

कला—प्रेम से अधिक करती हूँ।

लीला—फिर यह क्यों नहीं कहतीं कि तुम जैसी हूँ ?

कला—ऐसी कैसी ?

लीला—जैसी मैं। जसी सब !

कला—वैसी ही तो रही हूँ। लीला बहन, तुम क्या चाहती हो ?

लीला—मैं चाहती हूँ कि तुम मान लो कि तुम तपस्विनी नहीं हो, चाहती हूँ कि मैं भी मान लूँ कि तुम वह नहीं हो, बिल्कुल मेरी जैसी हो।

कला—मैं बिल्कुल तुम्हारी ही जैसी हूँ, लीला। बल्कि तुमसे अपात्र हूँ। इधर तो तुमने मुझे लज्जित ही कर दिया है। ऐसी कठोर साधना तो......

लीला—मैं जो रात को तीन बजे उठकर जाड़े में तमाम आश्रम में झाड़ू देने लगती हूँ, इसको तुम साधना कहती हो !

(हँसती है।)

कला—और क्या कहूँ। देखती हूँ, तुम्हें अपने तन की सुध नहीं है। इधर आश्रमवासियों को तुमने अपने कठोर श्रम से मोह लिया है। तुम्हारे व्यवहार की मिठास मैंने और जगह नहीं पाई। सब तुम्हारी प्रशंसा करते हैं। फिर तुम अपने से क्यों नाराज हो ?

लीला—तुम नहीं जानतीं ! तुम नहीं जानतीं ! साधना !

[खिलखिलाकर हँसती है।]

कला—ऐसे न हँसो, लीला ! तुम्हारी तबीयत अभी ठीक नहीं है।

लीला—मेरी तबीयत ठीक हो जायगी। तबीयत ढीलने से बिगड़ती है। कल से फिर सफ़ाई का काम मेरा है और यह

काम पौ फटते तक निपटा लूँगी। कल से टट्टी-घर साफ़ करने का काम भी मुझे दे दो। थोड़े काम से मेरा जी नहीं भरता और रोग हावी होने लगता है।

कला—क्या कह रही हो? अभी तीन रोज़ तुम्हें किसी तरह का काम करने की इजाज़त नहीं होनी चाहिये। लीला, तन से युद्ध न ठानो। चलो, तुम्हारे कमरे में चलें। आराम करना।

लीला—आराम से तंग हूँ। चार रोज़ से और क्या कर रही हूँ। तुम कहती हो कि रात को तीन बजे उठकर जो बुहारी लगाने लगी, सो बड़ा काम किया। (हँसती है) पर रात में पहर के पहर काटना उससे आसान नहीं है। जब उठकर करने को काम पा जाती हूँ, तो चैन पा जाती हूँ। नहीं तो······और तुम कहती हो, साधना! (खूब हँसती है।)

कला—देखती हूँ तुम्हारी तबीयत खराब है। ऐसे बोलना-हँसना ठीक नहीं।

लीला—नहीं, तुम चिन्ता न करो। सब ठीक है। तबीयत मेरी खराब नहीं है। यह बताओ, कला बहन, तुम कि हम जीते क्यों हैं। तुम क्यों जी रही हो। मैं क्यों जीऊँ। बताओ, मैं क्यों जीऊँ।

कला—तुम्हारे उपवास का आज तीसरा रोज़ है, लीला! ज्यादा बोलना कमज़ोरी लायेगा।

लीला—उपवास कहाँ है। सब टूट गया। कैलाश बाबू आये और अपने हाथ से सन्तरे का रस पिला गये। उनके आगे किसी की हठ चलती है!

कला—चलो यह अच्छा हुआ।

लीला—तुम लोग जाने कैसी बात करती हो। ख़ुद उपवास पर उपवास करती हो, मुझे मना करती हो। कैलाश ज़रा बात पर अनशन रखते हैं, मुझे एक जून खाना नहीं छोड़ने देते। देखती हूँ, तुम लोग स्वार्थी हो। मुझे बताओ, कैलाश क्यों ऐसे हैं? वह तुम्हारे कौन हैं?

कला—कैलाश बन्धन-मुक्त आत्मा हैं। मैं बस उनके प्रकाश में चल रही हूँ।

लीला—मालूम है, कहाँ चली जा रही हो?

कला—कहाँ पहुँचूँगी, नहीं मालूम। चल ठीक रही हूँ तो पहुँचा ग़लत जगह नहीं जायगा। हम तो चल ही सकते हैं। पथ का अन्त तो पथिक के हाथ में नहीं है।

लीला—तुम चल सकती हो, क्योंकि पास प्रकाश है। और चलने के लिए जी सकती हो। मेरे पास प्रकाश नहीं। पर गति तो भीतर भरी है। सवाल है कि चलूँ तो किधर? अँधेरे में चला तो जाता नहीं, टकराया भर जाता है। टकराते रहने को मैं कैसे जीऊँ। कभी जी होता है कि कहीं जाकर ऐसी टकरा पड़ूँ कि टूट कर चुक जाऊँ। कला, मुझे तुम अपने प्रकाश को दे सकती हो?

कला—लीला बहन, तुम क्या कह रही हो। तुम्हारा चित्त कैसा है। चलूँ, देखूँ, कैलाश क्या कर रहे हैं। कहूँगी, तुम्हें देखें।

लीला—नहीं, नहीं! उनसे मुझे डर लगता है। वह मुझसे ऐसी बातें करते हैं, जैसे मैं बच्ची हूँ। बताओ कला, क्या तुम्हें उनका डर नहीं लगता?

कला—लगता है। तभी तो चाहती हूँ उन्हें खबर कर दूँ। मुझे उनकी क्षमा से और भी डर लगता है। वह क्षमा से दण्ड देते हैं। (चलना चाहती है।)

लीला—(कला को रोककर) नहीं, नहीं । मत जाओ। मैं उद्विग्न नहीं हूँ। क्या मैंने अब तक सब काम ठीक नहीं किया। देखोगी, अभी भी वैसे ही सब काम ठीक निभाऊँगी। तुम उन्हें मेरे बारे में यह मत कहना कि मैं हार सकती हूँ। कला, वह मेरे बारे में कभी कुछ कहते हैं?

कला—तुम्हारी उन्हें चिन्ता रहती है। वह कहते हैं कि तुम शायद यहाँ से जल्दी चली जाओगी। क्या ऐसा तुम सोचती हो?

लीला—मैं? नहीं, वह मुझे कमज़ोर समझते हैं, इसलिए ऐसा कहते हैं। मैं क्यों जाऊँगी, कला! तुम यहाँ सब छोड़कर रह रही हो तो मैं क्यों नहीं रह सकती। मैं रह सकती हूँ। मैं उधर अब नहीं देखूँगी। वह मुझे ठीक क्यों नहीं समझते।

कला—मैं उन्हें कहूँगी, कि तुम यहाँ ही रहना चाहती हो, जाओगी नहीं।

लीला—हाँ, नहीं जाऊँगी। क्या वह चाहते हैं जिससे बच सकी हूँ उसी में फँसूँ? मुझे जाने कब अवसर मिला है तो क्या उसको भी मैं छोड़ दूँगी। कला, उन्होंने मेरे विषय में तुम्हें कुछ और कहा?

कला—नहीं, कुछ नहीं कहा।

लीला—कला! कला! तुमने किसी से प्रेम किया है?

कला—क्या कह रही हो, लीला!

लीला—समझ नहीं आता कि प्रेम को लेकर कोई क्या करे। मैं किसी का प्रेम नहीं चाहती। मैं नींद चाहती हूँ। प्रेम में नींद नहीं है! क्या प्रेम में सुख है?

कला—क्या कह रही हो?

लीला—कुछ नहीं। तुम कैलाश बाबू को कुछ न कहना। मैं अब जा रही हूँ। मेरी तबीयत अब ठीक है। तो भी तुम्हारे कहने से अब जाकर लेट जाऊँगी। लेकिन कल से मेरा सफ़ाई का काम पक्का है।

कला—नहीं, यह नहीं हो सकता। अभी तुम काम के योग्य नहीं हो।

लीला—हो सकता है। मैं ख़ुद कैलाश बाबू के पास जाकर कह देती हूँ कि मैं अब अच्छी हूँ और कल से अपना काम सँभालती हूँ। बस, तुम इसमें कुछ न बोलना।

कला—लीला!

लीला—मैं अभी ही जा रही हूँ। मुझे तुम जैसी बनने का अधिकार क्यों नहीं है। (चल देती है।)

कला—अभी जा रही हो? अभी तो........

लीला—हाँ, कहूँगी कि किसने कहा कि मैं ठीक नहीं। हूँ!

कला—लीला!

[लीला चली जाती है।

चौथा दृश्य

[लीला का कमरा। लीला आती है। उसके हाथ में झाड़ू है, बाल फैले हैं, चेहरे पर धूल है। झाड़ू एक ओर रख देती है और शीशा देखती है। देखकर आइना दूर कर देती है और पास एक ओर बाल्टी से पानी लेकर मुँह धोती है। धोकर फिर आइना देखती है। बाल ठीक करती है और फिर कपड़े बदलना आरम्भ करती है। इसी समय बाहर द्वार पर थपथपाहट होती है।]

लीला—कौन ?

आवाज़—मैं चार्ली।

लीला—कौन ! (प्रसन्न होकर सहसा सोच में पड़ जाती है।) ठहरो !
(जल्दी-जल्दी कपड़े ठीक करती हुई दरवाज़े की ओर आती है। पास पहुँचकर फिर सोच में पड़ जाती है।) मिलने का समय यह नहीं है।

आवाज़—मैं चार्ली हूँ लिली। (उत्तर न पाकर) मुझे आने की इजाज़त दो।

लीला—अभी नहीं। अभी मैं तैयार भी नहीं हुई।

चार्ली—आधे घण्टे में फिर आऊँ ?

लीला—अच्छा।

चार्ली—अच्छा—

[चार्ल्स के लौट जाने की आवाज़ पाकर दरवाज़ा खोलती और लौटते हुए चार्ल्स को देखती है। चार्ल्स जाते-जाते ठहरता है, क्षणिक असमंजस में रुकता है और वापिस लौट आता है। देखता है, लीला द्वार खोले खड़ी है। लीला को समय नहीं मिलता कि दरवाज़ा बन्द कर दे।]

चार्ल्स—(पास आकर) मैं देर न लूँगा। निबट लो, तब और बातें होंगी। लेकिन मुझे याद आया कि तुम्हारी माँ की बीमारी की ख़बर मुझे देनी है।

लीला—आओ, अन्दर बैठो।

चार्ली—यह समय अन्दर आकर बैठने का है ?

लीला—तुम नाराज़ हो ? मेरी माँ बीमार है। मैं बीमार हूँ। फिर तुम नाराज़ हो !

चार्ली—यह तुम्हें क्या हुआ है ? यहाँ किस जगह आ गई हो ? अपने को यह क्या बना डाला है ? कभी आइना भी देखती हो ? माँ का हाल-चाल रखती हो ?

लीला—मैं क्या करूँ ?

चार्ल्स—चलो, घर चलो।

लीला—घर चलकर क्या करूँ ?

चार्ल्स—यहाँ रहकर क्या कर रही हो ? अपना परलोक ठीक कर रही हो ? परलोक को मैं नहीं जानता। लेकिन इसी लोक को बिगाड़ने से ही क्या वह बनता है, लिली ?

लीला—तो मुझे ले क्यों नहीं चलते ?

चार्ल्स—ले चलूँगा। उसी के लिए आया हूँ। लेकिन तुम्हारी तबीयत को यह क्या हो गया है ? ऐसी क्यों बोलती हो ? जैसे तुम्हारी अपनी कोई इच्छा ही नहीं है !

लीला—यहाँ अपनी कोई इच्छा न रखने का धर्म सिखाया जाता है।

चार्ल्स—तभी तो.........

लीला—चार्ली, यह ग़लत नहीं है। इच्छाएँ हमें सताती हैं। हम पहले चाहते हैं। फिर उस चाह में रोते हैं।

चार्ल्स—बिना इच्छा के जीना चाहती हो ? फिर जीना ही क्यों चाहती हो ? पर वह सब छोड़ो। बोलो, चलोगी ? माँ का सदमा दूर होगा। अपने पीछे माँ को तो मत भूलो। मेरी फ़िक्र मुझे नहीं। जिन्दगी तीन-चौथाई तो कट ही गई। बाक़ी वर्ष भी इधर-उधर बिता दूँगा। उनकी तैयारी करके आया हूँ। पीछे कुछ नहीं छोड़ा। सब नक़द बनाकर पास कर लिया है कि जब जैसे चाहे लुटा सकूँ। तुम अमरीका नहीं चलतीं और यहाँ हिन्दुस्तान में तपस्विन बनकर रहना चाहती हो, तो वैसा कहो। तब मैं भी परिव्राजक की तरह डोलता रहूँगा। और धन की ऐसी फुलझड़ी जलाऊँगा कि बुझने से पहले उसका प्रकाश तुम भी सराहोगी।

लीला—चार्ली, मुझे क्षमा करो। तुम क्या चाहते हो ? मैं वह नहीं हूँ जो तुम समझते हो।

चार्ल्स—मैं क्या समझता हूँ ?

लीला—विवाह चाहते हो ? मैं विवाह के योग्य नहीं हूँ। मेरा······

चार्ल्स—मुझसे इस तरह की बातें न करो।

लीला—मेरा तन मलिन है।

चार्ल्स—चुप करो। बको मत। मैं देवियों में विश्वास नहीं करता। यह बात बार-बार कहकर मेरा अपमान क्यों करती हो ? मैं बड़ा पवित्र हूँ न !

लीला—हागर्थ को तुम जानते हो। विलियम को तुम जानते हो। मैं सब तुमसे कह चुकी हूँ। उन सबके प्रति अकृतज्ञ भी मैं कैसे बनूँ। चार्ली, तुम इतने समझदार, इतने नेक, मुझ व्यभिचारिणी को दुत्कार क्यों नहीं देते ? मुझे नरक के लिए छोड़ दो। विवाह मेरे लिए नरक है और तुम जैसों का प्रेम मेरे लिए यातना है। उस प्रेम का प्रविदान मेरे दिए दिया जायगा ? इसी से कहती हूँ, चार्ली, मुझे इस आश्रम की कठोरता से अलग न करो।

चार्ल्स—(लीला का हाथ पकड़कर) क्या तुम ईश्वर के सामने कह सकती हो कि मैं तुम्हारे लिए कुछ नहीं हूँ, कि मैं तुम्हारा ही नहीं हूँ ? तब तुम मुझे स्वीकार करने से विमुख, कैसे विमुख हो सकती हो ? लिली, मुझे यहाँ का सब कुछ अमानवीय मालूम होता है। यहाँ एक मनुष्य है, वह कैलाश, और वह महान् है। लेकिन उसका यह आश्रम तो Sub humans का कारखाना है। चलो, यहाँ से चलो। मैं तुम्हें ले चलूँगा। क्या

तुम्हें चाहिये ? जो धन दे सकता है वह मैं दे सकता हूँ।
हम दोनों सागरों पर विहरेंगे और हवा में तिरेंगे।
प्रेम का देवता हम दोनों के साथ रहेगा। जगत् के सब
धंधे दूर रहेंगे। मेरे पास बहुत काफ़ी है। कोई अभाव
पास फटकने न पायेगा। चलो लिली, चलो।

[लीला का हाथ चूमता है जिस पर मानो वह नीली
पड़ जाती है। वह अपने हाथ को एकदम खींच लेती है
और भौंचक चार्ल्स को देखती रह जाती है।]

चार्ल्स—लिली ! प्यारी लिली ! ओ मेरी अपनी लिली !

लीला—(एकदम अलग खड़ी होकर) ओह ! यह क्या करते हो ?
आश्रम है, यह आश्रम है ! यहाँ मैं प्रभु की हूँ। कैलाश
बाबू मुझ पर विश्वास करते हैं। चार्ली, तुम्हारे हाथ
जोड़ती हूँ।

चार्ल्स—मुझे माफ़ करो। लेकिन सच तुम्हें क्या हो गया है,
लिली ?

लीला—मैं नहीं कहती मैं यहाँ से नहीं जाऊँगी। लेकिन जब तक
यहाँ हूँ मुझसे दूर रहो। मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ।
(सहसा स्तम्भित, सामने देखती रह जाती है।) ओः !

चार्ल्स—क्या हुआ ?

लीला—उन्होंने देखा तो नहीं ?

चार्ल्स—कौन ? किसने ?

लीला—कैलाश बाबू आ रहे हैं।

चार्ल्स—(मुड़कर देखते हुए) आने दो।

कैलाश—(पास आकर) लो, तुम दोनों यहाँ अच्छे मिले। लीला,
इनको भी हिन्दुस्तानी बनाने का इरादा है कि नहीं।

चार्ली, यह तो ठेठ भारतीय बनने की ठान चुकी मालूम होती है। क्यों लीला ?

चार्ल्स—कोई अपने को कहाँ तक बदल सकता है ?

कैलाश—यह तो लीला बतलायेगी। यह भी ठीक है कि मनुष्य अपने को नहीं बदल सकता। वह आत्मखंड है। लाख कोशिश पर भी कुछ और नहीं हो सकता। क्यों लिली ? चार्ली, तुम आश्रम के और भाई-बहनों से मिले ?

चार्ल्स—कुछ से मिला। मैं इस सबसे सहमत नहीं हूँ। आप यहाँ मनुष्य की शक्ति कम करते हैं।

कैलाश—(हँसकर) संशोधन सुझाइये। मैं तो सीखना चाहता हूँ। मुझे ऐसे ही लोग चाहिये जो जल्दी संतुष्ट न हों। निर्मम आलोचक। लेकिन अभी तो—लीला, तुम्हारी दरख्वास्त नामंज़ूर होती है। (हँसकर) नया काम तुम्हें और नहीं मिलेगा। मैंने सिफ़ारिश की है कि पुराना भी छिन जाय। अपने से बैर ठानना क्यों ? इस बार बाहर जाऊँगा तो तुम साथ चलना चाहोगी ?

चार्ल्स—लेकिन यह तो यहाँ रहना नहीं चाहतीं।

कैलाश—यह बात है ! तब तो सब ठीक है। तुम कहो जी ?

लीला—यह ख़बर देते हैं कि मेरी माँ ज्यादा बीमार हैं। मेरे अकेली वही हैं। आप कहते हैं न कि मुझे जाना चाहिये ?

कैलाश—तुम्हारे दो भाई भी तो हैं न। क्या वे सेवा में नहीं हैं ? अगर वहाँ व्यवस्था ठीक हो तो तुम्हारा वहाँ जाना बच सकता है। वैसे शायद यह जगह तुम्हारे लिये ठीक नहीं है। यहाँ तुम्हीं देखो, क्या है।

चार्ल्स—क्या मैं अनुमान करूँ कि आप इन्हें जाने से रोकना चाहते हैं ?

कैलाश—नहीं। बल्कि चाहता हूँ कि ये अपने देश जायँ। आश्रम-जीवन तो कोई चाहे सब जगह साथ रह सकता है। घर क्या आश्रम नहीं है ? क्यों लीला ? जाने में झिझकती हो ?

लीला—मैं फिर आ जाऊँगी। माँ के अच्छे होने पर आ जाऊँगी।

कैलाश—जब चाहे आओ। संस्कृत का वाक्य याद है न—वसुधा ही हमारा कुटुम्ब हो। तुम हम सबको कुटुम्ब-जैसा मानो तो बात है। मान सकोगी ? क्या अमरीका, क्या हिन्दुस्तान, सब परमात्मा की गोद है।

लीला—मैं माँ को देखने के लिये जा रही हूँ।

कैलाश—जाओ जरूर। पर यह तो काफ़ी कारण नहीं है। क्यों चार्ली, तुम्हारे रहते क्या मैं इनको यक़ीन नहीं दिला सकता कि इनकी माँ को कोई खतरा नहीं है ?

चार्ल्स—मैं अभी मुमकिन है, भ्रमण पर और आगे निकल जाऊँ। अभी पूर्व की विचित्रताएँ काफ़ी देखना बाक़ी हैं।

कैलाश—(गम्भीर वाणी से) क्या आप याद दिलाना चाहते हैं कि वह आपकी तो माँ नहीं हैं और इनकी हैं ? लेकिन यह तो आपके लिहाज से कोई बड़ा अन्तर नहीं होना चाहिए ?

चार्ल्स—आपका आशय······

कैलाश—लीला अभी स्वस्थ नहीं है। माँ के स्वास्थ्य-लाभ में क्या यह विशेष सहायता पहुँचा सकेगी ? ऐसे समय आप कहने आये हैं कि उसकी माँ ज्यादा बीमार हैं। यह ठीक है। लेकिन इस सूचना से कष्ट पहुँचाने के साथ क्या आप यह आश्वासन भी नहीं दे सकते कि उसे चिन्ता

करने की आवश्यकता नहीं है। मैं समझता हूँ आप लीला की अस्वस्थावस्था में उसे दण्ड नहीं देना चाहते। मेरी सलाह होगी कि आप हवाई जहाज से वापिस लौट जावें और वहाँ से खबर दें कि माँ ठीक हो रही हैं।

चार्ल्स—आपकी ध्वनि से मालूम होता है कि आप भूलते हैं कि मैं आश्रम-वासी नहीं हूँ।

कैलाश—मुझे क्षमा करें। लेकिन मैं अनुमान करता हूँ कि इस लड़की के स्वास्थ्य की आपको चिन्ता होनी चाहिए। उसका चित्त स्वस्थ नहीं है। अच्छा हो कि वह आपके साथ चली जावे। लेकिन माँ की चिन्ताकुलता के कारण जाना स्वास्थ्य के लिए ठीक होगा। तब क्या यह उपाय नहीं है कि आप हवाई जहाज से वापिस चले जावें ताकि उन्हें दिलासा हो। क्या आप इन्हें इतना प्रेम नहीं करते ?

चार्ल्स—लेकिन मैं इन्हें यहाँ, इस पागलों की बस्ती में, नहीं छोड़ सकता।

कैलाश—हाँ, यह तो ठीक है। लेकिन जाना हो तो मेरी सलाह है कि समुद्र से नहीं, हवा से जाओ। समय की बचत होगी और पैसा······

चार्ल्स—उसकी फ़िक्र नहीं है।

कैलाश—हाँ, पैसे की फ़िक्र नहीं होनी चाहिए। लीला, यह ख़ुशी है कि यह तय है, तुम अब जा रही हो। यहाँ के लोग एकदम तो नहीं, लेकिन हाँ थोड़े-थोड़े पागल ज़रूर होंगे। पर फिर भी तुम उनकी याद रख सकती हो। अब मैं चलूँ।

लीला—तो आपकी इजाज़त है ?

कैलाश—(हँसकर) ज़रूर इजाज़त है।

लीला—(एकाएक) लेकिन क्या मैं यह तय नहीं कर सकती कि मैं न जाऊँ ?

कैलाश—उसकी भी इजाजत है।

लीला—तो मैं नहीं जाऊँगी।

कैलाश—सोच देखो।

[कैलाश चले जाते हैं। लीला कुछ देर उन्हें जाते हुए देखती रहती है। श्रोझल होने पर दोनों हाथ से मुँह को ढँक लेती है और सुबकने लगती है। फिर वह सिर को घुटनों पर डालकर श्रवश हो जाती है।]

चार्ल्स—लिली ! लिली !

[उसके कमर में हाथ डालता है।]

लीला—हट जाश्रो। मुझसे न बोलो। श्रो ईश्वर, मैं क्या करूँ ?

चार्ल्स—लिली, डीयर, चलो, यहाँ से चलो।

लीला—(मुँह उठाकर) मुझे क्यों मार रहे हो ? मुझे जबरदस्ती उठाकर क्यों यहाँ से एकदम भगाकर नहीं ले चलते हो। मैं यहाँ रहूँगी। मर जाऊँगी, पर अपने श्राप नहीं जाऊँगी। तुमसे इतना भी नहीं होता कि बलात्कार करो श्रौर मुझे ले जाश्रो। मुझसे तुम्हें इतना डर लगता है ? कहती हूँ, ले जाश्रो। नहीं तो मैं खो जाऊँगी।

चार्ल्स—चलोगी ?

लीला—तुमको शर्म नहीं श्राती कि पूछते हो, चलोगी ? मैं चलने न चलनेवाली कोई नहीं होती। जाश्रो, हट जाश्रो मेरे सामने से।

[चार्ल्स श्रवश भाव से बैठकर उसको दोनों कंधों से पकड़कर थामता है।]

चार्ल्स—मैं जरूर तुम्हें यहाँ से ले चलूँगो। लिली ! लिली !

[लीला एकटक सामने देखती रह जाती है। मानों गूँगी हो श्रौर श्राँखें पथरा गई हों।]

रेशमी टाई

[श्रीरामकुमार वर्मा एम० ए०]

पात्र

नवीनचन्द्रराय—इन्श्योरेन्स कम्पनी का एजेन्ट और साम्यवाद का विश्वासी।

लीला—उसकी सुशीला स्त्री।

सुधालता—स्वयंसेविका।

चन्दन—नवीनचन्द्र का नौकर।

दृश्य—नम्बर २० स्टेनली स्ट्रीट।

समय—सन् १९३८ का खादी-सप्ताह, प्रातःकाल।

❀ ❀ ❀ ❀

[एक सुसज्जित कमरा। ड्राइंग और ड्रेसिंग रूम जैसे मिल गये हों। एक ओर कार्ल मार्क्स और दूसरी ओर ग्रेटा गार्बो के विशाल चित्र। बगल में एक बड़ा शीशा। कमरे के एक कोने में एक टेबिल है, जिस पर कुछ पुस्तकें और कागज रखे हुए हैं। दूसरी ओर एक आलमारी है, जिसमें नीचे दो दराज़ हैं। बीचोंबीच एक टेबिल है, जिस पर फूलदान है और उसमें गुलदस्ता बना हुआ है। आमने-सामने दो कुर्सियाँ पड़ी हुई हैं। जमीन पर एक मखमली फर्श बिछा हुआ है। दीवाल पर एक घड़ी, जिसमें आठ बजकर दस मिनट हो गये हैं। बगल में कैलेण्डर।

नवीनचन्द्र नेपथ्य की ओर बगल में दरवाज़े की ओर बढ़कर बड़े ध्यान से देख रहा है।]

नवीन—(दरवाज़े की ओर धीरे-धीरे बढ़कर देखता हुआ) इतनी ठंड में स्नान······! पूजा······! (एकटक देखते हुए रुक-कर) फेथफुल वाइफ······स्वीट लीला······! (फिर रुककर लौटते हुए अपनी ओर देखकर) और मैं ? (बीच में रखी हुई टेबल के समीप जाता है। दराज खोलकर एक बण्डल निकालता है। उसे हाथों से तौलता है, फिर छोटे दराज से कैंची निकालकर बण्डल की रस्सी काटकर उसे खोलता है। दो रेशमी टाई निकालता है। एक टाई को उलट-पलट कर गौर से देखता है। हाथ में लेकर फुलाकर, कुछ ऊपर उठाकर देखते हुए) ब्यूटीफुल ! (दूसरे हाथ में लेकर) एस्टलेण्डिड ! (चित्र की ओर देखकर) लाइक दैट अव् ग्रेटा गार्बो ! शैल आय ट्राइ ? (शीशे के समीप जाकर ओंठ से सीटी बजाता हुआ टाई पहनता है। हेराल्ड वाइल्ड का 'आई हीयर यू कालिंग मी' गाना गुन-गुनाते हुए टाई की नाट् बाँधता है। रुककर खिड़की के पास जाते हुए) अरे चन्दन, ओ चन्दन ! (खिड़की से दाहिनी ओर झाँकते हुए) अरे, आज चा-वा लाना है या नहीं ?

चन्दन—(नेपथ्य से) लाया हुजूर !

नवीन—(टाई की नाट् ठीक करते हुए) इन कम्बख़्तों का सूरज नौ बजे निकलता है। अभी तक चा तैयार नहीं हुई। रासकल्स, ईडियट्स !

[चन्दन का चा लेकर प्रवेश]

नवीन—(टाई पर हाथ फेरते हुए) क्यों रे, जब तक मैं चा न मँगाऊँ, तब तक आराम से बैठा रहता है हाथ पर हाथ धरे ?

चन्दन—(बीचवाली टेबल पर ट्रे रखते हुए) हुजूर, टोस्ट में मक्खन लगा रहा था।

नवीन—और मैं तेरे सिर पर चपत लगाऊँ तो ? ईडियट, (घड़ी की ओर देखते हुए) आठ बज गये, जानता है ?

चन्दन—हुजूर, आज दिन मालूम नहीं पड़ा। खूब कुहरा पड़ रहा था, हुजूर !

नवीन—तेरी अक़्ल पर ? बदमाश, किस लेबिल की डाली ? पीले की या लाल की ?

चन्दन—हुजूर, लाल की।

नवीन—हूँ ! (शान्त होकर) उनकी पूजा खतम हो गई ?

लीला—(आते हुए) हो गई, आ रही हूँ। सुबह से यह कैसी गुस्सा ?

नवीन—(कुर्सी पर बैठते हुए) गुस्सा न आवे ? आठ बज जाते हैं, और चा नहीं आती। (झल्लाकर सिगरेट जलाता है।)

लीला—(सन्तोष देते हुए) सचमुच नाराज़ी की बात है ! मैं कल से और भी सुबह उठूँगी।

नवीन—तुम क्यों उठोगी ? ये नौकर किसलिए हैं ?

लीला—(मुस्कराते हुए कुर्सी पर बैठते हुए) गुस्सा दिलाने के लिए। इस ठण्ड में गर्मी लाने के लिए !

नवीन—(कुछ मुस्कराकर, चदन की ओर देखते हुए) ईडियट। जाओ, बाहर बैठो। (चंदन चला जाता है।)

लीला—(शान्ति से) इतने नाराज़ होकर बाहर जाओगे तो फिर केस कैसे मिलेंगे ? इसी महीने के आख़ीर तक तो आपको पच्चीस हज़ार इन्श्योर करने हैं। आज तारीख़ १८ हो चुकी। (कैलेण्डर पर दृष्टि)

नवीन—(झल्लाकर) ऐसी हालत में कर चुका। (चा की केटली उठाता है)

लीला— नहीं लाओ, मैं चा बनाऊँ। (केटली ले लेती है) तुम तो पचीस क्या, पचास हज़ार कर लोगे। (प्याले में चा डालते हुए) अब लोग इन्श्योरेन्स की ज़रूरत समझने लगे हैं। दस-पन्द्रह बरस पहले तो लोग समझते थे कि इन्श्योरेन्स अपशकुन है। मरने की बात अभी से सोचते हैं। (चा का रंग देखते हुए) देखो, कितना अच्छा कलर है!

नवीन—(प्याले को देखकर) हूँ!

लीला—सचमुच इस ठण्ड में चा एक चीज़ है। कम्पनीवालों को ठण्ड में चा की क़ीमत बढ़ा देनी चाहिये? क्यों?

नवीन—कहीं अपनी यह राय किसी कम्पनी को भेज भी न देना।

लीला—तो मुफ़्त में तो भेजूँगी नहीं! चीनी?

नवीन—डेढ़ चम्मच।

लीला—(डेढ़ चम्मच चीनी डालकर दूध मिलाने के पहले) देखो चा का रंग तुम्हारी रेशमी टाई से मिलता-जुलता। (रुककर प्रश्न के स्वर में) क्या बाहर जाने को तैयार हो गये? (दूध डालती है)

नवीन—नहीं तो।

लीला—यह सुबह से टाई पहन रक्खी है।

नवीन—(चा को होठों से लगाते हुए) यों ही देखना था, कैसी लगती है। नयी है—कल ही लाया हूँ।

लीला—(चा पीते हुए प्रशंसा के स्वरों में) अच्छी लगती है!

नवीन—(उमंग से) अच्छी ? बहुत अच्छी ? ग्रेटा गार्बो जैसी ? देखो (चित्र की ओर संकेत करता है) ।

लीला—(ग्रेटा के चित्र की ओर देखकर) सचमुच इस समय आप ग्रेटा जैसे ही मालूम हो रहे हैं ।

नवीन—(झेंपकर) हिश, और सुनो ! मुफ्त—बिल्कुल मुफ्त !

लीला—कैसे ? क्या सिगरेट के कूपन प्रेजेण्ट में ?

नवीन—(सिर हिलाकर) ऊँ—हूँ !

लीला—फिर किसी ने प्रेजेण्ट की होगी ?

नवीन—(चा का घूँट लेकर) ऊँ—हूँ ।

लीला—अच्छा, मैं समझ गई । (रुककर) दद्रुगज-केसरी का उपहार ?

नवीन—(हँसकर) पागल !

लीला—फिर क्लीयरेंस सेल में !

नवीन—फेल ।

लीला—(हँसकर) अच्छा, इस बार ठीक बतलाऊँ । एक रुपये में १४४ चीज़ों के साथ डमी वाच और टाई ।

नवीन—(मुस्कराकर) नानसेन्स, (सिगरेट का धुआँ छोड़ता है)

लीला—फिर मैं नहीं समझी ।

नवीन—लो समझो । मैं कल गया था मदनलाल खन्ना के यहाँ । बहुत-सी 'वेराइटीज़' देखीं । दो टाइज़ पसन्द कीं, ली एक ही । लेकिन उसने दोनों टाइज़ बण्डल में बाँध दीं और दाम एक ही के लिए ।

लीला—(चा का घूँट लेते हुए) तो यह टाई तुम्हें लौटा देनी चाहिए ।

नवीन—क्यों लौटा देनी चाहिए ? आई हुई लक्ष्मी को ठुकरा देना चाहिए ? जो चीज़ आप-से-आप आ जाय—आ जाय ।

लीला—यह चोरी नहीं है ?

नवीन—चोरी क्यों ? मैं उसके सामने लाया हूँ। उसने अपने हाथ से वण्डल वनाया।

लीला—पर दाम तो आपने एक ही के दिए ?

नवीन—उसने भी तो दाम एक ही के लिए।

लीला—नहीं, यह ठीक नहीं। इस तरह की भूल तो अक्सर हो ही जाती है।

नवीन—तो जो भूल करे, 'सफ़र' करे। (दूसरी सिगरेट जलाता है)

लीला—और अगर मदनलाल कहला भेजे कि एक टाई आपके साथ ज्यादा चली गई है, तो ?

नवीन—(स्वतन्त्रता से) तो मैं कहला दूँगा कि मैं क्या जानूँ ? अपनी दूकान में देखो। कहीं किसी कपड़े में लिपटी पड़ी होगी।

लीला—(रुष्ट होकर) यह वात आपके स्वभाव से अब तक नहीं गई। जब आप पढ़ते थे, तव भी किताबों के ख़रीदने में आप ऐसी ही हाथ की सफ़ाई दिखलाते थे।

नवीन—(सिगरेट का धुआँ छोड़कर) और वे लोग हमें कितना लूटते हैं ? यह भी तो सोचो।

लीला—रोजगार करते हैं। न कमायें तो खायें क्या ?

नवीन—(व्यंग से) न कमायें तो खायें क्या ? हमसे एक के चार वसूल करते हैं ! ऐसे हैं ये कमानेवाले पूँजीपति। इन पूँजीपतियों की यही सजा है। जानती हो, कार्ल-मार्क्स ने क्या लिखा है ? फ़िलासोफ़र्स हिदरटू हैव ओनली इण्टरप्रेटेड दि वर्ल्ड इन वेरचस वेज, दि टास्क इज टू चेंज इट। इस संसार को बदलना है।

लीला—यह सिद्धान्त आपने ख़ूब निकाला !

नवीन—मेरा सिद्धान्त क्यों, यह तो सोशलिज्म
कल मेटीरियलिज्म।

लीला--अपने दुर्गुणों को सोशलिज्म न बनाइये।
का एकदम ही उद्धार हो जायेगा।

नवीन—खैर, यह टाई तो इस समय मिस्टर नवीन
ए० के कण्ठ की शोभा बढ़ा रही है.......
तुमने चा बहुत थोड़ी पी।

लीला—धन्यवाद! मैं पी चुकी।

नवीन—(पुकारकर) चन्दन, यह ले जाओ।

चन्दन—(नेपथ्य से) आया हुजूर।

लीला—यह टाई चाहे कितनी अच्छी हो, लेकिन (
प्रवेश) आज काफ़ी ठण्ड है। कुहरा बहुत छ
ऐसा मालूम होता था कि आज सूरज निकलेगा।
क्यों चन्दन?

चन्दन—(प्रसन्न होकर) जी हाँ हुजूर, खूब कुहरा पड़ रहा

लीला—(उठकर) अच्छा तो मैं ज़रा गरम कपड़े पहन
(प्रस्थान)

चन्दन—(ट्रे ले जाते हुए) हुजूर, अभी-अभी एक लड़की
है। कुछ कपड़े लिए हुए है।

नवीन—(भौंहें सिकोड़कर) लड़की है?

चन्दन—हाँ हुजूर, लड़की है। बेचना चाहती है हुजूर। ह
हुक्म हो तो—

नवीन—(सोचते हुए) अभी नहीं। मैं ज़रा विक्टोरिया प
जाऊँगा। पाँच मिनट के लिए। (सोचकर) ऐं......
अच्छा भेज दे।

[चन्दन का प्रस्थान। नवीन टाई के झूलते हुए छ
को हाथ में लेकर बार-बार झुलाकर देख रहा है। सुधाल

का प्रवेश। खद्दर की वेषभूषा। उसके हाथ में खद्दर का एक गट्ठर है। आते ही गट्ठर को ज़मीन पर रखकर दोनों हाथ जोड़ते हुए—वन्दे मातरम्!]

नवीन—(सिर हिलाकर) नमस्ते। कहिये?

सुधा—मेरा नाम सुधालता है। मैं स्वयंसेविका हूँ। खद्दर बेचना चाहती हूँ।

नवीन—(दुहराकर) खद्दर?

सुधा—जी हाँ! कल से खद्दर-सप्ताह प्रारम्भ हो गया है। कुछ खद्दर न खरीदियेगा?

नवीन—खद्दर? नहीं, इस समय तो नहीं, मेरे पास काफ़ी कपड़े हैं। फिर खद्दर में कोई क्वालिटी भी तो नहीं है। न डिजाइन। और आज पहनो, कल मैला।

सुधा—(अनुरोध के स्वर में) आप लोगों को तो पहनना चाहिए। हाथ का कता और हाथ ही का बुना पहनने में कितना सन्तोष······

नवीन—इस सायन्स की 'एज' में गांधीजी का चरखा। (मुस्कराकर) ठीक है। ऐरोप्लेन के रहते हुए बैलगाड़ी से जल्दी पहुँचने की बात···

सुधा—यह तो स्वावलम्बन की शिक्षा का एक साधन-मात्र है। उस रोज़ आपने भी तो जवाहर-पार्क में एक लेक्चर दिया था··· ··

नवीन—मैंने तो सोशलिज्म के सिद्धान्त बताये थे।

सुधा—जी हाँ, पर लेक्चर बड़ा जोशीला था।

नवीन—(प्रसन्न होकर) अच्छा, आपने सुना था?

सुधा—जी हाँ, मैं तो वहीं पास खड़ी थी। फिर आप साइलेन्स थीं। जब आपका लेक्चर ख़त्म हुआ, तो लोग कह रहे

थे कि अगर ऐसा लेक्चर सुनने के लिए मिले, तो हम लोग रोज़ यहाँ इकट्ठे हो सकते हैं।

नवीन—(प्रसन्नता से) अच्छा ?

सुधा—कुछ लोग तो आपके लेक्चर की बहुत-सी बातें लिखते भी जा रहे थे।

नवीन—अच्छा, मैंने यह नहीं देखा !

सुधा—आप तो लेक्चर दे रहे थे। अच्छी भीड़ थी। ऐसा लेक्चर बहुत दिनों से नहीं सुना था।

नवीन—(नम्रता बतलाते हुए) मैं तो किसी तरह अपने विचार प्रकट कर लेता हूँ। बस यही मुझे आता है। अच्छा, खैर आपके पास कैसे डिजाइन हैं ?

सुधा—(प्रसन्न होकर) देखिए। बहुत तरह के हैं। (गट्ठर खोलती है। एक थान दिखलाते हुए) देखिए, यह गांधी-आश्रम, अहमदाबाद का है। चैक ! दस आने गज। बहुत अच्छा। जितना धुलेगा, उतना ही साफ़ आवेगा।

नवीन—(हाथ में लेते हुए) अच्छा है। कुछ खुरदरा है। यों तो........

सुधा—(दूसरा थान लेकर) यह मेरठ का है। इससे अच्छा सूत तो इस डिजाइन का कहीं मिलेगा ही नहीं। सिर्फ़ एक रुपया गज़ है।

नवीन—(हाथ में लेकर देखता है) हूँ।

सुधा—और यह देखिए पीलीभीत का। आपके लायक़। सवा रुपया गज। इसमें आपका सूट बहुत अच्छा बनेगा। आपके सूट में तो सिर्फ़ सात गज ही लगेगा ?

नवीन—हाँ, नहीं तो क्या ? यही सात गज।

सुधा—तो फिर इसे खरीद लीजिए। दूँ सात गज़ ?

नवीन—है तो अच्छा। सबसे अच्छा यही है। लेकिन······और इससे अच्छा डिजाइन नहीं ?

सुधा—इससे अच्छा डिजाइन दो-तीन दिन में आ जावेगा।

नवीन—तो फिर तभी न लाइये ?

सुधा—उस वक्त भी लाऊँगी। अभी भी ले लीजिए। क्या इनमें कोई भी ठीक नहीं है ?

नवीन—हाँ ठीक तो है, पर······कुछ ठीक नहीं है।

सुधा—यों पहनने की इच्छा हो तो ठीक है, नहीं तो कुछ भी ठीक नहीं।

नवीन—फिर कभी आइये।

सुधा—तो क्या मैं निराश होकर जाऊँ ? इधर आपका इन्श्योरेन्स बिजनेस भी तो चल निकला है। अब तो काफी रुपया आता होगा ?

नवीन—बात यह है कि इस समय मेरे पास कुछ नहीं है। बिज-नेस चल भले ही निकले, लेकिन मुसीबत यह है कि कई दोस्तों की लाइफ इन्श्योर करने से उनकी प्रीमियम मुझे अपने पास से देनी पड़ जाती है। उनके पास जब रुपये होंगे तब कहीं वे मुझे देंगे। इस महीने में क़रीब तीनसौ रुपए अपने पास से देने पड़े।

सुधा—ठीक है, लेकिन खादी-सप्ताह में आपको कुछ लेना ही चाहिए। देखिए शहर में मैंने दो दिनों में पचहत्तर रुपए की खादी बेच डाली।

नवीन—खैर, अभी तो पाँच दिन बाक़ी हैं। फिर आइये। उस समय तक आपके पास नये डिजाइन भी आ जावेंगे।

सुधा—तो फिर मैं ऐसे ही वापस······

नवीन—फिर आइये। मुझे इस समय जरा विक्टोरिया-पार्क जाना है।

थे कि अगर ऐसा लेक्चर सुनने के लिए मिले, तो हम लोग रोज़ यहाँ इकट्ठे हो सकते हैं।

नवीन—(प्रसन्नता से) अच्छा ?

सुधा—कुछ लोग तो आपके लेक्चर की बहुत-सी बातें लिखते भी जा रहे थे।

नवीन—अच्छा, मैंने यह नहीं देखा !

सुधा—आप तो लेक्चर दे रहे थे। अच्छी भीड़ थी। ऐसा लेक्चर बहुत दिनों से नहीं सुना था।

नवीन—(नम्रता बतलाते हुए) मैं तो किसी तरह अपने विचार प्रकट कर लेता हूँ। बस यही मुझे आता है। अच्छा, खैर आपके पास कैसे डिजाइन हैं ?

सुधा—(प्रसन्न होकर) देखिए। बहुत तरह के हैं। (गट्ठर खोलती है। एक थान दिखलाते हुए) देखिए, यह गांधी-आश्रम, अहमदाबाद का है। चैक ! दस आने गज़। बहुत अच्छा। जितना धुलेगा, उतना ही साफ़ आवेगा।

नवीन—(हाथ में लेते हुए) अच्छा है। कुछ खुरदरा है। यों तो.........

सुधा—(दूसरा थान लेकर) यह मेरठ का है। इससे अच्छा सूत तो इस डिजाइन का कहीं मिलेगा ही नहीं। सिर्फ़ एक रुपया गज़ है।

नवीन—(हाथ में लेकर देखता है) हूँ।

सुधा—और यह देखिए पीलीभीत का। आपके लायक़। सवा रुपया गज। इसमें आपका सूट बहुत अच्छा बनेगा। आपके सूट में तो सिर्फ़ सात गज ही लगेगा ?

नवीन—हाँ, नहीं तो क्या ? यही सात गज।

सुधा—तो फिर इसे ख़रीद लीजिए। दूँ सात गज़ ?

नवीन—है तो अच्छा। सबसे अच्छा यही है। लेकिन……और इससे अच्छा डिजाइन नहीं ?

सुधा—इससे अच्छा डिजाइन दो-तीन दिन में आ जावेगा।

नवीन—तो फिर तभी न लाइये ?

सुधा—उस वक्त भी लाऊँगी। अभी भी ले लीजिए। क्या इनमें कोई भी ठीक नहीं है ?

नवीन—हाँ ठीक तो है, पर……कुछ ठीक नहीं है।

सुधा—यों पहनने की इच्छा हो तो ठीक है, नहीं तो कुछ भी ठीक नहीं।

नवीन—फिर कभी आइये।

सुधा—तो क्या मैं निराश होकर जाऊँ ? इधर आपका इन्श्योरेन्स बिजनेस भी तो चल निकला है। अब तो काफ़ी रुपया आता होगा ?

नवीन—बात यह है कि इस समय मेरे पास कुछ नहीं है। बिज-नेस चल भले ही निकले, लेकिन मुसीबत यह है कि कई दोस्तों की लाइफ़ इन्श्योर करने से उनकी प्रीमियम मुझे अपने पास से देनी पड़ जाती है। उनके पास जब रुपये होंगे तब कहीं वे मुझे देंगे। इस महीने में क़रीब तीनसौ रुपए अपने पास से देने पड़े।

सुधा—ठीक है, लेकिन खादी-सप्ताह में आपको कुछ लेना ही चाहिए। देखिए शहर में मैंने दो दिनों में पचहत्तर रुपए की खादी बेच डाली।

नवीन—ख़ैर, अभी तो पाँच दिन बाक़ी हैं। फिर आइये। उस समय तक आपके पास नये डिजाइन भी आ जावेंगे।

सुधा—तो फिर मैं ऐसे ही वापस……

नवीन—फिर आइये। मुझे इस समय ज़रा विक्टोरिया-पार्क जाना है।

सुधा—अच्छी बात है। जल्दी में कपड़ा ख़रीदना भी नहीं चाहिए। मैं फिर दो-तीन दिन बाद आऊँगी।

नवीन—हाँ (अनिश्चित रूप से) फिर देखूँगा।

सुधा—(गट्ठर बाँधते हुए) अच्छा फिर आऊँगी। जब आपको ये पसन्द नहीं, तो फिर इन्हें मैं आपको देना भी पसन्द नहीं करूँगी। अच्छा, (हाथ जोड़कर) वन्दे।

[नवीन सिर हिलाकर हाथ जोड़ते हैं। उसकी ओर ग़ौर से देखते हैं। सुधा जाती है, पर फिर बाहर से लौटकर] मैं एक विनय करना चाहती थी।......मैं......

नवीन—हाँ, कहिये।

सुधा—मैं १४ नं० स्टेनली स्ट्रीट में कपड़ा बेचकर वहीं अपना गज भूल आयी। आपका मकान तो शायद नं० २० है ?

नवीन—हाँ।

सुधा—तो आपको कोई आपत्ति तो न होगी, अगर मैं अपना गट्ठर यहीं छोड़ जाऊँ ? पाँच-दस मिनट में ले जाऊँगी। वहाँ से अपना गज ले आऊँ। रास्ते में यह गट्ठर व्यर्थ क्यों ढोऊँ ? और फिर मुझे आगे ही जाना है।

नवीन—(स्वीकृति से सिर हिलाकर) हाँ, मुझे कोई आपत्ति नहीं है। आप रख जाइये। अगर मैं आपके आने तक न भी आ सकूँ, तो मेरा नौकर चन्दन आपको यह गट्ठर दे देगा। मैं नौकर से कह दूँ (पुकारकर) अरे ओ चन्दन !

चन्दन—(आकर) जी हुज़ूर !

नवीन—देखो, अगर मैं यहाँ न रहूँ तो यह गट्ठर इन्हें दे देना। इनका नाम श्रीमती सुधालता है। समझे ?

चन्दन—बहुत अच्छा हुज़ूर।

नवीन—(सुधा से) ठीक ?

सुधा—धन्यवाद। (प्रस्थान)

(नवीन सिगरेट जलाता है। उसकी नज़र 'लीडर' पर पड़ती है) अच्छा ? आज का पेपर पढ़ ही नहीं पाया। देखूँ ! (लीडर देखता है। एक मिनट तक पन्ने लौटने पर) कोई ख़ास बात नहीं। (लीडर के पृष्ठ पर विज्ञापन देखकर) अच्छा ? टूटल टाईज़ प्राइस रूपी वन् एट ईच। मदनलाल ने मुझसे वन ट्वेल्व लिये। फूल ! (सोचता है। उसकी दृष्टि खद्दर के गट्टर पर पड़ती है। वह धीरे से उठता है। गट्टर खोलता है। उसमें से एक थान निकालता है। उसे कुछ देर देखता है, फिर सोचते हुए उसे खोलकर देखता है। अपने कोट पर रखकर सूट का अनुमान करता है। सिर हिलाकर सोचते हुए आल्मारी के दराज़ में बन्द कर देता है। फिर चुपचाप आकर गठरी उसी तरह बाँध देता है और लौटकर अख़बार पढ़ने लगता है। कभी आल्मारी को देखता है, कभी खद्दर के गट्टर को। लीला का प्रवेश)

लीला—(नवीन को देखकर) आप तो शायद विक्टोरिया-पार्क जानेवाले थे ? मैंने सुना था।

नवीन—हाँ, ज़रा पेपर पढ़ने लगा। (सँभलकर) अब जा रहा हूँ।

लीला—कोई ख़ास ख़बर ?

नवीन—टूटल टाईज़ की क़ीमत वन् एट है। मदनलाल ने मुझसे वन ट्वेल्व लिए।

लीला—(मुस्कराकर) क्या यह ख़बर छपी है ?

नवीन—नहीं जी। टूटल टाईज़ का विज्ञापन है। उसने मुझसे चार आने ज़्यादा लिए। देखी उसकी बेईमानी ?

लीला—खैर, जाने भी दीजिए। समझ लीजिए चार आने पैसे उसे दान में दिये। (खद्दर के गट्ठर को देखकर) यह गठरी कैसी?

नवीन—एक स्वयंसेविका खद्दर बेचने आई थी। वह अपना गज यहीं कहीं भूल आई। लेने गई है। गट्ठर यहीं छोड़ गई है। कहती थी, रास्ते में व्यर्थ बोझ क्यों ढोऊँ?

लीला—तो क्या कुछ खरीदा आपने?

नवीन—नहीं तो, खद्दर मुझे कभी पसन्द नहीं आया।

लीला—आपको तो टाई पसन्द आती है?

नवीन—(लज्जित होकर) लीला, मुझसे व्यंग न करो। तुम्हारा उपदेश मैं बहुत सुन चुका। अच्छा, अब जाता हूँ।

लीला—सुनिये, सुनिये, (नवीन का प्रस्थान) अच्छा, चले गये? पूछती मेरी सोने की अँगूठी कहाँ गई। (टेबल के दराज में खोजती है। चन्दन को पुकारकर) चन्दन!

चन्दन—जी हुज़ूर!

लीला—तुझे मालूम है, मेरी सोने की अँगूठी कहाँ है?

चन्दन—हुज़ूर, आप कल तो पहनें थीं। आपने उतारकर कहीं रख दी होगी।

लीला—उतारकर रख दी, तभी तो हाथ में नहीं है।

चन्दन—आपने बाथ रूम में तो नहीं रखी?

लीला—(स्मरण करते हुए) शायद वहाँ हो।

[प्रस्थान]

[चन्दन अँगूठी यहाँ-वहाँ खोजता है। सुधा का स्वर बाहर से।]

मैं आ सकती हूँ?

चन्दन—कौन है?

सुधा—मैं हूँ सुधा। अभी खद्दर बेचने आई थी।

चन्दन—(शान से) अच्छा आओ।

[सुधा का प्रवेश]

सुधा—(चदन्न को देखकर) तुम्हारे साहब कहाँ हैं। अभी नहीं आये ?

चन्दन—अभी बाहर से नहीं आये ? तुम अपना गट्ठर उठा ले जा सकती हो। और देखोजी, तुम इस तरह क्यों चली आती हो ? तुम अपने नाम का कार्ड रखो। जब यहाँ आओ तो पहले उसको पेश करो। समझीं ? मिलने का ढंग ऐसा नहीं कि आये और कमरे में घुस पड़े। साहबों से मिलने का तरीक़ा पहले मुझसे सीखो।

सुधा—ठीक है। (खद्दर का गट्ठर उठाकर चलती है)

चन्दन—और सुनो जी, तुम हाथ में सोने की अँगूठी नहीं पहनती ?

सुधा—सोने की अँगूठी ? पूछने का मतलब ?

चन्दन—यही मैंने कहा, सोने की अँगूठी अच्छी होती है।

सुधा—(दृढ़ दृष्टि से) अजीब आदमी है ? (प्रस्थान)

[चन्दन फिर अँगूठी यहाँ-वहाँ खोजने लगता है। लीला का प्रवेश]

लीला—बाथ-रूम में भी अँगूठी नहीं है। टेबल के दराज में भी नहीं है ! कोई यहाँ आया तो नहीं था ?

चन्दन—वही खद्दर बेचनेवाली आई थी।

लीला—वह क्या ले गई होगी ? वह नहीं ले जा सकती। फिर तुम्हारे हुज़ूर भी तो थे ?

चन्दन—नहीं हुज़ूर, कोई किसी का दिल क्या जाने, न जाने कब क्या……

लीला—अभी वे नहीं आये ?

चन्दन—नहीं तो हुजूर, देखूँ बाहर। शायद आते हों।

[बाहर जाता है]

लीला—(सोचते हुए) कहाँ जा सकती है अँगूठी ? न मिलने पर वे नाराज़ ज़रूर होंगे।

(फिर टेबल का दराज देखती है। न मिलने पर आलमारी का दराज खोलती है। खद्दर का थान देखकर विस्मित होती है। निकालती है। सोचते हुए) अच्छा, यह थान कहाँ से आया ? वे तो कहते थे कि मैंने कोई कपड़ा ख़रीदा ही नहीं ? फिर यह कहाँ से आया ? कहीं उसी ने तो बेचने की गरज से यहाँ नहीं रख दिया……? पर वह यहाँ रख कैसे सकती है……? कहीं उन्होंने तो खद्दर के गट्ठर में से निकालकर यहाँ नहीं रख दिया ? ओह, वे कैसे होते जा रहे हैं !…… मैं उसे बुलाकर वापस कर दूँ……। कहीं वे नाराज़ हो गये तो……! अच्छा यह कैसी आवाज़ ?

[बाहर चन्दन और सुधा में बातचीत होती है, लीला सुनती है।]

सुधा—देखो जी, मेरे गट्ठर में एक थान कम है। कहीं अन्दर ही तो नहीं रह गया ?

चन्दन—(रूखे स्वर से) अन्दर कैसे रह जायगा ? जैसा गट्ठर बाँधकर रख गई थी, वैसा ही बँधा रक्खा था, कैसी बात करती हो तुम ?

[लीला खद्दर के थान को दराज में बन्द कर दरवाज़े के और पास आकर सुनने लगती है।]

सुधा—गट्ठर कुछ हलका जान पड़ा। मैंने खोलकर देखा तो एक थान कम था।

चन्दन—घर पर ही भूल आई होगी ? सुबह .खूब कुहरा पड़ रहा था, जानती हो ? कुहरे-अँधेरे में कुछ दिखा न होगा। समझी होगी कि थान रख लिया। यहाँ तो गठरी किसी ने खोली भी नहीं।

सुधा—(सोचकर) मुमकिन हो, मैंने ही भूल की हो। (ठहरकर) लेकिन, मैंने तो तुम्हारे हुज़ूर को वह थान दिखलाया था ?

लीला—(पुकारकर) चन्दन ?

चन्दन—(नेपथ्य से) हुज़ूर !

लीला—क्या कोई बाहर है ?

चन्दन—जी हाँ, वही खद्दर बेचनेवाली। कहती है कि एक थान कम है।

लीला—हाँ, जब वे बाहर जा रहे थे तब मैंने एक थान पसन्द किया था। वह क़ीमत लिये बिना ही चली गई।

चन्दन—मैं बुलाऊँ ?

लीला—हाँ बुलाओ। (सोचती है। सुधा का प्रवेश। वह हाथ जोड़कर नमस्ते करती है। बन्दे का उत्तर देकर) बहन, माफ करना। तुम तो बिना जतलाये ही चली गईं। मैं भीतर थी। मैंने एक खद्दर का थान ले लिया था। क़ीमत लिये बिना ही तुम चली गईं ?

सुधा—मैं समझी, गट्ठर वैसे का वैसा बँधा हुआ रखा है। उठाकर चली गई।

लीला—मेरी अँगूठी खो गई थी, उसे ही खोजने में लगी हुई थी। इसी से बाहर नहीं आ सकी।

सुधा—इसीलिए आपका नौकर मुझसे अँगूठी पहनने को कह रहा था ! [चन्दन को तीव्र दृष्टि से देखती है ।]

लीला—वह नासमझ है । आप चिन्ता न करें । अच्छा हाँ, क्या क़ीमत है आपके थान की ?

सुधा—मैं वह थान ज़रा देखूँ ?

[लीला वह थान दराज में से निकालकर दिखलाती है । सुधा उसे देखकर—]

सुधा—सात रुपये सवा नौ आने ।

लीला—(पर्स में से नोट निकालते हुए) यह लीजिए, दस रुपये का नोट । बाक़ी के दो रुपये पौने सात आने मुझे दे दीजिए ।

सुधा—(कृतज्ञता से) धन्यवाद, मेरे पास भी नोट ही है । रुपये नहीं हैं । अभी नोट भुनाकर दे देती हूँ ।

[नोट लेकर जाती है । चन्दन उसे घूरता है ।]

चन्दन—हुज़ूर, इसी ने ली है आपकी अँगूठी ।

लीला—बको मत, चन्दन । अच्छा देखो । (खद्दर का थान खोलते हुए) यह कैसा है चन्दन ?

चन्दन—(उल्लास से) बहुत अच्छा है हुज़ूर ! हुज़ूर अगर इसका सूट बनवायें, तो जवाहरलाल से बढ़कर दिखेंगे ।

लीला—(हँसकर) अच्छा. जवाहरलाल सूट पहनते हैं ?

चन्दन—हाँ हुज़ूर ! टैम्स में वो तसवीर निकली थी कि जवाहर-लाल हवाई जहाज़ के पास खड़े थे सूट पहन के ।

लीला—(हँसकर) पर तेरे हुज़ूर तो खद्दर पहनते ही नहीं ।

चन्दन—ज़रूर पहनेंगे, हुज़ूर ! जब आपने लिया है, तो वे ज़रूर पहनेंगे ।

लीला—देखो, (अँगूठी की याद कर) पर चन्दन, मेरी अँगूठी नहीं मिल रही है। तेरे हुज़ूर सुनेंगे तो नाराज़ होंगे।

चन्दन—(सोचते हुए) जब आप हाथ-मुँह धो रही थीं तब तो नहीं गिर गई ? हुज़ूर, आपको दिखी न हो। आज सुबह बड़ा कुहरा था, हुज़ूर।

लीला—(हँसकर) सब चीज़ के लिए तेरा कुहरा था। अच्छा देखूँ ?

[प्रस्थान]

(चन्दन थोड़ी देर तक खड़ा सोचता है। फिर खद्दर के थान को हाथ से छूते हुए) वाह, कैसा बढ़िया है। हुज़ूर जब पहनेंगे तो लपटन साहब लगेंगे।' (सोचकर) मेरे मुन्नू की माँ ने कभी ऐसा कपड़ा नहीं खरीदा ! (नवीन का प्रवेश। चन्दन सकपका जाता है। खद्दर को टेबिल पर देखकर नवीन विस्मय मिले क्रोध से घबड़ाये हुए स्वर में)

नवीन—क्यों रे यह······खद्दर का थान कहाँ से आया ? मैंने··· कौन यहाँ······लाया ? उसने······मैंने कह दिया था अभी ज़रूरत नहीं, फिर और वह तो गठरी बाँधकर चली गई थी······गई थी ? फिर मैंने······

चन्दन—(घबड़ाकर काँपते हुए) हुज़ूर, घर के हुज़ूर ने—हुज़ूर ने······

[सुधा का प्रवेश]

सुधा—यह लीजिए दो रुपये पौने सात आने। देर के लिए माफ़ कीजिए।

नवीन—(आश्चर्य से) यह—यह कैसे दो रुपये पौने सात

सुधा—आपने यह खद्दर का थान खरीदा था न ?

नवीन—मैंने……आँ मैंने……मैंने तो आपसे कह दिया था कि आप फिर आइये, आप फिर……

सुधा—हाँ, लेकिन आपकी श्रीमतीजी ने इसे खरीद ही लिया।

नवीन—मुझसे बिना पूछे ?

सुधा—यह आप जानें।

नवीन—अच्छा ?

सुधा—आपकी श्रीमतीजी ने दस रुपये का नोट दिया था। मेरे पास बाकी पैसे नहीं थे। मैंने कहा, अभी नोट भुनाकर लौटती हूँ। बाक़ी पैसे लौटाने में कुछ देर हुई हो तो क्षमा करें।

नवीन—खैर, क्षमा-वमा की ज़रूरत नहीं। पैसे भी उन्हीं को…… एँ……अच्छा, टेबल पर रख दीजिये।

सुधा—(टेबल पर पैसे रखते हुए) आपको यह कपड़ा ख़ूब जँचेगा। मैं आप ही के लिए तो लाई थी। और हाँ, एक मजेदार बात सुनिये। जब मैं लौटकर अपना गट्ठर ले जा रही थी, तो मुझे यह गट्ठर कुछ हलका मालूम हुआ। मैंने समझा, मैं एक थान आपके यहाँ ही भूली जा रही हूँ। मैं इस विषय में आपके नौकर से बात ही कर रही थी कि आपकी श्रीमतीजी ने बुलाकर उस थान के लिए दस रुपये का नोट दिया।

नवीन—(विह्वल होकर) अच्छा, क्या उन्होंने यह थान पसन्द……?

सुधा—हाँ, पसन्द ही किया होगा, जब मैं अपना गज़ लाने के लिए वापिस गई थी। इसी बीच में उन्होंने खद्दर की गठरी खोलकर शायद सब कपड़े देखे थे और यही थान पसन्द किया था।

नवीन—(सोचता है) हूँ।

सुधा—उसी समय उन बेचारी की अँगूठी खो गई थी। वे भीतर

अपनी अँगूठी खोज रही थीं और मैं बिना उनके मिले अपना गट्ठर लेकर बाहर चली आई। मुझे क्या पता कि मेरे सूने में ही मेरे सामान की बिक्री हो रही है। सचमुच ईश्वर बड़ा दयालु है।

नवीन—(सोचता है) हूँ।

सुधा—(प्रसन्नता और हर्षातिरेक से) और उनकी उदारता तो देखिए कि जब मैं बाहर चली आई, तो मुझे बुलवा-कर उन्होंने बिना एक पैसा कम किए मुझे सारी क़ीमत दे दी।

नवीन—(श्रान्त होकर) अच्छी बात है। मैं ज़रा थक गया हूँ। आराम चाहता हूँ। फिर कभी दर्शन दीजिये।

सुधा—अच्छी बात है, वन्दे मातरम्। (प्रस्थान)

[नवीन कुर्सी पर बेबसी से गिर पड़ता हुआ-सा बैठता है]

चन्दन—(विचलित होकर) हुज़ूर, क्या सिर में दर्द है ? बुलाऊँ उनको, हुज़ूर ?

नवीन—(सँभलकर) नहीं, रहने दो। यों ही ज़रा सिर में चक्कर-सा आ गया था।

चन्दन—(शीघ्रता से) तो हुज़ूर, मैं बुलाता हूँ उन्हें (चन्दन का हुज़ूर-हुज़ूर कहते हुए प्रस्थान)

(नवीन सोचता है) ओह······सम्मान की इतनी अधिक रक्षा ? इस ढंग से······! फेथफ़ुल वाइफ़······ स्वीट लीला······और मैं ?

[लीला का चन्दन के साथ प्रवेश]

चन्दन—(लीला से) देखिए हुज़ूर !

[लीला आकर एकदम से नवीन के सिर पर हाथ रखती है, वह घबड़ाई हुई है।]

लीला—(विह्वल होकर) क्यों, क्या हुआ ? क्या चक्कर आ गया ? चन्दन, जरा पानी लाना।

चन्दन—बहुत अच्छा हुजूर (दौड़ते हुए प्रस्थान)

लीला—क्यों, तबीयत आपकी कैसी है ?

नवीन—नहीं, यों ही कुछ भारीपन मालूम हो रहा था। तुम्हारी अँगूठी लेकर गया था नाप देने के लिए। तुम्हारे लिए वैसी ही दूसरी बनवाना चाहता था। इन्श्योरेन्स के कुछ रुपये आये थे।

लीला—(चिन्तित होकर) मुझे अँगूठी की जरूरत नहीं है। आपको चक्कर तो नहीं आ रहा इस समय ? (चन्दन पानी लेकर आता है) लीजिए पानी, मुँह धो डालिये।

नवीन—(स्वस्थ होकर) नहीं, अब अच्छा हूँ। यों ही कुछ······

लीला—तो कपड़े वग़ैरह उतार डालिये। कुछ हलकापन हो। कालर-टाई की वजह से तो और भी बेचैनी मालूम होती होगी। इसे उतार डालिये।

नवीन—(आवेश में) हाँ, इसे उतार डालता हूँ। (उतार कर चन्दन को देते हुए) चन्दन, जाओ, इस टाई को ठीक करने मदनलाल खन्ना के यहाँ दे आओ और कहो कि कल मेरे साथ यह भूल से चली आई थी।

लीला—(आश्चर्य से) अरे······?

चन्दन—हुजूर, अभी आप—

नवीन—(दृढ़ता से) अभी आप कुछ नहीं, इसी समय लेकर जाओ।

[चन्दन लेकर सिर झुकाए जाता है]

नवीन—हाँ, जरा पानी लाओ, मुँह की कालिमा धो लूँ।

[पानी के गिलास की ओर हाथ बढ़ाता है। लीला विस्मय से नवीन की ओर देखती रह जाती है।]

श्रीभगवतीचरण वर्मा

[श्रीभगवतीचरण वर्मा बा० देवीचरणजी के सुपुत्र हैं। आपके पिता वकालत करते थे। इनका जन्म संवत् १९६० विक्रमीय में हुआ। आपने हिन्दी-साहित्य में उपन्यास, कविता, कहानी आदि लिख थोड़े समय में ही अच्छी ख्याति प्राप्त कर ली है। आपके 'मधुकण', 'प्रेम-संगीत', 'भैंसा-गाड़ी', 'एक दिन' काव्य, 'चित्र-रेखा', 'तीन वर्ष' उपन्यास, 'इन्स्टालमेण्ट' कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। आपने एकांकी भी लिखे हैं। 'मधुकण' के अन्त में 'तारा' नामक एकांकी है। यह अन्तुकान्त छन्दों में लिखा गया है। इस ढंग की हिन्दी साहित्य में यह एक ही रचना है। 'सबसे बड़ा आदमी' और 'मैं—और केवल मैं' उनके दूसरे एकांकी हैं। 'सबसे बड़ा आदमी' उनकी सर्वोत्तम कृति Dramatic Suspense का उत्तम उदाहरण है। ऐसी रचनाओं में अँगरेज़ी साहित्य के प्रसिद्ध कहानी-लेखक Lucas और निबन्धकार A. G. Gardiner की व्यावहारिकता और आनन्द (Lightness of touch) दृष्टि-गोचर होते हैं। इस प्रकार की प्रणाली का सूत्रपात हिन्दी में पहले-पहल इन्होंने ही किया है। इस एकांकी में घटना विकसित होती है और चरम-सीमा तक पहुँचते ही खेल समाप्त हो जाता है। लेखक का ध्येय चरित्र-चित्रण न होकर घटना-वैचित्र्य है। इसमें परोक्ष से यथार्थता की ओर लेखक का ध्यान बँटा है। परोक्ष की अनुभूति सब कुछ न होकर वास्तविकता ही यथार्थ है। आदर्शवादियों की आँखों में धूल झोंककर तरकीब और बदमाशी से काम लेनेवाला रामेश्वर रफूचक्कर हो जाता है। सब देखते ही रह जाते हैं। वह अपना काम बना लेता है। 'दुनिया ऐसों ही की है' कहकर दिन-दहाड़े चोरी करनेवाला है रामेश्वर और वास्तव में वह बड़ा, सबसे बड़ा आदमी है। भाषा सरल और संगठित है।]

सबसे बड़ा आदमी

पात्र

गजाती—एक रेस्टोराँ का मालिक

राधे
शंकर } —दो दोस्त

शर्माजी—एक स्वदेश-भक्त

अहमद—एक कामरेड

रामेश्वर—एक उच्चका

मि० वर्मा—एक ऐडवोकेट

चिरौंजी—रेस्टोराँ का बैरा

❀ ❀ ❀ ❀

[गजाती का रेस्टोराँ ।]

[एक दूकान है । सामनेवाली दीवार को ढके हुए दो अलमारियाँ कोनों से मिली रखी हैं। एक अलमारी में चीनी के बर्तन, काँटे, छुरी आदि हैं, दूसरी में शक्कर, पावरोटी आदि सजे रक्खे हैं । दोनों अलमारियों के बीच में एक मेज़ रखी है, जिसमें शीशे के ढकने लगे हैं । मेज़ में केक, मिठाइयाँ आदि रखी हैं ।

कमरे की दाहिनी दीवार में तीन दरवाज़े हैं जिन पर पर्दे पड़े हैं । ये दरवाज़े सड़क पर खुलते हैं । कमरे की बायीं ओर बीचोबीच एक दरवाज़ा है ।

कमरे के बीचोबीच सामने की दीवार के सामने दो लम्बी-लम्बी मेज़ें पड़ी हैं—इन मेज़ों पर तख्तों की जगह सीमेण्ट के टुकड़े जड़े हैं । मेज़ों के इधर-उधर कुर्सियाँ पड़ी हैं ।

दाहिनी तरफ़ दरवाज़े से मिली हुई एक मेज़ है, जिसके सामने एक कुर्सी पड़ी है। उस कुर्सी से मिली हुई दाहिने-बायें एक आराम-कुर्सी पड़ी है। आराम-कुर्सी की पीठ मेज़ की तरफ़ है।

गजाती साहेब आरामकुर्सी पर लेटे हुए अख़बार पढ़ रहे हैं। क़द नाटा—शरीर दुबला-पतला। स्पोर्ट शर्ट और पतलून पहने हैं, पैरों से मोजा नदारद और चप्पल पहने हैं। दाढ़ी-मूँछ साफ़—उनकी उम्र २५ से ४५ तक अन्दाजी जा सकती है। चिरौंजी का प्रवेश बायीं ओर से]

चिरौंजी—बाबूजी! (गजाती चुप) बाबूजी!

गजाती—(अख़बार पर से नज़र उठाकर चिरौंजी की तरफ़ देखते हुए) क्यों बे!

चिरौंजी—चाय ले आई?

गजाती—हाँ! (अख़बार उठाता है।)

(चिरौंजी दरवाज़े तक जाता है)

गजाती—चिरौंजी! इधर आओ।

[चिरौंजी लौटता है]

गजाती—क्योंजी, आज तुमने एक रोटी में आठ स्लाइसें क्यों निकालीं, जबकि मैंने सोलह निकालने को कल कह दिया था?

चिरौंजी—बाबूजी!

गजाती—(उँगलियों पर हिसाब लगाते हुए) बाबूजी-बाबूजी क्या करता है—एक, दो, तीन, सात, आठ—हाँ अभी तक आठ रोटियाँ ज़्यादा ख़र्च हुईं। ये आठ आने तुम्हारी तनख़्वाह से काटे जायेंगे।

चिरौंजी—बाबूजी मर जायेंगे।

गजाती—अबे, बाबूजी नहीं मरेंगे—मरेगा तू।

चिरौंजी—अबकी बाबूजी माफ़ करें—आगे से सोलह नहीं, बत्तीस स्लाइस निकालब !

[बाहर से आवाज़ आती है ।]

एक आवाज़—तुम मेरी बात नहीं समझते ।

दूसरी आवाज़—अगर तुम ठीक बात कहो, तो सबके समझ में आ सकती है ।

गजाती—(चिरौंजी से) जा वे, काम कर ।

[चिरौंजी जाता है ।]

[दाहिनी ओर से शंकर और राधे का प्रवेश । शंकर पोलो शर्ट और हाफ पैंट पहने है । हृष्ट-पुष्ट ख़ूबसूरत युवक । राधे रेशम का कुर्ता और महीन धोती पहने है । आँखों पर चश्मा—एकहरे बदन का दुबला-सा युवक । राधे और शंकर गजाती की पासवाली कुर्सियों पर आमने-सामने बैठते हैं ।]

राधे—मिस्टर शंकर, आप शेली को समझे नहीं । नेपोलियन की क्या हस्ती जो शेली की समता कर सके ।

शंकर—हाँ जनाब, वह पिनपिनानेवाला शेली ! उसकी नेपोलियन से तुलना करना नेपोलियन का अपमान करना है ।

राधे—अच्छा, आप ही बतलाइये कि इतनी ऊँचाई, इतनी गहराई, इतनी पवित्रता, इतना विद्रोह और इतना सत्य जितना शेली की पंक्तियों में है कहाँ मिलेगा ? उसने जो संसार को सन्देश दिया है, वह नेपोलियन के बस की बात कहाँ थी । शेली ने हमें प्रेम का मार्ग दिखलाया, उसने बर्बरता और पशुता के उन सिद्धान्तों का खण्डन किया, जिनका नेपोलियन प्रवर्तक था ।

शंकर—देखोजी! राधे, शेली ने जो कुछ कहा वह सब पागलपन था। किस पवित्रता और किस सन्देश की बातें कर रहे हो ? इनका दुनिया में कोई अस्तित्व ही नहीं। नेपोलियन शक्ति का प्रतिनिधि था और शक्ति ही सत्य है, नित्य है। कल्पना के लोक में जो आदमी विचरता है, वह कायर है। इस वास्तविक जगत् से मुँह छिपाकर वह कल्पना का जगद् बनाता है। आदमी तो वह जो इस दुनिया को अपनी कल्पना की दुनिया में बदल सके। नेपोलियन में वह ताकत थी—वह व्यक्तित्व था।

राधे—नेपोलियन पशु था।

शंकर—और शेली अपाहिज था।

[गजाती उठते हैं, पास आकर खड़े होते हैं]

गजाती—किस बात पर बहस छिड़ी है ? (मेज के सिरे की कुर्सी पर बैठ जाते है) चा मँगवाऊँ ?

शंकर—दो प्याले चा।

गजाती—(ज़ोर से पुकारता है) तीन प्याले चा (राधे से) हाँ, साहेब, किस बात पर बहस छिड़ी है।

राधे—मिस्टर गजाती, मिस्टर शंकर नेपोलियन को शेली से बड़ा बताते हैं। शैतान की तारीफ़ कर रहे है, फरिश्ते की निन्दा करके।

शंकर—जी हाँ, गजाती साहेब ! ये राधे साहेब उस जनाने शेली की तारीफ़ कर रहे हैं, एक बौने की एक योद्धा से तुलना कर रहे हैं।

[चा आती है]

गजाती—(सर पर हाथ फेरते और कुछ सोचते हुए) मामला तो बड़ा टेढ़ा है !

राधे—मिस्टर गजाती, आपने आँन्द्रे-मोरोइस की 'एरियल' पढ़ी है ?

गजाती—ओह, वह एक महान् ग्रन्थ है और शेली महान् व्यक्ति था ।

शंकर—और गजाती साहेब, आपने एबटकी लाइफ़ आफ़ नेपोलियन पढ़ी है ?

गजाती—ओह, वह एक महान् ग्रन्थ और नेपोलियन एक महान् व्यक्ति था ।

[शर्माजी का प्रवेश । मोटे-से आदमी, खद्दर का कुर्त्ता-धोती, कांग्रेसशाही झोला कुर्सी की पीठ पर लटका देते हैं, टोपी मेज़ पर रख देते हैं, कुर्सी पर बैठ जाते हैं ।]

राधे—(चा पीता हुआ) मिस्टर गजाती, आपकी चा उतनी ही सुन्दर है, जितना शेली था ।

शंकर—मिस्टर गजाती, आपकी चा उतनी ही तकड़ी है, जितना नेपोलियन था ।

[शर्माजी सतर्क होते हैं, कनखियों से राधे और शंकर को देखते हैं, फिर गजाती को इशारे से बुलाते हैं । गजाती पास जाता है ।]

शर्माजी—एक प्याला चा !

[गजाती आवाज़ देता है, एक प्याला चा ! फिर लौटता है ।]

राधे—शंकर, मुझे दुःख है कि जीवन में तुम कवि की महत्ता नहीं समझते !

शंकर—जी हाँ, मैं बेवकूफ़ी से दूर रहना ही ठीक समझता हूँ ।

राधे—बेवकूफो, तुम शैतान के उपासक !

शंकर—देखो, राधे, जरा सोच-सँभलकर ! योद्धा का उपासक यदि कुछ क्षणों के लिए स्वयं योद्धा बन जाय तो कोई ताज्जुब की बात नहीं।

गजाती—(बैठता हुआ) मिस्टर शंकर ! साधारण बातचीत में इस तरह गरम हो जाना ठीक नहीं।

शर्माजी—(उस ओर मुखातिब होकर) भ्राताओ, वन्दे ! आपको इस प्रकार कलह करना शोभा नहीं देता !

[दोनों मुड़कर आश्चर्य से उस ओर देखते हैं।]

शर्माजी—क्या मैं यह पूछने का साहस कर सकता हूँ कि आप लोगों के विवाद का विषय क्या है ?

शंकर—यह झगड़ा हमारा परसनल (निजी) है—आपकी दस्तन्दाजी की कोई जरूरत नहीं।

शर्माजी—गांधी-गांधी ! कितना भयानक पतन हो गया हमारे युवकों का ! वे विशुद्ध मातृ-भाषा का प्रयोग तक नहीं कर सकते, शिष्ट होना तो दूर रहा !

राधे—मैं अपने अशिष्ट मित्र की ओर से माफी माँग लेता हूँ।

[मिस्टर वर्मा ऐडवोकेट का प्रवेश। सफ़ेद पतलून जो काफ़ी मैली हो चुकी है तथा काला कोट जो अब जवाब देने लगा है, पहने हैं। टाई अस्त-व्यस्त, कालर इतना ऊपर चढ़ गया है कि कमीज और कालर के बीच गरदन साफ़ दिखलाई देती है।]

मिस्टर वर्मा—(मेज़ के पास खड़े होते हैं, तीनों सज्जनों को ग़ौर से देखते हैं, ठण्डी साँस भरते हैं और शंकर की बगल में बैठ जाते हैं।) एक प्याला चा !

गजाती—(आवाज़ देता है) एक प्याला चा !

शंकर—राधे! तुमने मुझे अशिष्ट क्यों कहा? मुझसे माँफी माँगो।

गजाती—अरे जाने भी दीजिये!

शंकर—नहीं, इन्हें माफ़ी माँगनी ही पड़ेगी।

राधे—(शर्माजी की ओर इशारा करते हुए) पहले इनसे माफी मँगवाइये मिस्टर शंकर!

शंकर—(शर्माजी से) देखिये, आप कौन हैं जो हम लोगों की बातों में कूद पड़ें? आप माफ़ी माँगिये।

शर्माजी—मैं सत्याग्रही हूँ—देश का सेवक हूँ। मैंने कभी सरकार तक से माफ़ी नहीं माँगी और जेल चला गया। पिता से लड़कर घर छोड़ आया हूँ, पर उनका फिर मुँह नहीं देखा, और परिणाम यह हुआ कि भूखों मर रहा हूँ। सत्याग्रह करने के लिये पुलिस ने मुझे डण्डों से मारा, शराब की पिकेटिंग करने के समय शराबियों ने मुझे लातों से मारा, और कर-बन्दी आन्दोलन के समय जमींदारों ने मुझे जूतों से मारा पर मैंने कभी क्षमा-प्रार्थना नहीं की।

[शर्माजी कहते-कहते कुछ थकड़ जाते हैं]

मिस्टर वर्मा—(शंकर से) इनके ऊपर मानहानि का मुकदमा दायर कर दीजिये।

शर्माजी—गांधी-गांधी! इन्हीं वकीलों के कारण तो हम सब अधः-पतन की ओर बढ़ जा रहे हैं। वकील साहब! आपको मानहानि की परिभाषा तो विदित है?

[नौकर चा लाता है]

राधे—(मिस्टर वर्मा से) आप शायद एडवोकेट हैं?

मिस्टर वर्मा—मुझे ऐडवोकेट होने का सौभाग्य प्राप्त है।

[छाती पर हाथ रखते हैं और गर्दन झुकाते हैं]

राधे—आप अच्छे आ गये। हम दोनों में यह तय नहीं हो पा रहा था कि शेली बड़ा था या नेपोलियन !

शर्माजी—दोनों ही पतित थे। इस संसार में सबसे बड़ा है महात्मा गांधी।

मिस्टर वर्मा—महात्मा गांधी बड़े हैं, उन्होंने अपना जीवन वकील की हैसियत से आरम्भ किया था। और बिना वकालत पढ़े कोई आदमी बड़ा हो ही नहीं सकता। न शेली ने वकालत पढ़ी थी और न नेपोलियन ने !

[कामरेड अहमद का प्रवेश]

अहमद—हैलो गजाती—चा।

गजाती—(आवाज़ देता है—एक प्याला चा !)

[थोड़ी देर तक सब चुप रहते हैं—अहमद सब लोगों को ध्यान से देखता है]

शंकर—जी हाँ, आप वकील हैं। जरा आपका हुलिया तो देखिये !

[मिस्टर वर्मा अपना कालर और टाई ठीक करते हैं]

राधे—(शंकर से) देखिये, कृपा करके आप किसी शरीफ़ आदमी का अपमान मत कीजिये।

अहमद—(हँसता है) वकील और शराफ़त—मजेदार बात है। (शर्माजी से) कहिये जनाब, वकील और शराफ़त ! इतनी मज़ेदार बात कभी आपने सुनी ?

शर्माजी—अवश्य भ्राता, आप उचित कथन करते हैं। हमारे देश के एकमात्र नेता और विश्वास के एकमात्र महापुरुष महात्मा गांधी का आदेश है कि वकालत छोड़

देनी चाहिये। गांधी ! गांधी ! ये वकील कितने पतित होते हैं !

अहमद—गांधी ! वह 'अहिंसा-अहिंसा' पुकारनेवाला गांधी—गलत रास्ते पर चलनेवाला और दूसरों को चलानेवाला ? अरे वह जल्ती फकीर—वह महात्मा—क्या कहा, दुनिया का सिर्फ अकेला बड़ा आदमी ?

शंकर—.खूब कहा—.खूब ! तो जनाब, जरा आपको देखिये, आप कह रहे थे कि गांधी नेपोलियन से भी बड़ा था। शर्म नहीं आती !

अहमद—(शंकर से) देखोजी, मुझे जनाब-वनाब मत कहना वरना आदमी मैं बिगड़ैल हूँ। मुझे सिर्फ कामरेड कहो।

[रामेश्वरप्रसाद का प्रवेश। नाटे क़द के दुबले-से आदमी, शेरवानी और चूड़ीदार पैजामा। पैरों में चप्पल। बाल बड़े-बड़े और बिखरे हुए हैं। बैठ जाते हैं।]

शर्माजी—(कान में उँगली देते हुए) महाशयजी, मेरी एक प्रार्थना है कि आप लोग एक देवता का अपमान न करें, नहीं तो आप एक भयानक नरक के भागी होंगे।

अहमद—नरक ! हाः हाः हाः इस नरक को तो लेनिन ने बहुत पहले ही नेस्तनाबूद कर दिया है।

राधे—दूसरा हत्यारा !

अहमद—क्या कहा हत्यारा ? हाँ, अगर हत्यारा कहते हो तो मुझे कोई एतराज नहीं। लेकिन इतना तय है कि लेनिन सा बड़ा आदमी न कभी पैदा हुआ है और न कभी पैदा होगा।

[मेज़ पर हाथ पटकता है]

रामेश्वरप्रसाद—आप ठीक कहते हैं, लेनिन में बिखरी हुई शक्तियों का एक प्रबल संग्रह—उसका व्यक्तीकरण—उसकी उग्रता ये सब मिलेंगे। लेनिन—नियति के क्रम और विकास में उसका प्रमुख हाथ है।

शर्माजी—घोर पतन है भारत माता का! देश के कपूतो! तुम अपने देवता, अपने इष्टदेव महात्मा गांधी को नहीं पहचान रहे हो, धिक्कार है!

रामेश्वरप्रसाद—महात्मा गांधी देवता हैं, इसमें कोई भी शक नहीं। उनकी गणना अवतारों में की जा सकती है।

शंकर—ये दोनों नेपोलियन की बराबरी नहीं कर सकते।

रामेश्वरप्रसाद—नेपोलियन हीरो था हीरो! उसका नाम विश्व-इतिहास में अमर है। नेपोलियन अहा—वह तूफान की भाँति आया और पतझड़ की भाँति चला गया।

राधे—क्या नेपोलियन शेली से बड़ा था?

रामेश्वरप्रसाद—शेली! शेली फ़रिश्ता था फ़रिश्ता! अहाहा! शेली—उसने दुनिया को एक सन्देश दिया।

[नौकर चा का प्याला रामेश्वर के सामने रखता है।]

रामेश्वर—(चा पीते हुए) ये लोग दानव थे—दानव! मानव-समाज में दानव ही मान पा सकते हैं।

अहमद—(रामेश्वर से) आप शायद शायर हैं!

रामेश्वर—जी हाँ, मैं कलाकार हूँ! (चा पीता है)

शर्माजी—आपने कौन पुस्तकें लिखी हैं?

रामेश्वर—अभी नहीं लिखी हैं, लिखनेवाला हूँ। अभी तो लिखने के लिए मसाला ढूँढ़ रहा हूँ। (चा पीता है)

शंकर—वैसे आपका पेशा क्या है?

रामेश्वर—मेरा पेशा क्या है ? क्या आप यह पूछना चाहते हैं कि रोजी कमाने के लिए मैं क्या करता हूँ—(चा पीता है सर उठाकर हँसता है) हाः हाः हाः ! बड़ा मजेदार सवाल है। तो जनाब, इस सवाल का जवाब यह है कि मैं सब कुछ करता हूँ और कुछ भी नहीं करता। मैं घूमता हूँ; मौज करता हूँ और यही जिन्दगी है। मैं लोगों को देखता हूँ, उन्हें समझता हूँ—और उसके बाद ? उसके बाद की बात न कोई जानता है और न कोई जान सकता है।

[चाय खतम कर देता है।]

राधे—आप अजीब तरह के आदमी हैं ?

रामेश्वर—जी हाँ, मैं अजीब तरह का आदमी हूँ। लेकिन दुनिया में यह जरूरी है कि हरेक आदमी अजीब तरह का हो। दुनिया में यह जरूरी है कि अजीब तरह का आदमी बना जाय। और जो अजीब तरह का आदमी नहीं बन सकता, वह दुनिया में बढ़ भी नहीं सकता। समझे! (उठता है—चलकर अहमद के पीछे खड़ा होता है) आप जिन-जिन लोगों के नाम ले रहे थे, सब अजीब तरह के आदमी थे—थे न। (चलकर मिस्टर वर्मा के पास रुकता है) और आप लोग चूँकि अजीब तरह के आदमी नहीं हैं, इसी लिए इन लोगों की तारीफ करते हैं—इन पर लड़ने के लिए आमादा हो जाते हैं। लेकिन मैं एक बात जानता हूँ—बड़ा वह है जो दुनिया को देने के बजाय उससे वसूल कर सके। इन सब लोगों ने दुनिया से वसूल ही किया, उसे दिया कुछ भी नहीं। (शंकर के पास खड़ा होता है) लेकिन मैं समझता हूँ

कि वे सब-के-सब मर गये, एक गांधी को छोड़कर; और जो मर गया, वह समाप्त हो गया। बड़ा वह जो वसूल कर सके। रुपया-पैसा, दीन-ईमान सब कुछ आपसे छीन सके! और जो मर गया वह कुछ नहीं वसूल कर सकता। आज उसकी कोई हस्ती नहीं और जब उसकी कोई हस्ती नहीं, तो उसका नाम ही क्यों? (गजाती के सामने एक आना फेंकता है—दरवाज़े और मेज़ के बीच खड़ा होकर) और इसी से जनाब, मैं यह कह सकता हूँ कि आप सब ग़लती करते हैं। शेली, नेपोलियन, लेनिन, गान्धी—ये सबके नाम हैं—नाम। इन सबों से बड़ा—कहीं बड़ा मैं हूँ। अभी आप लोगों पर यह साबित हो जायगा—अच्छा दोस्तो, सलाम।

[जाता है।]

शंकर—मुझे तो मालूम होता है कि इसका दिमाग़ खराब हो गया है।

अहमद—(हँसते हुए) बहुरूपिया था।

मिस्टर वर्मा—मग़रूर लौंडा!

राधे—लेकिन बोलता ख़ूब था।

शर्माजी—वह हमारी दया का पात्र है!

शंकर—चलोजी राधे, अभी हमारा मामला तय नहीं हुआ।

[उठता है और राधे भी उठता है। दोनों जेब में हाथ डालते हैं और निकाल लेते हैं]

शंकर—मेरा पर्स गायब है!

राधे—मेरी तो जेब ही गायब है। (कुरते की जेब दिखाता है।)

मिस्टर वर्मा—(एक के बाद एक अपनी सब जेबें, देखते हैं) अरे,

एक हफ्ते में आज पाँच रुपये का नोट मिला था वह भी गायब है।

शर्माजी—अरे! मेरा झोला कहाँ गया? उसमें आज ही ५०) चन्दे में लाया था, वे पड़े थे।

अहमद—एँ, ये जेब से रुपये कहाँ गये?

(सब एक दूसरे का मुँह देखते हैं)

गजाती—(सामने से इकन्नी उठाकर Cash box में डालना चाहता है, लेकिन कैश-बक्स नदारद)

[पर्दा गिरता है]

"दि मैन इन दि बाउलर हैट"

एक अतिशः अद्भुत घटना

मूल-लेखक—ए० ए० मिलने (A. A. MILNE)

अनुवादक—प्रो० अमरनाथ गुप्त

पात्र

जोन	मेरी
हीरो	नायिका
दुष्ट मनुष्य	प्रतिनायक

[लेखक ने राबर्ट लुई स्टीवेनसन के समान तीन भिन्न-भिन्न साहित्य के क्षेत्रों में ख्याति प्राप्त की है। उसने अपने रूपों और निबन्धों से सर्वप्रथम सफलता प्राप्त की, जो 'पंच' में प्रकाशित हुआ करते थे, जिसका वह सहकारी सम्पादक था। उसकी प्रतिभा सर्वतोमुखी है। उसने नाटक भी लिखे। पिछले वर्षों में लेखक ने बच्चों के लिए कहानियाँ लिखीं और कविता भी। उसके एकांकी नाटकों में प्रतिभा है और जीवन का अद्भुत तथा मनोरंजक प्रतिबिम्ब। उसी के एक प्रसिद्ध एकांकी नाटक का यहाँ अनुवाद किया गया है। यह अक्षरशः (Literal) अनुवाद का उदाहरण है। अनुवादक ने मौलिक वातावरण लाने का भरसक प्रयत्न किया है।]

"फैल्ट-हैट-वाला"

[मेरी का बैठने का कमरा—बहुत ही मामूली, जोन और मेरी, साधारण मनुष्य, जोन चालीस के लगभग, मेरी तीस के निकट। भोजन के पश्चात् दोनों अग्नि के निकट बैठे हुए हैं, वह सदा की तरह अख़बार पढ़ रहा है, मेरी बुन रही है। कभी-कभी आपस में बातचीत कर लेते हैं।]

मेरी—क्या मैंने तुमसे कहा था कि मेरी ने दूसरा बालक जना है ?

जोन—(अख़बार में निमग्न) प्रिये, मुझे स्मरण है।

मेरी—वास्तव में, तुम्हें अच्छी तरह याद है ?

जोन—पिछले हफ़्ते।

मेरी—लेकिन वह तो कल ही हुआ है, कल ही की बात, मिस्टर पैरएट ने जब मैं फूल-गोभी खरीदने गई थी आज ही सुबह मुझसे कहा था।

जोन—भूल हुई। तो कदाचित् तुमने कहा था कि होनेवाला है।

मेरी—हाँ, बिल्कुल ऐसा ही हुआ होगा।

जोन—क्या यही होनेवाला था ?

मेरी—वज़न में पूरा सात पौण्ड।

जोन—परचूनिया है ना, तराजू तैयार होगी। लड़का या लड़की ?

मेरी—लड़का।

जोन—पहला ही लड़का है ना ?

मेरी—दूसरा।

जोन—(अपनी बात पर अड़कर) पहला वज़न में पूरा सात पौंड उतरा, न एक तोले ज्यादा, न एक रत्ती कम।

[दोनों फिर चुप हो गये। वह अख़बार पढ़ रहा है, वह बुन रही है।]

मेरी—अखबार की क्या खबर है आज ?

जोन—(अख़बार के पन्ने उलटते हुए) बरतन बनानेवालों ने हड़ताल की धमकी दी है।

मेरी—इससे क्या हुआ ? क्या यह कोई बड़ी बात है ?

जोन—मामला संगीन है। स्थिति बेढब हो गई है।

मेरी—मुझे भी बताओ न।

जोन—(ठीक न पढ़ सकने के कारण) बर-बर-तन बनानेवाले हड़ताल की धमकी दे रहे हैं। (ज़ोर से) वह बरतन का कार्य बन्द कर देने की घुड़की दे रहे हैं—बरतन बनाना छोड़ देने की।

मेरी—बरतनों की ? रसोई के बरतनों की ?

जोन—(इशारे से समझाकर) बरतन। वह बरतन बनाने का काम छोड़ देने की, बन्द करने की धमकी दे रहे हैं। और राम जाने—ऐसा ही लिखा है। (फिर अख़बार देखकर) मामला बेढब पड़ गया है। स्थिति गम्भीर है। कशमकश और गर्मागर्मी के दृश्य देखने में आये हैं।

मेरी—किस प्रकार के दृश्य ?

जोन—अरे, जब एक ओर बरतन न बनाने की धमकी दी जा रही है, दूसरी ओर उनके बनवाने की, गर्मागर्मी होना स्वाभाविक ही सा है। कम-से-कम संवाददाता ने तो देखा ही है अगर और किसी ने न सही।

मेरी—(कुछ देर बाद) अच्छा मज़ाक है कि हमारे यहाँ कभी कोई घटना नहीं घटती।

जोन—यह हमारे 'घटना' का अर्थ समझने पर निर्भर है। मैं पिछले शनीचर को ६५ नं० की कार में सैर को गया था। मैंने शायद इसका जिक्र किया था तुमसे।

मेरी—मेरा मतलब तो किसी सनसनी, दिल दहलानेवाली घटना से है। जैसे उपन्यास में अथवा रंगमंच पर।

जोन—प्रिये, वास्तविक जीवन में कहीं ऐसा भी होता है। मेरा मतलब है कि हमारे जीवन में ऐसी घटना न होगी।

मेरी—अगर ऐसा हो जाये तो क्या तुम पसन्द करोगे ?

[क्षण-भर वह कुछ नहीं कहता, अखबार अलग रख देता है और बैठा हुआ सोचता है। फिर वह मेरी की ओर मुखातिब होता है।]

जोन—[शर्मा कर] मैं भी कल्पना किया करता था ऐसी ही घटनाओं की वर्षों पहले, किसी सुन्दर स्त्री को दुष्टों के चंगुल से छुटाना और ऐसी ही बहुत-सी बातें और फिर उसके साथ किसी सूने टापू पर जहाज टकरा जाने के बाद······ (मेरी की ओर न देखता हुआ, अपने स्वर्ण-स्वप्नों में देखता है) और किसी ऊँची और बड़ी दीवार में एक छोटे सुन्दर दरवाज़े को खिसका कर एक सुहावने और हरी-भरी वाटिका में पहुँच जाना। नीले से भी नीले आसमान के नीचे। और वहाँ इन्तज़ार करना, करते ही रहना बहुत देर तक। किसी के लिए, कितना मनोहर, कितना दिलचस्प !

मेरी—मैं भी कल्पना किया करती थी। सपने देखती थी। अपने लिए आदमियों को भिड़ते हुए। (स्वतः) पागल कहीं की। कहाँ ऐसा भी देखने में आता है। यह तो सपने हैं, सिर्फ़ सपने, कुछ भी सचाई नहीं है इसमें।

जोन—(विचारों में मग्न) कदापि नहीं······

[इस समय कोई अजनबी कमरे में चला आता है। शिष्टाचार के विरुद्ध, वह फैल्ट हैट और ओवरकोट पहिने हुए है, और अधजली सिगार मुँह में है। वह तेजी से कमरे में आता

है और दर्शकों से पीठ फेरकर कुर्सी खींचकर बैठ जाता है।
जोन और मेरी विचार-संसार में मग्न, उसको नहीं देखते।]

मेरी—(आग की ओर देखती हुई) हम उन सब बातों के लिए पुराने हो गए हैं। हमारे बाल पक गए हैं।

जोन—मेरा भी यही ख़याल है।

मेरी—पुराने दिनों की याद में अगर एक दफ़ा—केवल एक बार—फिर ऐसा हो जाता।

जोन—जिससे हम एक दूसरे से कह सकते—एँ, ईश्वर यह क्या!

[रिवाल्वर की कड़ाके की आवाज़। तनिक भी सन्देह नहीं। जोन जिसने कभी रिवाल्वर नहीं चलाया था, वह भी ग़लती नहीं करता।]

मेरी—(डर से) जोन!

[दरवाजे के बाहर लड़ाई-झगड़े का-सा शब्द, दोनों उधर उत्सुकता से देखते हैं। फिर मृतवत् शान्ति। फैल्ट हैट वाला मनुष्य सिगार की थोड़ी-सी राख गलीचे पर छिड़क देता है—मेरी के गलीचे पर।]

जोन—देखो!

[धीरे से दरवाज़ा खुलना शुरू होता है। दरवाज़ा खुलने के साथ-साथ एक लम्बा और पतला हाथ दिखाई देता है। अभी तक फैल्ट हैट वाला मनुष्य चुपचाप बैठा है। तब दरवाज़ा बन्द कर दिया जाता है और दरवाज़े के सहारे हाथ में रिवाल्वर लिए, ज़ोर-ज़ोर से साँस लेते हुए हीरो का प्रवेश। जोन और मेरी एक दूसरे को आश्चर्य से देखते हैं।]

जोन—(भूमिका-स्वरूप खाँसकर) क्षमा कीजिए!

नायक—(उसकी ओर शीघ्रता से मुड़कर ओठों पर उँगली रखकर) चुप! चुप रहो!!

जोन—(दैन्यता से) मैं क्षमा चाहता हूँ।

[हीरो दरवाजे की ओर कान लगाकर सुनता है। फिर, देखने में कुछ क्षण के लिए सान्त्वना पाकर, वह उनकी ओर आता है।]

नायक—(जोन से) जल्दी करो, इसे लो (और जोन के हाथ में जबरदस्ती रिवाल्वर दे देता है।)

जोन—मु—मुझे क्या करना है ? इसका क्या मतलब ?

हीरो—(मेरी से) और तुम ! यह लो ! (अपनी 'हिप-पाकेट' से एक दूसरा रिवाल्वर निकालकर मेरी के हाथ में दे देता है।)

मेरी—धन्यवाद ! क्या हमें—?

हीरो—(गम्भीर मुद्रा से) चुप !

मेरी—क्षमा कीजिए।

हीरो—सुनो !

[सब सुनते हैं। जोन और मेरी ने इतनी उत्सुकता से पहिले कभी नहीं सुना। लेकिन व्यर्थ, उनको कुछ सुनाई नहीं पड़ता।]

जोन—(कान में) यह सब क्या बखेड़ा है ?

हीरो—कुछ नहीं !

जोन—हाँ ! यह (कुछ नहीं) तो मैंने भी सुना था।

हीरो—क्या तुम्हारे पास कुछ (बीच में ही बात बन्द कर देता है और सोचने लगता है।)

मेरी—कुछ क्या ?

हीरो—अब ज़रूरत नहीं ! वक्त चला गया।

जोन—(मेरी से) क्या हमारे यहाँ नहीं हैं ?

मेरी—शनीचर को आर्डर दिया था, लेकिन अभी तक नहीं आया।

हीरो—तुम यहीं ठहरो—यही सबसे अच्छा होगा। मैं क्षण-भर में ही लौट आऊँगा।

जोन—हमें क्या करना है ?

हीरो—सुने जाओ, केवल सुनते रहो और बस ।

जोन—(उत्सुकता से) अच्छा, अच्छा !

हीरो—मैं फ़ौरन ही वापिस आ जाऊँगा ।

[ज्यों ही वह खिड़की की ओर मुड़ा दरवाज़ा खुलता है और 'नायिका' कमरे में आ जाती है । वे खड़े हुए एक दूसरे को देखते रहते हैं ।]

नायिका—हैं ! (परन्तु सार-गर्भित शब्दों में)

हीरो—हैं ! (और भी अधिक सारपूर्ण भाव से)

नायिका—प्रिये ! प्राणधन !

हीरो—'माई डियर' 'माई ब्युटीफुल' !

[वे मिलते हैं और प्रेम से लिपट जाते हैं ।]

जोन—(मेरी से) शायद इसकी मँगनी हो गई है ।

मेरी—मेरा ख्याल है कि इनकी शादी हो चुकी है ।

जोन—वह पहले भी मिले हैं ।

हीरो—(एक क्षण-भर के लिए सिर उठाकर) मेरी डोलोरस, प्यारी डोलोरस ! (वह उसकी गर्दन काट लेता है [प्यार में])

जोन—(मेरी से) इसी तरह मिलने पर प्रणाम करते हैं और जाते समय विदा माँगते हैं ।

मेरी—(मस्ती से) कितना सुन्दर है ?

जोन—(अनसुना-सा) क्या यह बात है ? अगर मानो, वह कितनी भली लगती है ।

मेरी—(सन्दिग्ध) हाँ ! लेकिन कैसा भद्दा तरीक़ा है ।

जोन—(क्रोध-पूर्ण) मेरी, मेरी ! प्रिये मेरी ।

नायिका—(हीरो से) जल्दी करो, जल्दी ! फ़ौरन ही चले जाना चाहिए ।

हीरो—कभी नहीं ! और अब जब तुम्हें पा लिया।

नायिका—हाँ, हाँ ! बाबूजी (पिता के लिए) तुम्हारा पीछा कर रहे हैं और क्षण-भर में 'डबल सीटर' में यहाँ आ पहुँचेंगे।

हीरो—(पीला पड़ गया) तुम्हारे पिता ?

नायिका—मैं तुम्हें चेतावनी देने थोड़ा पहिले चल पड़ी थी। वह उसके लिये ही यहाँ आये हैं।

जोन—(मेरी से) 'उसके लिए' ! किसके लिए ?

हीरो—(काँपते हुए) वह ! उस ! उसके लिए !

नायिका—हाँ, निस्सन्देह !

जोन—(मेरी से) इन्कमटैक्स-कलक्टर।

हीरो—राजा के हीरे के लिए।

मेरी—कितना रहस्यपूर्ण और दिलचस्प।

नायिका—उन्हें विश्वास है कि वह तुम्हारे पास ही है। उसे तुमसे छीनने का उन्होंने बीड़ा उठाया है।

हीरो—कभी नहीं।

जोन—ख़ूब ! शाबाश ! (सिगरेट-केस पेश करते हुए) क्या आप—

[परन्तु हीरो उसे क्रोध से फेंक देता है]

नायिका—अगर वह उनके पास एक बार आ गया, न मालूम वह क्या कर उठाएँगे। समाज के तीन प्रमुख नेता नष्ट हो जायँगे। दूसरी लड़ाई मैक्सिको में छिड़ जाती है। हीरे का मूल्य गिर जायगा। वादा करो कि उसे कभी न दोगे।

हीरो—विश्वास करो।

नायिका—काफ़ी देर हो गई। अब मैं जाती हूँ। यहाँ आकर मैंने पिताजी से विश्वासघात किया, लेकिन मैं तुमसे प्रेम करती हूँ।

जोन—(मेरी से) सचमुच वह उसे चाहती है। मेरा विचार पहिले से ही ऐसा था।

मेरी—और बेचारी क्या करती ?

हीरो—मैं तुम्हारी पूजा करता हूँ।

जोन—वह भी उसकी पूजा करती है। ऐसा दिखाई पड़ता था।

मेरी—मेरा अपना विचार है कि यह तरीका अच्छा नहीं। मुझे तो पसन्द नहीं।

नायिका—नमस्ते ! (वे फिर लिपट जाते हैं।)

जोन—(खासी देर बाद) माफ़ कीजिए, श्रीमान् ! अगर आपको गाड़ी पकड़नी है—मेरा मतलब है कि अगर आपके होने वाले ससुर की 'टू-सीटर' ठीक-ठीक है, तो क्या आपको—क्या—

हीरो—(नायिका को छोड़कर) नमस्ते ! (वह उसको दरवाज़े तक छोड़ने के लिए जाता है, अन्तिम बार उसकी ओर प्रेम भरे नेत्रों से देखता है और उसको जाने देता है।)

मेरी—(स्वतः) एक तरीक़े से तो ठीक है। लेकिन, मैं तो इस 'फ़ैशन' को पसन्द नहीं करती। बिल्कुल भी नहीं।

[हीरो प्रेम के मधुर सपनों से लौट आता है। और अपना कार्य प्रारम्भ करता है।]

हीरो—(तेजी से जोन से कहा) तुम्हारे पास रिवाल्वर है ?

जोन—हाँ।

हीरो—तो यहीं ठहरो और सुनो कान लगाकर। एक से अधिक मनुष्यों की जान इस पर निर्भर है।

जोन—कितने अधिक आदमियों की ?

हीरो—यदि तुम जरा-सा भी शोरगुल सुनो—

जोन—(उत्सुकता से) अच्छा।

हीरो—चुप !

[वह खिड़की के निकट जाता है, एक क्षण भर वहाँ ठहर-कर कुछ सुनता रहता है और फिर भाग जाता है ''''मेरी और जोन ध्यान से कान लगाये सुन रहे हैं ।]

जोन—(एकदम घबरा कर) चुप ! वह क्या है ?

मेरी—प्रिय, क्या बात है, कौन था ?

जोन—मुझे नहीं मालूम ।

मेरी—जब तुम यह नहीं जानते कि क्या सुनने के लिए कान लगाए बैठे हो, किसी आवाज़ को सुनने के लिए इन्तज़ार करना मूर्खता है ।

जोन—चुप रहो । हमसे सुनने के लिए कहा था । हमें सुनना चाहिए । इसी पर एक से ज्यादा जानें निर्भर हैं ।

मेरी—ठीक, डियर ।

[वे सुनते रहते हैं । कुछ थककर मेरी रिवाल्वर की 'ट्यूब' या 'बैलर' को देखने लगी कि शायद उसमें कोई अनोखी बात है ।]

जोन—(उसकी ओर देखकर) ऐसा न करो । अपनी ओर ही भरी हुई पिस्तोल को तानना ख़तरनाक़ है । परमात्मा न करे अगर कुछ हो गया तो तुम्हें यह कहने का समय न मिलेगा कि तुम्हारा यह मतलब नहीं था ।

मेरी—अच्छी बात है, जोन—ज़रा देखना !

[दरवाज़ा फिर तेज़ी से खुलता है, और एक कुरूप व्यक्ति 'फ़र' का कोट पहिने हुए कमरे में घुस आता है । उसे देखते ही हम समझ लेते हैं कि यह दुष्टात्मा है । बिना शब्द किये जोन और मेरी की ओर अपनी पीठ किये, वह दीवार के सहारे-सहारे खिड़की के पास पहुँच जाता है ।]

जोन—(कान में) ससुर ।

मेरी—क्या हम—(वह रिवाल्वर को दिखाती है ।)

जोन—(शब्द से) मेरा—मेरा विचार है—कि—

[वह रुकता हुआ बन्दूक उठाता है ।]

मेरी—क्या पहिले तुम्हें न बोलना चाहिए ?

जोन—(वह चेतावनी-स्वरूप गला सफ़ा करता है ।)

[दुष्ट मनुष्य खिड़की की ओर सरकता ही जा रहा है ।]

जनाब आप !

मेरी—(नम्रता से) क्या आपको कुछ चाहिये—क्या कुछ ?

[दुष्ट खिड़की के निकट पहुँच जाता है]

जोन—ज़रा सुनिये, जनाब !

[दुष्ट खिड़की खोलता है और परदों के बीच में से बाहर निकल जाता है ।]

मेरी—हैं ! वह तो भाग गया ।

जोन—यह बहुत बुरा चलन है ।

मेरी—क्या तुम्हारा विचार है कि वह फिर वापिस आयेगा ?

जोन—(निश्चय रूप से) मैं उसे कुत्ते की तरह गोली मार दूँगा, अगर वह वापिस लौटा । (सब विरोध को हटाते हुए) कुत्ते की मौत मेरे हाथ से वह मरेगा ।

मेरी—हाँ, यही सबसे उत्तम है ।

जोन—देखो, वह फिर आ रहा है ।

[ज्यों ही दरवाज़ा खुलता है वह अपना रिवाल्वर उठाता है । होशियारी से फिर दुष्ट आता है, और दरवाज़े की ओर खिसकता है ।]

मेरी—(कान में) गोली चलाओ ।

जोन—(हक्का-बक्का-सा) अरे ! यह तो वही आदमी जान पड़ता है ।

मेरी—हाँ, हाँ !

जोन—मेरा मतलब है—यह उचित न होगा यदि—(चेतावनी-स्वरूप खाँसता है) माफ़ कीजियेगा, जनाब !

[दुष्ट फिर खिड़की के निकट पहुँच जाता है ।]

मेरी—जल्दी करो । उसके जाने से पहले ही ।

जोन—(काँपते हुए रिवाल्वर उठाता है) जनाब, मुझे कुछ कहना चाहिये । (मेरी से) सुनो, मेरा विचार है कि यह कोई और है ।

[दुष्ट फिर खिड़की से अदृश्य हो जाता है ।]

मेरी—(दुःख से) अरे वह तो चला गया ।

जोन—(इरादा करके) यह कोई दूसरा था । उसके मूँछें नहीं थीं ।

मेरी—उसके मूँछें थीं जोन । यह वही आदमी था, निस्सन्देह वही था ।

जोन—अरे, अगर मुझे यह ज़रा भी मालूम होता, अगर मुझे इसका यक़ीन होता तो मैं उसे कुत्ते की मौत मार देता गोली से ।

(नेपथ्य में)—बचाओ, बचाओ; दौड़ो, दौड़ो ।

मेरी—जोन, सुनो ।

जोन—मैं सुन रहा हूँ ।

(नेपथ्य में) आओ ।

मेरी—क्या हमें कुछ करना न चाहिए ?

जोन—हम 'कुछ' कर रहे हैं । हम सुन रहे हैं । उसने हमें ऐसा करने को तो कहा ही था ।

(नेपथ्य में) बचाओ !

जोन—(सुनता हुआ) यह दूसरा मनुष्य है, जो पहले आया था ।

मेरी—देखने में सुन्दर । जोन, हमें 'कुछ' करना चाहिए ।

[जो]न—अगर उसने फिर आवाज़ दी मैं करूँगा—अवश्य—कुछ

करूँगा। मैं कुछ कार्य-रूप में परिणत करूँगा। चाहे मुझे किसी को मारना ही पड़े। लेकिन मैं —

(नेपथ्य में) जल्दी, जल्दी।

मेरी—देखो वहाँ!

जोन—अरे, क्या यह उसी की आवाज थी?

मेरी—(दरवाज़े की ओर जाकर) हाँ, उसी की ही थी। ऐसा मालूम हुआ कि पासवाले कमरे से ही आई हो। आओ देखें।

जोन—ज़रा ठहरो, (वह पीछे फिर कर देखता है) हमें शान्त रहना चाहिए। जल्दी न करनी चाहिए। थोड़ा इसे पकड़ना। (उसे अपना रिवाल्वर दे देता है।)

मेरी—(आश्चर्य से) क्यों, क्या?

जोन—मैं अपना कोट उतार लूँगा। (वह अपना कोट धीरे से उतार लेता है) अब मैं देख लूँगा। मुझे जल्दी गुस्सा नहीं आता, लेकिन जब एक बार—

(नेपथ्य में)—बचाओ! जल्दी।

जोन—(फिर विश्वसनीय टोन में) अच्छा! मेरी, अच्छा! (बहुत धीरे-धीरे अपनी बाँहें ऊपर चढ़ाता है) अपने घर के अन्दर इस प्रकार की घटना होते बहुत देर तक नहीं देख सकता। मैं ऐसा न होने दूँगा। (संदिग्ध) मेरा ख्याल है मुझे अपनी जाकेट उतारने की जरूरत नहीं मेरी! क्या तुम सहमत हो?

मेरी—(धैर्य खोकर) नहीं, नहीं प्रिय, कभी नहीं। तुम इसमें बड़े ही भले लगते हो।

जोन—(ज़ोर से) तो मुझे जरा तुम वह रिवाल्वर तो दो। (वह देती है) मैं हाथ उठाने के लिये कहूँगा—बहुत ज़ोर से—हैण्ड्स अप् इस प्रकार—

और यदि वह अपने हाथों को ऊपर न उठायेगा, एकबारगी और ज़ोर से पुकारूँगा। मैं उसे दिखला दूँगा कि मेरे साथ खिलवाड़ नहीं किया जा सकता है और ऐसा करने का क्या नतीजा होता है। प्रिये! क्या तुम तैयार हो?

मेरी—(चाव से) हाँ!

जोन—अच्छा तो—(लेकिन तुरन्त ही रोशनी गुल हो जाती है।)

मेरी—ओफ़्!

जोन—(चिड़चिड़ेपन से) तुमने ऐसा क्यों किया जी!

मेरी—प्रिय! मैंने थोड़े ही किया है।

जोन—तब फिर किसने किया?

मेरी—मुझे मालूम नहीं। वे अभी-अभी गये हैं।

जोन—तो कल, मैं कम्पनी को लिखूँगा और रिपोर्ट करूँगा। कम्पनी को रोशनी के बारे में लिख भेजूँगा। और मकान-मालिक से भी लोगों के मकान में आने-जाने और चीख। इन सबके बारे में।

मेरी—(भयभीत होकर) ओफ़्!

जोन—चुप रहो। क्या है?

मेरी—मैं अपने बहुत पास कोई चीज़ अनुभव करती हूँ।

जोन—मैं ही तो हूँ।

मेरी—तुम नहीं। कोई और। ओफ़्! उसने मुझे छू लिया।

जोन—(अंधकार से) वास्तव में जनाब, मुझे कहना पड़ेगा कि—

मेरी—सुनो! मुझे अपने चारों ओर साँस लेने की आवाज़ सुनाई पड़ती है।

जोन—माफ़ कीजियेगा जनाब। क्या कृपया आप मेरी स्त्री के पास साँस लेना बन्द कर देंगे?

मेरी—वहाँ। मुझे कुछ भी सुनाई नहीं पड़ता।

जोन—(आत्मतुष्टि के भाव से) देखा प्रिये। देखा, 'शक्ति' क्या नहीं कर सकती। मैं घर में ऐसी हरकत होते कभी नहीं देख सकता था।

[रोशनी का प्रकाश। हीरो को इस प्रकार पकड़ रक्खा है कि उसकी आँख ही आँख दिखाई पड़ती हैं। वह कुर्सी से बाँध दिया गया है।]

मेरी—(पति के पास सिमटकर) ओफ़ जोन!

जोन—(आकस्मिक अव्यावहारिक बहादुरी से) हाथ उठाओ। (वह रिवाल्वर के घोड़े को सामने करता है।)

मेरी—मूर्खता न करो। वह किस प्रकार छु.........

जोन—अच्छा, मैं तो केवल अभ्यास कर रहा था। (रिवाल्वर की धूलि को मुँह से उड़ाता है, और रोशनी के सामने करता है) हाँ, कितना हल्का है। मुझे विश्वास है कि उससे मैं कुछ काम अवश्य लूँगा।

मेरी—बेचारा कौन है यह?

[हीरो अपने नेत्रों और सिर को हिलाकर बोलने का प्रयास करता है।]

जोन—उसे कुछ दरकार है। शायद आज के अखबार।

[उसकी ओर जाने का-सा भाव प्रदर्शित करता है।]

मेरी—सुनो! (हीरो अपने पैरों को पीटने का शब्द करने लगता है।)

जोन—वह कुछ चेतावनी कर रहा है। कुछ बताने की चेष्टा कर रहा है।

मेरी—बिन्दु और डैश!

जोन—यही तो, मोरस कोड है। मेरा कोप कहाँ है? (वह तुरन्त ही कोप को ले आता है और उसके पृष्ठ पलटने लगता है।)

मेरी—जल्दी प्रिय!

जोन—(पढ़ते हुए) लो मिल गया। मोर्स का अर्थ है, (१) सामुद्रिक घोड़ा (हीरो की ओर दृष्टिपात कर) नहीं, यह ग़लत है। यह उससे अच्छा है। (२) मोर्स का अर्थ है टेलिग्राफ़ पर काम करनेवालों का कोड। जैसे वह भेजता है एक सुन्दर मोर्स अथवा कोड।

मेरी—तो फिर उसका क्या अर्थ है ?

जोन—कुछ नहीं। केवल इतना ही है। हम 'मोर्सल' की तरफ़ आते हैं—उसका अर्थ है रोटी का टुकड़ा। पूरा भोजन अथवा।

मेरी—(आवेश में) मुँह भर। उसका मतलब यही है। वह मुँह में ठूँसे हुए कपड़े को निकलवाना चाहता है। (उसके पास जाती है।)

जोन—तुम्हारी सूझ बड़ी ही तेज़ है। मुझे तो कभी उसका विचार भी न होता।

मेरी—(कपड़ा निकालकर) लो यह तो वही सुन्दर मनुष्य है जो पहलेपहल यहाँ आया था।

जोन—हाँ। वह कह गया था कि वापिस आऊँगा।

[इससे पहिले कि हीरो उनको धन्यवाद दे—यदि ऐसा करने की उसकी इच्छा होती—दुष्ट मनुष्य के साथ प्रतिनायक का प्रवेश। जोन और मेरी स्वभावतः पीछे हट जाते हैं।]

प्रतिनायक—(कटाक्ष से) नमस्ते !

जोन—(नम्रता से) जनाब का क्या मतलब है ?

[प्रतिनायक जोन की ओर क्रूर दृष्टि से देखता है]

(घबराकर मेरी से) प्रिये ! उनसे बात करो। बात करती है।

मेरी—(डरकर बात करती है) नमस्ते।

प्रतिनायक—तुम यहाँ शैतान के नाम पर क्या कर रहे थे ?

जोन—(मेरी से) हम यहाँ क्या कर रहे थे ?

मेरी—(बहादुरी से) यह हमारा मकान है।

प्रतिनायक—फिर बैठो। (जोन नम्रता से बैठ जाता है।) क्या यह तुम्हारी स्त्री है ?

जोन—(परिचय देकर) जी हाँ, ये—ये—मेरी स्त्री।

प्रतिनायक—उनसे भी बैठने को कहो।

जोन—(मेरी से) वह तुम्हें भी बैठने को कहते हैं। (वह बैठ जाती है।)

प्रतिनायक—अब ठीक है। (दुष्ट मनुष्य से) उनकी बन्दूक छीन लो।

दुष्ट मनुष्य—(बन्दूक लेकर) क्या तुम उन्हें बँधवाना, उनका मुँह ढकवा देना आदि क्या चाहते हो ?

प्रतिनायक—नहीं ! वे इस योग्य नहीं।

जोन—(नम्रता-पूर्वक) धन्यवाद !

प्रतिनायक—अब कार्रवाही शुरू करो। (हीरो से) राजा का हीरा कहाँ है ?

हीरो—(दृढ़ता से) मैं नहीं बताऊँगा।

प्रतिनायक—क्या नहीं बताओगे ?

हीरो—नहीं।

प्रतिनायक—यह बुरा है, (सोचकर) क्या बिल्कुल मना करते हो ?

हीरो—हाँ, बिल्कुल ही मना।

प्रतिनायक—अच्छा। (दुष्ट मनुष्य से) क़ैदी को तकलीफ़ पहुँचाओ।

दुष्ट मनुष्य—(प्रसन्नता से) ठीक है, स्वीकार। (अपने कोट के सामने टटोलकर, मेरी से कहता है) क्या मुझे आप एक पिन उधार देंगी ?

मेरी—मेरे पास न—(ढूँढ़कर) लो मिल गया।

दुष्ट मनुष्य—धन्यवाद ! (वह क़ैदी की ओर क्रूर भाव-भंगी से जाता है।)

प्रतिनायक—ज़रा ठहरो ! (हीरो से) मामला संगीन होने से पहले मैं तुम्हें एक मौक़ा और देता हूँ। राजा का हीरा कहाँ है ?

दुष्ट मनुष्य—स्वामी, क्या तुम्हारा मतलब राजा के हीरे से है ? है ना।

प्रतिनायक—हाँ, यही।

जोन—(सहायतार्थ) तुमने कहा था कि राजा का हीरा। परन्तु वह हिरोइन कहाँ है ?

प्रतिनायक—खामोश ! (हीरो से) मैं फिर पूछता हूँ। हीरा कहाँ है ? आखिर वह कहाँ है ?

हीरो—मैं नहीं बताऊँगा।

प्रतिनायक—स्मिथरस, अपना काम आरम्भ करो।

दुष्ट मनुष्य—तुमने यही तो माँगा था।

[उसके हाथ में पिन चुभो कर]

हीरो—आ—आ !

मेरी—बेचारा !

प्रतिनायक—खामोश ! कहाँ है—(हीरो सिर हिलाता है) मिस्टर स्मिथरस, फिर चुभाओ।

हीरो—नहीं, नहीं, मैं बताता हूँ। दया करो।

जोन—(क्रोध-पूर्ण) ओफ़ ! मैं बतलाता हूँ।

दुष्ट मनुष्य—क्या मैं एक बार और आज़माऊँ ?

हीरो—नहीं।

जोन—(मेरी से) मेरा ख्याल है उसे थोड़ी देर और ठहरना चाहिये था।

प्रतिनायक—बहुत अच्छा, तो फिर बताओ राजा का हीरा कहाँ है ?

हीरो—वाटरलू स्टेशन के क्लोक-रूम में ! एक हैट-बाक्स में !

प्रतिनायक—(सन्देह से) वाटरलू स्टेशन के क्लोक-रूम में ! क्या कहा ?

हीरो—हैट-बाक्स में। हाँ वहीं। अब मुझे छोड़ दो।

प्रतिनायक—मुझे कैसे यक़ीन हो कि वहाँ है।

हीरो—मैं क्या जानूँ ?

प्रतिनायक—अच्छा (अपने हाथ उसकी ओर बढ़ाकर) अच्छा, तो मुझे उसका टिकट दो।

हीरो—मेरे पास नहीं है।

दुष्ट मनुष्य—तो फिर तुम्हारा यक़ीन क्या ?

हीरो—नहीं, मेरे पास वाक़य नहीं है।

जोन—मेरे विचार से यदि टिकट उसके पास होता तो वह कभी न कहता कि उसके पास नहीं है। तुम्हारा क्या ख्याल है, मेरी ?

मेरी—नहीं ! मुझे पूरा यक़ीन है वह फिर भी ऐसा न कहता।

प्रतिनायक—चुप रहो, (हीरो से) टिकट कहाँ है ?

हीरो—पैडिङ्गटन स्टेशन के क्लोक-रूम में। हैट-बाक्स में।

प्रतिनायक—उसी हैट-बाक्स में है ना ?

हीरो—नहीं। दूसरा वाटरलू स्टेशन पर था।

प्रतिनायक—तब पैडिङ्गटन स्टेशन पर रखे हुए हैट-बाक्स में टिकट कहाँ है ?

हीरो—चेयरिङ्ग क्रास के क्लोक-रूम में। एक हैट-बाक्स में।

प्रतिनायक—(चिड़चिड़ाकर) तो फिर तुम्हारे पास आखिर कितने हैट-बाक्स हैं ?

हीरो—बहुत सारे।

प्रतिनायक—ओ ! अब सीधे मतलब पर आना चाहिए। तुमने कहा कि राजा का हीरा पैकिङ्गटन स्टेशन के क्लोकरूम में रक्खे हुए हैट-बाक्स में है।

हीरो—वाट्रलू स्टेशन के।

प्रतिनायक—वाट्रलू ! और उस हैट-बाक्स का टिकट युस्टन स्टेशन के क्लोक-रूम में रक्खे हुए हैट-बाक्स में है ?

हीरो—पैकिङ्गटन।

प्रतिनायक—पैकिङ्गटन। और उस हैट-बाक्स का टिकट रक्खा हुआ है किङ्गस क्रास के क्लोक-रूम के हैट-बाक्स में।

दुष्ट मनुष्य—युस्टन के।

जोन—(अनुभव-प्राप्ति के हेतु) सेण्टपैन क्रास पर।

मेरी—अर्ल कोर्ट ?

प्रतिनायक—(क्रोध से) चुप रहो। इस टिकट का टिकट पैकिङ्गटन के हैट-बाक्स में उस हीरे के लिए जो हैट-बाक्स में रक्खा हुआ है वाट्र—पर।

हीरो—वाट्रलू।

प्रतिनायक—धन्यवाद ! यह टिकट है एक हैट-बाक्स में—

जोन—(दृढ़ता-पूर्वक) सैंट पैन क्रास।

मेरी—(दृढ़ता-पूर्वक) अर्लस कोर्ट।

प्रतिनायक—चुप ! हैट-बाक्स में। किस स्टेशन के ?

हीरो—चेयरिङ्ग क्रास पर।

प्रतिनायक—ठीक, बिल्कुल ठीक (सफलता-पूर्वक) तो मुझे टिकट दे दो।

हीरो—कौन-सा ?

प्रतिनायक—(अप्रसन्नता का भाव दिखाकर) वही जिसके विषय में हम बात कर रहे हैं।

जोन—(सहायतार्थ) सैंट पैन्न क्रॉस वाला।

मेरी—अर्ल कोर्ट वाला।

प्रतिनायक—(गुस्से से) क्या तुम खामोश नहीं होगे ? (हीरो से) सुनो (धीरे से और ज़ोर लगाकर एक ही भावना की ओर ध्यानावस्थित होने का भाव दिखाकर) मुझे चेयरिङ्ग क्रॉस के हैट-बाक्स का टिकट चाहिए जिसमें एक टिकट···के हैट-बाक्स का रक्खा हुआ है।

[जोन के होंठ मेरी को सैंट पैन क्रॉस की सूचना देते हैं। और मेरी के अर्ल कोर्ट को। उनकी ओर देखकर प्रतिनायक दृढ़ता से कहता चलता है।]

पैकिङ्गटन स्टेशन पर। और वहाँ वाटरलू वाले हैट-बाक्स का टिकट है जिसमें राजा का हीरा रक्खा हुआ है।

हीरो—मैं नहीं समझा। कृपया फिर दुहराइएगा।

प्रतिनायक—मैं फिर नहीं कहूँगा, (तेज़ी से) मुझे टिकट दे दो।

हीरो—(शोक की मुद्रा से) मेरे पास नहीं है।

प्रतिनायक—(आश्चर्यान्वित कानाफूसी से) तुम्हारे पास नहीं है ?

हीरो—नहीं।

प्रतिनायक—(कई बार बोलने की व्यर्थ चेष्टा करके) कहाँ है ?

हीरो—विक्टोरिया स्टेशन के क्लॉक-रूम में।

प्रतिनायक—(अपने होठों को मिलाकर, धीरे से) हैट-बाक्स में नहीं ?

हीरो—हाँ।

प्रतिनायक—(निराश होकर) और उसका टिकट ?

हीरो—युस्टन के क्लोक-रूम में।

प्रतिनायक—(बिल्कुल हताश होकर) हैट-बाक्स में ?

हीरो—हाँ।

प्रतिनायक—कितनी देर तक यह और चलता रहेगा।

हीरो—(प्रसन्नता से) बहुत देर तक।

प्रतिनायक—(दुष्ट मनुष्य से) लन्दन के कितने स्टेशन हैं ?

जोन—एक तो सैंटपैनक्रॉस।

मेरी—और दूसरा अर्लकोट।

दुष्ट मनुष्य—क़रीब-क़रीब बीस।

प्रतिनायक—बीस ! (हीरो से) जब सब स्टेशन पर हो आए तो क्या करना चाहिए ?

दुष्ट मनुष्य—श्रीमान् ! आपको आज्ञा माननी ही पड़ेगी। (उलाहना देते हुए) थोड़ा ही, (उँगलियों से जतलाकर) सिर्फ़ इतना।

जोन—(मेरी से) मेरा ख़याल है इतने से कुछ बने-बिगड़ेगा नहीं। तुम्हारा क्या.........

प्रतिनायक—(विजयी होकर) मुझे मिल गया।

[वह थोड़ा शान से उठता है। प्रश्न हल हो गया। सब उसकी ओर देखते हैं।]

जोन—क्या ?

प्रतिनायक—(प्रभाव से हीरो से) कहीं पर—तर्कानुसार, कहीं पर एक अन्तिम हैट-बाक्स है।

जोन—हाँ, बात तो सच है।

हीरो—हाँ।

दुष्ट मनुष्य—(सिर खुजाते हुए) मैं सहमत नहीं।

हीरो—तो फिर उन सबका चक्कर लगाएँ।

प्रतिनायक—(विचार-पूर्वक) और चक्कर लगाता ही रहे ?

हीरो—हाँ। इसी प्रकार।

प्रतिनायक—(सिर पर हाथ रखकर) यह भयानक है। मैं फिर विचार करूँगा। उसको फिर तक़लीफ पहुँचाओ। इतने में मैं सोचूँ।

दुष्ट मनुष्य—(प्रसन्नता से) अब ठीक है। (वह अपने शिकार की ओर बढ़ता है।)

हीरो—(बेचैनी से) ज़रा इधर देखो।

जोन—(मेरी से) तो यह बिल्कुल भी ठीक नहीं।

मेरी—(अचानक) मेरा पिन मुझे लौटा दो।

प्रतिनायक—तब, वह हैट-बाक्स आखिर कहाँ है ?

जोन—(प्रसन्नता से) सैंटपैन क्रॉस।

मेरी—अर्लकोर्ट।

प्रतिनायक—चुप रहो ! (हीरो से) हैट-बाक्स आखिर कहाँ रक्खा है ?

हीरो—चेयरिङ्ग क्रॉस के हैट-रूम में।

प्रतिनायक—ठीक। तो फिर उसका टिकट मुझे दे दो। [अपना हाथ बढ़ाता है।)

दुष्ट—(डराते हुए) निकालो। कहाँ है टिकट ?

हीरो—(शोक से सिर हिलाते हुए) मुझे नहीं मालूम।

प्रतिनायक—(भावोद्रेक से कदाचित् चुप) क्या तुम्हारा मतलब है वह खो गया है ?

हीरो—(कान में, सिर झुकाकर) मेरे से खो गया।

[ज़ोर से चिल्लाकर प्रतिनायक दुष्ट मनुष्य की गोद में गिर जाता है । स्वभावतः मेरी और जोन एक दूसरे से लिपट जाते हैं, सुबकियाँ भर कहते हुए कि उससे टिकट खो गया । नायिका का प्रवेश कहते हुए 'प्रिय, तुमने खो दिया !' और वह हीरो के गले में बाँह डाल देती है । हैटवाला मनुष्य ही स्थिर रहता है । धीरे से वह भी अपने मुख से सिगार हटाता है और कहता है ।]

हैटवाला—हाँ·········सब ठीक है·········थोड़ी ही कमी बाक़ी है·········कल फिर ग्यारह बजे कार्य शुरू होगा ········ दूसरा अंक·········

[और इस प्रकार रिहर्सल चलता रहता है]

जान ड्रिङ्कवाटर (John Drink Water)

[मि० जान ड्रिङ्कवाटर अँग्रेज़ी साहित्य के लब्धप्रतिष्ठ कवि और नाटककार थे। उन्होंने युवावस्था में ही आश्चर्य-जनक सफलता प्राप्त कर ली थी। प्रत्येक मनुष्य उनके 'अब्राहम लिङ्कन', 'ओलिवर क्रामवल', और 'राबर्ट ई० ली' नामक नाटकों से भली भाँति परिचित हैं। Birmingham Repertory theatre की स्थापना में उनका विशेष हाथ था। उन्होंने अँग्रेजी नाटक-साहित्य का ऐतिहासिक नाटक आधुनिक प्रणाली में लिखकर विशेष उपकार किया। यद्यपि उनके 'मेरी स्टुयर्ट' नामक नाटक को हम पूर्ण रूप से ऐतिहासिक की श्रेणी में नहीं रख सकते।

उनके ही अतुकान्त छन्द में लिखे गए "X = O : A Night of the Trojan War", का यहाँ एक स्वच्छन्द अनुवाद दिया गया है। अनुवाद नहीं वरन् यह तो उसके सिर्फ़ कथानक पर आधारित लेखक की सफल रचना है। हिन्दी-साहित्य में adaptation की प्रणाली का यह द्योतक है। इसके पढ़ने में मौलिक रचना का-सा मज़ा आता है। अनुवादक अथवा adapter को ड्रिङ्कवाटर के नाटक से प्रेरणा अवश्य मिली है। वरन् कथानक के साथ-साथ नामकरण आदि सभी कुछ भारतीय है। अतुकान्त के स्थान पर गद्य का प्रयोग है। इसके पात्र बलवान् और आदर्शवादी हैं। पर्दा गिरने से पूर्व लड़ाई की अनावश्यकता सभी स्वीकार करते हैं। भाग्य की वक्र कुटिल भृकुटि का इसमें समावेश है। पाठकों का ध्यान और रुचि पढ़ते समय लड़नेवाली किसी एक पार्टी का अवश्य हो जाता है। नाटक का चौथा दृश्य नाट्य तत्त्वों से सन्निहित है। लेखक ने ब्यौरेवार विस्तृत वर्णन न कर केवल संक्षेप में ही सूचना दी है। adaptation सफल और मनोरंजक बन पड़ा है।]

कलिंग युद्ध की एक रात

[लेखक—श्रीयुत दुर्गादास भास्कर, एम० ए०, एल-एल० बी०]

पहला दृश्य

[कलिंग युद्ध के अन्तिम दिनों में चक्रवर्ती सम्राट् अशोक की सेनाएँ कलिंग की राजधानी स्वर्णपुर को घेरे हुए है। वसन्त ऋतु की तारों भरी रात है। सम्राट् की सेना के दो सिपाही युद्धजित् और वसन्तकुमार एक तम्बू में बैठे हैं। वसन्तकुमार दिये की रोशनी में एक पुस्तक पढ़ रहा है। युद्धजित् रात के सन्नाटे में आकाश में टिमटिमाते हुए तारों को देख रहा है। तम्बू के पीछे एक रक्षक टहल रहा है।]

युद्धजित्—आज मुझे अपनी जन्म-भूमि की याद फिर तड़फा रही है। तारों के मध्यम प्रकाश में ये सफ़ेद-सफ़ेद तम्बू कैसे भले मालूम देते हैं, ठीक उसी तरह जैसे वसन्त ऋतु की छिटकी हुई चाँदनी में नहाते हुए हमारे उपवनों के पेड़। इस समय हवा के मधुर झोंके मेरे घरवालों को थपकियाँ देकर मीठी नींद सुला रहे होंगे। हाँ, शायद वह मेरी याद में अभी जाग रही हो और इस भयंकर युद्ध से जहाँ क्रूर मृत्यु हर समय घात लगाये बैठी है, मेरे बच निकलने की सम्भावना पर विचार कर रही हो।

मेरी प्यारी जन्मभूमि जहाँ भीनी-भीनी सुगन्धि हवाओं के कन्धों पर लदी रहती है, प्रकृति ने जहाँ अपनी निधि को लुटा दिया है, जहाँ फलों से लदे वृक्ष

खड़े हैं, अनन्त का गीत गानेवाले सुन्दर झरने, हरी-भरी घाटियाँ, हिमालय की गगनचुम्बी चोटियाँ, यह सब मेरे लिये स्वप्न हो गये हैं। आह! मेरे प्यारे देश भूस्वर्ग......कश्मीर वहाँ के काँटों की याद भी मुझे तड़फा देती है। शायद मेरे बचपन के नवयुवक साथी इस समय अपने घरों में अनाज के ढेर लगा रहे होंगे......। इन दिनों वहाँ कितने ही फल पके होंगे। पर मेरे भाग्य में वह सब चीज़ें कहाँ? अपने देश की सुरम्य भूमि को छोड़कर मैं अपने जीवन के दिन इस सूखे बंजर मैदान में गुजार रहा हूँ। यह सब क्यों? हिन्दू-कुलपति महाराज कलिंग के दरबार में कुछ बौद्ध भिक्षुओं का अपमान हुआ था, इसलिये कलिंग अधिपति को सम्राट् अशोक की अधीनता स्वीकार करनी होगी। उनके अपमान के प्रतिशोध के लिए। मेरे ईश्वर! अपने प्यारे देश को छोड़े हुए मुझे एक साल हो रहा है।......लेकिन नहीं। इन बातों से क्या? तक़दीर में यही लिखा होगा। वसन्तकुमार, सुन्दर चीज़ों के विचार-मात्र से ही हृदय में कसक-सी क्यों उठने लगती है?

वसन्तकुमार—इसलिए कि सुन्दरता लोकपूजित होने पर भी स्थिर नहीं है। वह समय के बहाव में बहती चली जाती है। कोई चीज़ उसके प्रवाह को रोक नहीं सकती। हमारी सृष्टि की यही एक करुण कहानी है।

युद्धजित्—इस युद्ध के खूनी पंजों में फँसे हुए हमें कितना समय बीत चुका है? जन्मभूमि की किसी अदना बस्ती की कोई गली भी याद आ जाती है तो हृदय में एक हूक-सी

उठती है। वसन्तकुमार, दिन-रात हम अपने विपक्षियों के ख़ून से होली खेलते हैं, परन्तु हमारी नसों में बहने-वाले एक बिन्दु लहू में भी इन स्वर्णपुर-निवासियों के विरुद्ध जिनके ख़ून से हमारे हाथ आठों पहर रँगे रहते हैं, जरा भी वैर-भाव नहीं है। तुम्हें इस पर कभी हैरानी नहीं हुई ?

वसन्तकुमार—हैरानी ! मुझे तो कोई हैरानी नहीं होती। जो विनाशकारी मृत्यु के साथ रहकर आठों पहर उसके रौरव ताण्डव का तमाशा देख रहा हो, जो अपने विप-क्षियों पर किये गये एक-एक बार के वेदनामय अन्त को दिल में लिए फिरता हो, बताओ उसके ख़ून में वैरभाव कैसे रह सकता है ? और फिर हम मुर्दों से वैरभाव भला क्योंकर कर सकते हैं ? युद्धजित् ! जहाँ मौत विनाश का भयानक खेल खेल रही हो, जैसा कि आजकल यहाँ, तो समझ लो कि वहाँ "तुम" और "मैं" हमारे शत्रु और हमारे साथी (पहरेदार गुज़रता है) मुर्दों की तरह ही हैं, जिनकी आत्माएँ किसी दूसरे रहस्यमय संसार के छोर पर विचर रही हों। युद्धजित् ! अब हमारी वह अवस्था कहाँ है, जो हमारे दिलों की गहराइयों में शत्रुता, द्वेष-भाव, घृणा या इस प्रकार के दूसरे विकारों का प्रवेश हो सके······

हम उस अवस्था को पार कर चुके हैं। संसार के ये राजमुकुटधारी एक दूसरे से घृणा कर सकते हैं या धर्म के ठेकेदार नंगे सिरवाले ये भिक्षु जिनका अभिमान इन मुकुटधारी राजाओं से भी बढ़कर है और जो शायद यह समझते हैं कि मनुष्यों की परस्पर

सहानुभूति उन्हें उनके उच्च-पद से डिगा देगी वे एक दूसरे के विरुद्ध जहर उगल सकते हैं या ईश्वर के प्रतिनिधि ये भूदेव एक दूसरे के विरुद्ध घृणा का प्रचार कर सकते हैं। शत्रुता और वैरभाव को अपने दिलों में वहीं स्थान दे सकते हैं। हम तो केवल इसीलिए हैं कि इन मुकुटधारियों और धर्म के ठेकेदारों की क्रूर इच्छाओं के इशारे पर मरें या दूसरों को मारें।

युद्धजित्—यह तो नहीं कि समय गुजरने के साथ हमारा उत्साह ठंडा पड़ गया है या यह कि दिल अपने कर्तव्य-परायण के धर्म से उकताने लग गया हो। नहीं, हर्गिज नहीं। मैं इस समय भी चक्रवर्ती प्रियदर्शी सम्राट अशोक के लिए अपने प्राण न्यौछावर कर सकता हूँ। मृत्यु का समय तो नियत हो चुका है, चाहे वह घड़ी आज, इस रात को अभी आ जाय। पर आह! इस बात को मैं कैसे भूल जाऊँ कि यह मेरा कौमार्य जिसमें जीवन की उमंगें भरी हैं, जो सैकड़ों महत्त्वाकांक्षाओं को दिल में लिये है, जो गृहस्थ जीवन के सुखी बहाव में बहना चाहता है, जिसमें प्रेम की हिलोरें लेने की उत्कट आकांक्षा है, जो अमर यश का भूखा है, बताओ कुमारावस्था की इन उमंगों, आकांक्षाओं और उसके सुख-स्वप्नों को भूलकर मौत के भयानक विचारों को जिन्हें कौमार्य के संसार से दूर रहना चाहिये, भरी जवानी में मैं अपने दिल में कैसे स्थान दूँ? और फिर मृत्यु के रहस्य को समझने के लिए भी तो आयु की प्रौढ़ता चाहिये।

पर इस बर्बरता के राज्य में हमारे सामने उस

नग्न नृत्य दिन-रात कराया जा रहा है। वसन्तकुमार, मैं अपने जीवन के पहले ढंग को तिलाञ्जलि दे चुका हूँ। वे रंगीन स्वप्न और महत्त्वाकांक्षाएँ विस्मृति के गढ़े में चली गई हैं; पर मुझे अपनी जन्मभूमि की याद नहीं भूलती। मेरी बस्ती के फलों से लदे हुए पेड़, निर्मल जल की बहती हुई नदियाँ, झरनों के आह्लाद-कारी गीत, हरी-भरी घाटियाँ और विशाल पर्वत-शिखरों का चित्र मेरी आँखों के सामने खिंचा रहता है। साँझ को घर लौटते हुए ढोरों के गले की घंटियों की मीठी आवाज़ अब भी मेरे कानों में सुनाई दे रही है। तुम्हीं बताओ, इन्हें मैं दिल से कैसे निकाल दूँ।

वसन्तकुमार—युद्धजित्, तुम ठीक कहते हो। जन्मभूमि की छोटी-छोटी प्यारी चीज़ों की मधुर स्मृति से दिल अधीर होने लगता है। पाटलिपुत्र में ठीक मेरा घर पतित-पावनी गंगा के किनारे है, जहाँ गंगाजल के कणों से लदे हुए हवा के झोंके मेरे हर वक़्त के साथी थे। दिन भर मैं माँझियों के माल से लदी हुई किश्तियों को खेते हुए देखता था। उनकी सुरीली तानें अब भी मेरे कानों में गूँज रही हैं। वहीं मैंने अपनी कुछ चुनी हुई कविताएँ लिखी थीं।

युद्धजित्—तुम्हारी सुन्दर कविताओं ने गंगा के किनारे पर जन्म लिया है। वहाँ काश्मीर में मैं भी मनोहर स्वप्नों के संसार में रहा करता था। पर मेरे स्वप्न तुम्हारी कविताओं का रूप धारण न कर सके। मेरा स्वर्ण-स्वप्न एक आदर्श समाज की सृष्टि करना चाहता था। मैं एक ऐसी संस्कृति और नीति को जन्म देना चाहता था

जो इस संसार के इतिहास में एक नई चीज़ होती। मैं इस पृथ्वी को स्वर्ग बनाना चाहता था, जहाँ हर एक प्राणी स्वतन्त्र हो। मैं झोंपड़ियों में भी राजमहलों का सा सुख लाना चाहता था। अनीति से दबे हुए हर प्राणी की आत्मा में मैं एक नया जीवन फूँक देता और उन्हें अटल विश्वास दिला देता कि अपनी तकदीर के मालिक वे स्वयं हैं। परन्तु युद्धभूमि की इस उड़ती हुई धूल से मेरे वे स्वर्ण-स्वप्न धुँधले पड़ गए हैं। अब यदि मेरे दिल में कोई इच्छा होती है तो रात को सोने की। ईश्वर से मेरी एक यही प्रार्थना होती है—वह मेरी भुजाओं में विपत्तियों का सामना करने की शक्ति दे या उनकी ख़ूनी तलवार से बचने के लिये सतर्क आँखें। हाँ, तुम्हारे उन गीतों का अब क्या हाल है?

वसन्तकुमार—वे बहुत दिनों से मेरे हृदय में सोए पड़े हैं। शायद अवसर मिलने पर वे फिर हरे हो जायँ।

युद्धजित्—और इधर मौत हर वक़्त घात लगाये बैठी है। तुम्हारे हृदय के वे गीत जो भविष्य में मानव-समाज की प्रसन्नता के उद्गम हो सकते थे, शायद वे तुम्हारी ज़बान पर आने से पहले ही तुम्हारे साथ ही इस मिट्टी में मिल जायँ और उनके स्थान पर सम्राट् अशोक के इस भयानक युद्ध और बौद्ध भिक्षुओं के लोमहर्षण प्रतिशोध की कहानी रह जाय। परन्तु इन दुःखद विचारों में पड़े रहने से क्या लाभ? ये विचार किसी विगत जीवन की भूली हुई स्मृतियों की तरह लौट-लौटकर प्रेतात्माओं की तरह मुझे मेरे कर्तव्य से

विमुख कर रहे हैं। समय हो गया है कि मैं स्वर्णपुर की प्राचीर पर किसी अभोग विपत्ती के शिकार के लिए पहुँचूँ। एक स्थान पर जहाँ मैंने तुम्हें एक टूटा हुआ पत्थर दिखाया था, कई रातों के लगातार परिश्रम से मैंने एक सूराख़ बनाकर पाँव रखने के लिये जगह बना ली है उसमें पैर रखकर प्राचीर की छत पर चढ़ने में कोई कठिनाई नहीं होगी। वसन्तकुमार, अँधेरे में किसी पर एकाएक वार करके उसकी जान लेना भी एक खेल है। उसके घावों से बहता हुआ गर्म-गर्म ख़ून अभी बन्द होने भी नहीं पाता कि उसका शरीर मांस के लोथड़े की तरह ज़मीन पर गिर पड़ता है। और उसके सगे-सम्बन्धी उसके शोक में उसी तरह दुःख से विलखते हैं, जिस तरह मेरे मरने पर मेरे शोक-संतप्त आत्मज करुण-क्रन्दन करेंगे। वसन्तकुमार, अब मुझे इन बातों से घिन होने लगी है। परन्तु अब तुम्हें सो जाना चाहिये। रात बहुत बीत चुकी है। और सबेरे तुम्हारा पहरा है।

[अपने हथियार सँभालकर एक कम्बल ओढ़ता है]

यह तुम क्या पढ़ रहे हो ?

वसन्तकुमार—कुछ गीत हैं जो मेरे देश के एक सुकवि ने रचे थे। इन गीतों में स्वदेश के गगनचुम्बी पर्वतों, विशाल नदियों, सुविस्तृत मैदानों और वनों में कल्लोल करने-वाले पक्षियों के कलरव का वर्णन है। यदि समय ने साथ दिया तो मैं भी ऐसे ही अमरगीत बनाया करूँगा।

युद्धजित्—ठीक है। तुम ऐसे ही गीत बनाया करोगे। (सुराही से

थोड़ा पानी उँडेलकर पीता है) हाँ, यदि मुझे लौटने में देर हो जाय तो दिया बुझाकर सो जाना। लो मैं चला।

वसन्तकुमार—जाओ, ईश्वर तुम्हारा सहायक हो।

युद्धजित्—और नौकर से कहना, थोड़ा पानी भर रक्खे, जब मैं लौटूँगा तो मेरे हाथ किसी के ख़ून से रँगे होंगे।

[रात के निविड़ अन्धकार को एक बार देखता है और फिर बाहर निकल जाता है]

वसन्तकुमार कोई गीत गुनगुनाता है।

[पर्दा गिरता है]

दूसरा दृश्य

कलिंग की राजधानी स्वर्णपुर के प्राचीर का एक बुर्ज।

[सुदत्त, एक नवयुवक सिपाही मैदान में—जहाँ सम्राट् अशोक के असंख्य सैनिक तम्बुओं में पड़े हैं, नज़र दौड़ाता है। वीरसेन उसका एक और समवयस्क साथी रीछ की खाल ओढ़े उसी की ओर आ रहा है। एक कोने में दीवट पर एक दिया जल रहा है।]

वीरसेन—तुम्हारा पहरा कब ख़त्म होता है ?

सुदत्त—एक घड़ी तक, जब रात आधी बीत जायेगी।

वीरसेन—नीचे मैदान में मगध सेना के विस्तृत डेरों में कैसी ख़ामोशी छाई हुई है ? मैं रात के अँधेरे में परछाईं की तरह इनके बीच में जाकर अपनी जन्मभूमि के एक शत्रु की जीवन-लीला समाप्त कर परछाईं की तरह चुपचाप वापिस लौट आऊँगा। सुदत्त, इस छोटी आयु में ऐसे ख़ूनी काम में यह निपुणता प्राप्त कर लेना कैसी

के लिए मैं कमर बाँधकर चल निकलता हूँ, जिससे देश-सेवा का जो बीड़ा मैंने उठाया है उस पर हर्फ़ न आए। यह देश-सेवा की धुन भी दिमाग़ में लगे हुए कीड़े की तरह है जो हमारे अन्दर एक पागलपन-सा पैदा करता रहता है।

सुदत्त—कौन है ?

एक आवाज़—स्वर्णपुर का दुर्जेय खड्ग। मगध की मौत का सन्देश !

—चले जाओ कहकर सुदत्त बोला—वीरसेन, उधर नीचे देखो, कैसा सन्नाटा छाया हुआ है, आकाश में तारे किस तरह जगमगा रहे हैं। भाई, सावधान रहना। मुझे इन तारों के प्रकाश से डर मालूम देता है। मेरे कितने ही साथी मुझसे बिछुड़ चुके हैं और इनके चले जाने पर मुझे अपने बचे हुए साथियों से कुछ मोह-सा हो गया है। ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे। मुझे कुछ ऐसा वहम-सा हो गया है कि ये टिमटिमाते हुए तारे तुम्हारे विरुद्ध कोई कुचक्र रचने के लिए कहीं आज ही रात को न चुन लें। मित्र, सावधान रहना।

वीरसेन—मैं मगध के इन डेरों से भली प्रकार परिचित हूँ और पहरेदारों की आँखों में धूल झोंकता हुआ अपने शिकार के लिये परछाईं की तरह फिरता रहता हूँ। विचार करो, पूरे एक सौ बार मैं ऐसा खेल खेल चुका हूँ।

सुदत्त—फिर भी मैं चाहता हूँ—आह कितना चाहता हूँ—आज तुम्हारे साथ रहकर किसी ख़तरे में तुम्हारा हाथ बँटा सकूँ।

वीरसेन—नहीं, नहीं, इन वहमों में न पड़ो। इसमें केवल साहस का ही काम नहीं है। और अभी तो तुम्हारी छेनियों को उन दिव्य मूर्त्तियों में जान डालनी है जिनसे हमारी राजधानी का सिर ऊँचा होनेवाला है।

सुदत्त—और तुम्हारे वे स्वप्न जिनसे तुम देश में एक नई राज-व्यवस्था की नींव डालना चाहते हो, जिसमें हमारे शासक राजसत्ता का ठीक प्रयोग करें, जिसमें वह सच्चा अभिमान और स्वार्थपरायणता के लिये प्रजाओं को उत्पीडित करने की अपेक्षा उनकी सेवा करना अपना धर्म समझें। क्या जाने किसी समय अपने इन स्वर्गीय स्वप्नों को कार्य रूप में परिणत करने का हमें अवसर प्राप्त हो जाय। हाँ, आज तुम कितनी देर में लौटोगे ?

वीरसेन—तुम्हारा पहरा खतम होने से पहले ही लौट आऊँगा। जब मैं इसी स्थान पर वापिस आकर (सीटी बजाता है) इस तरह सीटी बजाऊँ तब तुम यह रस्सा नीचे लटका देना। (प्राचीर पर से लटकते हुए रस्से से नीचे उतरता है।) मेरे लौटने तक भगवान् तुम्हारी रक्षा करे।

सुदत्त—सावधान रहना। ईश्वर तुम्हारा सहायक हो।

[वीरसेन नीचे ज़मीन पर कूद पड़ता है। सुदत्त रस्सा ऊपर खींच लेता है।]

कुछ समय तक निस्तब्धता छाई रहती है। सुदत्त इधर-उधर प्राचीर पर टहलता है। 'यह मगध और कलिंग' 'हिन्दू और बौद्ध।' इनका झगड़ा ही क्या है ? अब जब हम यहाँ सबके सर पर मौत

मँडरा रही है, उस समय भी इन भेद-भावों को भुलाने में हम असमर्थ हैं। वसन्त ऋतु की इन खिली हुई कलियों के फूल बनने में शायद कोई सन्देह नहीं हो, परन्तु इस मेरी जवानी में हम यहाँ मृत्यु की लपेट से एक क्षण भर भी सुरक्षित रह सकेंगे, यह कोई भी नहीं कह सकता। जहाँ चारों ओर मृत्यु मुँह बाये घूमती रहती है वहाँ जीवन का क्या भरोसा? (प्राचीर पर किसी का हाथ सहारे के लिए टटोलता दिखाई देता है।) युद्धजित् इधर-उधर सावधानी से देखकर सुदत्त के पीछे जाकर खड़ा हो जाता है, परन्तु उसे इसका पता नहीं चलता। वह उसी प्रकार अपनी धुन से गुन-गुनाता है। 'हमारे ऊपर कोई अदृश्य हाथ हर समय परछाँई की तरह पीछे-पीछे लगा रहता है और जब वह हाथ अनजान में किसी नवयुवक पर वार करता है······(कोई आहट पाकर पीछे मुड़ता है) कौन है!

युद्धजित्—(उस पर एकाएक वार करता हुआ) सम्राट् अशोक का एक युद्ध-सेवक, स्वर्णपुर-निवासियों का काल।

[सुदत्त इस आघात को सहन नहीं कर सकता। युद्धजित् उसके पेट में कटार भोंक देता है, सुदत्त गिर कर वहीं ठंडा पड़ जाता है। युद्धजित् कटार को बाहर निकालता है और अपने प्रतिद्वन्द्वी की लोथ देखकर काँप उठता है। फिर इधर-उधर देखकर जहाँ से वह प्राचीर पर चढ़ा था, उसी स्थान में नीचे उतरता है।]

[पर्दा गिरता है]

तीसरा दृश्य

[सम्राट् अशोक की सेना के डेरे। वसन्तकुमार पुस्तक पढ़ने में तल्लीन है। नौकर पानी भर कर लौट जाता है।]

[पहरेदार गुज़रता है]

कुछ समय तक निस्तब्धता छाई रहती है। वसन्तकुमार पुस्तक का पन्ना उलटता है। तम्बू की आड़ में वीरसेन रीछ की खाल ओढ़े सतर्क होकर आगे बढ़ता है। और दबे पाँव तम्बू के अन्दर जाकर विना आहट किये अपनी कटार से वसन्तकुमार का हृदय विदीर्ण कर देता है और उसके मृत शरीर को उसकी शय्या पर लिटा देता है।

[पहरेदार गुज़रता है]

वीरसेन साँस रोके वहाँ खड़ा रहता है और फिर चुपके से जिधर से आया था उधर ही लौट जाता है। कुछ समय गुज़रता है। अँधेरे में युद्धजित् आता हुआ दिखाई देता है। (अपना कम्बल उतार कर हाथ धोने लगता है।)

युद्धजित्—वसन्तकुमार, अभी तक तुम जाग रहे हो ? वे क्या ही अच्छे गीत होंगे जो एक सिपाही को इतनी रात तक सोने नहीं देते। वसन्तकुमार, वह भी कितना दर्द-नाक समय था। उस बेचारे को एक शब्द भी कहने का अवसर न मिला। तारों के प्रकाश में प्राचीर पर इस तरह टहल रहा था मानो कोई प्रेमी छिटकी हुई चाँदनी में किसी खिले हुए उपवन में टहल रहा हो।

शायद वह कोई गीत गुनगुना रहा था जब मृत्यु ने उसे अपनी गोद में ले लिया।

इस ठंडे पानी से मेरे चित्त को कुछ शान्ति मिली है। अब मैं निश्चिन्त होकर सोऊँगा। वसन्तकुमार, नींद भी क्या प्यारी चीज़ है, जो सब चिन्ताओं को समेट लेती है?

[पहरेदार गुज़रता है]

अब यह दिया बुझा देना चाहिये। मुझे अब इसकी कोई आवश्यकता नहीं है और तुम्हें अब सो जाना चाहिये।

[पहली बार वसन्तकुमार को देखता है। अरे तुम सो रहे हो? कपड़े भी नहीं उतारे। यह तो ठीक नहीं। दिया भी जलता ही छोड़ दिया।].

(नज़दीक जाकर) वसन्त······मेरे प्यारे मित्र। (पछाड़ खाकर गिरता है)······उफ़······मौत!······ वसन्त का यह अन्त!······यह ईश्वर का न्याय है— मेरी करनी का फल! और वहाँ? स्वर्णपुर के प्राचीर पर मेरा ही जैसा कोई अभागा आयगा और······ मेरे ईश्वर······(पहरेदार गुज़रता है)

[पर्दा गिरता है]

चौथा दृश्य

(स्वर्णपुर के प्राचीर पर सुदच का निर्जीव शरीर ठण्डा पड़ा है।) कुछ देर बाद वीरसेन आकर सीटी बजाता है······ज़रा रुककर फिर सीटी बजाता है। चारों ओर निस्तब्धता का राज्य है।

[पर्दा गिरता है]